श्रीमद्भागवत महापुराण

प्रथम खण्ड

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	
१-	देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट	१
२-	भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग	८
३-	भक्तिके कष्टकी निवृत्ति	१४
४-	गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ	२०
५-	धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार	२७
६-	सप्ताहयज्ञकी विधि	३५
	प्रथम स्कन्ध	
१-	श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न	४५
२-	भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य	४७
३-	भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन	५१
४-	महर्षि व्यासका असंतोष	५५
५-	भगवान्‌के यश-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र	५८
६-	नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग	६३
७-	अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मानमर्दन	६७
८-	गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक	७२
९-	युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना	७७
१०-	श्रीकृष्णका द्वारका-गमन	८२
११-	द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत	८६
१२-	परीक्षित्‌का जन्म	९०
१३-	विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना	९४
१४-	अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शङ्का करना और अर्जुनका द्वारकासे लौटना	९९
१५-	कृष्णविरहव्यथित पाण्डवोंका परीक्षित्‌को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना	१०३
१६-	परीक्षित्‌की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका संवाद	१०९
१७-	महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन	११३
१८-	राजा परीक्षित्‌को शृंगी ऋषिका शाप	११८
१९-	परीक्षित्‌का अनशनव्रत और शुकदेवजीका आगमन	१२३
	द्वितीय स्कन्ध	
१-	ध्यान-विधि और भगवान्‌के विराट्स्वरूपका वर्णन	१२९
२-	भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म रूपोंकी धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन	१३३
३-	कामनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण	१३९
४-	राजाका सृष्टिविषयक प्रश्न और शुकदेवजीका कथारम्भ	१४२
५-	सृष्टि-वर्णन	१४५
६-	विराट्स्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन	१४९
७-	भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा	१५३
८-	राजा परीक्षित्‌के विविध प्रश्न	१६१
९-	ब्रह्माजीका भगवद्धामदर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश	१६३
१०-	भागवतके दस लक्षण	१६८
	तृतीय स्कन्ध	
१-	उद्धव और विदुरकी भेंट	१७३
२-	उद्धवजीद्वारा भगवान्‌की बाललीलाओंका वर्णन	१७९
३-	भगवान्‌के अन्य लीला-चरित्रोंका वर्णन	१८३
४-	उद्धवजीसे विदा होकर विदुरजीका मैत्रेय ऋषिके पास जाना	१८६
५-	विदुरजीका प्रश्न और मैत्रेयजीका सृष्टिक्रम-वर्णन	१९०
६-	विराट् शरीरकी उत्पत्ति	१९५
७-	विदुरजीके प्रश्न	१९९
८-	ब्रह्माजीकी उत्पत्ति	२०३
९-	ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति	२०८
१०-	दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन	२१३
११-	मन्वन्तरादि काल-विभागका वर्णन	२१६
१२-	सृष्टिका विस्तार	२१९
१३-	वाराह-अवतारकी कथा	२२४
१४-	दितिका गर्भधारण	२३०
१५-	जय-विजयको सनकादिका शाप	२३५
१६-	जय-विजयका वैकुण्ठसे पतन	२४२
१७-	हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षकी दिग्विजय	२४६

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१८-	हिरण्याक्षके साथ वाराहभगवान्‌का युद्ध	२४९
१९-	हिरण्याक्ष-वध	२५३
२०-	ब्रह्माजीकी रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टिका वर्णन	२५७
२१-	कर्दमजीकी तपस्या और भगवान्‌का वरदान	२६२
२२-	देवहूतिके साथ कर्दम-प्रजापतिका विवाह	२६७
२३-	कर्दम और देवहूतिका विहार	२७१
२४-	श्रीकपिलदेवजीका जन्म	२७७
२५-	देवहूतिका प्रश्न तथा भगवान् कपिलद्वारा भक्ति-योगकी महिमाका वर्णन	२८१
२६-	महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन	२८६
२७-	प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष-प्राप्तिका वर्णन	२९२
२८-	अष्टाङ्गयोगकी विधि	२९५
२९-	भक्तिका मर्म और कालकी महिमा	३००
३०-	देह-गेहमें आसक्त पुरुषोंकी अधोगतिका वर्णन	३०४
३१-	मनुष्ययोनिको प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन	३०७
३२-	धूममार्ग और अर्चिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिका और भक्तियोगकी उत्कृष्टताका वर्णन	३१२
३३-	देवहूतिको तत्त्वज्ञान एवं मोक्षपदकी प्राप्ति	३१६

चतुर्थ स्कन्ध

१-	स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका वर्णन	३२१
२-	भगवान् शिव और दक्ष-प्रजापतिका मनो-मालिन्य	३२७
३-	सतीका पिताके यहाँ यज्ञोत्सवमें जानेके लिये आग्रह करना	३३०
४-	सतीका अग्निप्रवेश	३३३
५-	वीरभद्रकृत दक्षयज्ञविध्वंस और दक्षवध	३३८
६-	ब्रह्मादि देवताओंका कैलास जाकर श्रीमहादेवजी-को मनाना	३४१
७-	दक्षयज्ञकी पूर्ति	३४६
८-	ध्रुवका वन-गमन	३५४
९-	ध्रुवका वर पाकर घर लौटना	३६२
१०-	उत्तमका मारा जाना, ध्रुवका यक्षोंके साथ युद्ध	३६९
११-	स्वायम्भुव मनुका ध्रुवजीको युद्ध बंद करनेके लिये समझाना	३७२
१२-	ध्रुवजीको कुबेरका वरदान और विष्णुलोककी प्राप्ति	३७५
१३-	ध्रुववंशका वर्णन, राजा अङ्गका चरित्र	३८१
१४-	राजा वेनकी कथा	३८५
१५-	महाराज पृथुका आविर्भाव और राज्याभिषेक	३८९
१६-	वंदीजनद्वारा महाराज पृथुकी स्तुति	३९२
१७-	महाराज पृथुका पृथ्वीपर कुपित होना और पृथ्वीके द्वारा उनकी स्तुति करना	३९४
१८-	पृथ्वी-दोहन	३९८
१९-	महाराज पृथुके सौ अश्वमेध यज्ञ	४०१
२०-	महाराज पृथुकी यज्ञशालामें श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रादुर्भाव	४०५
२१-	महाराज पृथुका अपनी प्रजाको उपदेश	४०९
२२-	महाराज पृथुको सनकादिका उपदेश	४१४
२३-	राजा पृथुकी तपस्या और परलोकगमन	४२०
२४-	पृथुकी वंशपरम्परा और प्रचेताओंको भगवान् रुद्रका उपदेश	४२४
२५-	पुरञ्जनोपाख्यानका प्रारम्भ	४३१
२६-	राजा पुरञ्जनका शिकार खेलने वनमें जाना और रानीका कुपित होना	४३७
२७-	पुरञ्जनपुरीपर चण्डवेगकी चढ़ाई तथा काल-कन्याका चरित्र	४३९
२८-	पुरञ्जनको स्त्रीयोनिकी प्राप्ति और अविज्ञातके उपदेशसे उसका मुक्त होना	४४२
२९-	पुरञ्जनोपाख्यानका तात्पर्य	४४७
३०-	प्रचेताओंको श्रीविष्णुभगवान्‌का वरदान	४५५
३१-	प्रचेताओंको श्रीनारदजीका उपदेश और उनका परमपद-लाभ	४६०

पञ्चम स्कन्ध

१-	प्रियव्रत-चरित्र	४६५
२-	आग्नीध्र-चरित्र	४७०
३-	राजा नाभिका चरित्र	४७४
४-	ऋषभदेवजीका राज्यशासन	४७६
५-	ऋषभजीका अपने पुत्रोंको उपदेश देना और स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना	४७९
६-	ऋषभदेवजीका देहत्याग	४८४
७-	भरत-चरित्र	४८७
८-	भरतजीका मृगके मोहमें फँसकर मृगयोनिमें जन्म लेना	४८९
९-	भरतजीका ब्राह्मणकुलमें जन्म	४९३
१०-	जडभरत और राजा रहूगणकी भेंट	४९७
११-	राजा रहूगणको भरतजीका उपदेश	५०१
१२-	रहूगणका प्रश्न और भरतजीका समाधान	५०३
१३-	भवाटवीका वर्णन और रहूगणका संशयनाश	५०६
१४-	भवाटवीका स्पष्टीकरण	५०९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१५-	भरतके वंशका वर्णन	५१६
१६-	भुवनकोशका वर्णन	५१८
१७-	गङ्गाजीका विवरण और भगवान् शंकरकृत संकर्षणदेवकी स्तुति	५२२
१८-	भिन्न-भिन्न वर्षोंका वर्णन	५२५
१९-	किम्पुरुष और भारतवर्षका वर्णन	५३१
२०-	अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोक पर्वतका वर्णन	५३६
२१-	सूर्यके रथ और उसकी गतिका वर्णन	५४२
२२-	भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतिका वर्णन	५४५
२३-	शिशुमारचक्रका वर्णन	५४७
२४-	राहु आदिकी स्थिति, अतलादि नीचेके लोकोंका वर्णन	५४९
२५-	श्रीसङ्कर्षणदेवका विवरण और स्तुति	५५४
२६-	नरकोंकी विभिन्न गतियोंका वर्णन	५५७

षष्ठ स्कन्ध

१-	अजामिलोपाख्यानका प्रारम्भ	५६५
२-	विष्णुदूतोंद्वारा भागवतधर्म-निरूपण और अजामिलका परमधामगमन	५७२
३-	यम और यमदूतोंका संवाद	५८०
४-	दक्षके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का प्रादुर्भाव	५८५
५-	श्रीनारदजीके उपदेशसे दक्षपुत्रोंकी विरक्ति तथा नारदजीको दक्षका शाप	५९१
६-	दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याओंके वंशका विवरण	५९६
७-	बृहस्पतिके द्वारा देवताओंका त्याग और विश्वरूपका देवगुरुके रूपमें वरण	६००
८-	नारायणकवचका उपदेश	६०५
९-	विश्वरूपका वध, वृत्रासुरद्वारा देवताओंकी हार और भगवान्‌की प्रेरणासे देवताओंका दधीचि ऋषिके पास जाना	६१०
१०-	देवताओंद्वारा दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे वज्र-निर्माण और वृत्रासुरकी सेनापर आक्रमण	६१८
११-	वृत्रासुरकी वीरवाणी और भगवत्प्राप्ति	६२२
१२-	वृत्रासुरका वध	६२६
१३-	इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण	६३०
१४-	वृत्रासुरका पूर्वचरित्र	६३४
१५-	चित्रकेतुको अङ्गिरा और नारदजीका उपदेश	६४०
१६-	चित्रकेतुका वैराग्य तथा सङ्कर्षणदेवके दर्शन	६४४
१७-	चित्रकेतुको पार्वतीजीका शाप	६५२
१८-	अदिति और दितिकी संतानोंकी तथा मरुद्गणोंकी उत्पत्तिका वर्णन	६५६
१९-	पुंसवनव्रतकी विधि	६६४

सप्तम स्कन्ध

१-	नारद-युधिष्ठिर-संवाद और जय-विजयकी कथा	६६९
२-	हिरण्याक्षका वध होनेपर हिरण्यकशिपुका अपनी माता और कुटुम्बियोंको समझाना	६७४
३-	हिरण्यकशिपुकी तपस्या और वरप्राप्ति	६८१
४-	हिरण्यकशिपुके अत्याचार और प्रह्लादके गुणोंका वर्णन	६८५
५-	हिरण्यकशिपुके द्वारा प्रह्लादजीके वधका प्रयत्न	६९०
६-	प्रह्लादजीका असुर-बालकोंको उपदेश	६९७
७-	प्रह्लादजीद्वारा माताके गर्भमें प्राप्त हुए नारदजीके उपदेशका वर्णन	७०१
८-	नृसिंहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपुका वध एवं ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भगवान्‌की स्तुति	७०७
९-	प्रह्लादजीके द्वारा नृसिंहभगवान्‌की स्तुति	७१५
१०-	प्रह्लादजीके राज्याभिषेक और त्रिपुरदहनकी कथा	७२४
११-	मानव-धर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका निरूपण	७३१
१२-	ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ-आश्रमोंके नियम	७३५
१३-	यतिधर्मका निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद	७३८
१४-	गृहस्थसम्बन्धी सदाचार	७४३
१५-	गृहस्थोंके लिये मोक्षधर्मका वर्णन	७४७

अष्टम स्कन्ध

१-	मन्वन्तरोंका वर्णन	७५७
२-	ग्राहके द्वारा गजेन्द्रका पकड़ा जाना	७६१
३-	गजेन्द्रके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और उसका संकटसे मुक्त होना	७६५
४-	गज और ग्राहका पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार	७६९
५-	देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति	७७२
६-	देवताओं और दैत्योंका मिलकर समुद्रमन्थनके लिये उद्योग करना	७७९
७-	समुद्रमन्थनका आरम्भ और भगवान् शंकरका विषपान	७८३
८-	समुद्रसे अमृतका प्रकट होना और भगवान्‌का मोहिनी-अवतार ग्रहण करना	७८९
९-	मोहिनी-रूपसे भगवान्‌के द्वारा अमृत बाँटा जाना	७९४

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१०-	देवासुर-संग्राम	७९८
११-	देवासुर-संग्रामकी समाप्ति	८०४
१२-	मोहिनीरूपको देखकर महादेवजीका मोहित होना	८०९
१३-	आगामी सात मन्वन्तरोंका वर्णन	८१५
१४-	मनु आदिके पृथक्-पृथक् कर्मोंका निरूपण	८१८
१५-	राजा बलिकी स्वर्गपर विजय	८२०
१६-	कश्यपजीके द्वारा अदितिको पयोव्रतका उपदेश	८२४
१७-	भगवान्‌का प्रकट होकर अदितिको वर देना	८३०
१८-	वामनभगवान्‌का प्रकट होकर राजा बलिकी यज्ञशालामें पधारना	८३४
१९-	भगवान् वामनका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना, बलिका वचन देना और शुक्राचार्यजीका उन्हें रोकना	८३८
२०-	भगवान् वामनजीका विराट्‌रूप होकर दो ही पगसे पृथ्वी और स्वर्गको नाप लेना	८४२
२१-	बलिका बाँधा जाना	८४७
२२-	बलिके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का उसपर प्रसन्न होना	८५१
२३-	बलिका बन्धनसे छूटकर सुतललोकको जाना	८५५
२४-	भगवान्‌के मत्स्यावतारकी कथा	८५९

चतुःश्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ १॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ २॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ३॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ ४॥

सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ; और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ॥ १॥ वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये॥ २॥ जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ॥ ३॥ यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है॥ ४॥ (श्रीमद्भा० २। ९। ३२—३५)

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

(स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे ब्रह्माजीके प्रति कथित)

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम्।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम्॥ १॥

लोकविख्यात श्रीमद्भागवत नामक पुराणका प्रतिदिन श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करना चाहिये। यही मेरे संतोषका कारण है।

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम्॥ २॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भागवतपुराणका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरके उच्चारणके साथ कपिला गौ दान देनेका पुण्य होता है।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्।
पठते शृणुयाद् यस्तु गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३॥

जो प्रतिदिन भागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत।
अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः॥ ४॥

पुत्र! जो प्रतिदिन पवित्रचित्त होकर भागवतके एक श्लोकका पाठ करता है, वह मनुष्य अठारह पुराणोंके पाठका फल पा लेता है।

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः।
कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम॥ ५॥

जहाँ नित्य मेरी कथा होती है, वहाँ विष्णु-पार्षद प्रह्लाद आदि विद्यमान रहते हैं। जो मनुष्य सदा मेरे भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, वे कलिके अधिकारसे अलग हैं, उनपर कलिका वश नहीं चलता।

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सुरवन्दिताः॥ ६॥

जो मानव अपने घरमें वैष्णवशास्त्रोंकी पूजा करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर देवताओंद्वारा वन्दित होते हैं।

येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम्॥ ७॥

जो लोग कलियुगमें अपने घरके भीतर प्रतिदिन भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, वे [कलिसे निडर होकर] ताल ठोंकते और उछलते-कूदते हैं, मैं उनपर बहुत प्रसन्न रहता हूँ।

यावद्दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे।
तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ ८॥

पुत्र! मनुष्य जितने दिनोंतक अपने घरमें भागवतशास्त्र रखता है, उतने समयतक उसके पितर दूध, घी, मधु और मीठा जल पीते हैं।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते॥ ९॥

जो लोग विष्णुभक्त पुरुषको भक्तिपूर्वक भागवतशास्त्र समर्पण करते हैं, वे हजारों करोड़ कल्पोंतक (अनन्तकालतक) मेरे वैकुण्ठधाममें वास करते हैं।

येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः।
प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूतसंप्लवम्॥ १०॥

जो लोग सदा अपने घरमें भागवतशास्त्रका पूजन करते हैं, वे मानो एक कल्पतकके लिये सम्पूर्ण देवताओंको तृप्त कर देते हैं।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे।
शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः॥ ११॥

यदि अपने घरपर भागवतका आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी रहे, तो यह बहुत उत्तम बात है, उसे छोड़कर सैकड़ों और हजारों तरहके अन्य ग्रन्थोंके संग्रहसे भी क्या लाभ है?

न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात् कदाचन॥ १२॥

कलियुगमें जिस मनुष्यके घरमें भागवतशास्त्र मौजूद नहीं है, उसको यमराजके पाशसे कभी छुटकारा नहीं मिलता।

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ।
गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः॥ १३॥

इस कलियुगमें जिसके घर भागवतशास्त्र मौजूद नहीं है, उसे कैसे वैष्णव समझा जाय? वह तो चाण्डालसे भी बढ़कर नीच है!

सर्वस्वेनापि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः ।
वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ॥ १४ ॥

लोकेश ब्रह्मा ! पुत्र ! मनुष्यको सदा मुझे भक्तिपूर्वक संतुष्ट करनेके लिये अपना सर्वस्व देकर भी वैष्णवशास्त्रोंका संग्रह करना चाहिये ।

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र तत्र सदैवाहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ १५ ॥

कलियुगमें जहाँ-जहाँ पवित्र भागवतशास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ सदा ही मैं देवताओंके साथ उपस्थित रहता हूँ ।

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥ १६ ॥

यही नहीं—वहाँ नदी, नद और सरोवररूपमें प्रसिद्ध सभी तीर्थ वास करते हैं; सम्पूर्ण यज्ञ, सात पुरियाँ और सभी पावन पर्वत वहाँ नित्य निवास करते हैं ।

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ।
पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥ १७ ॥

लोकेश ! यश, धर्म और विजयके लिये तथा पापक्षय एवं मोक्षकी प्राप्तिके लिये धर्मात्मा मनुष्यको सदा ही मेरे भागवतशास्त्रका श्रवण करना चाहिये ।

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ।
पठनाच्छ्रवणाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

यह पावन पुराण श्रीमद्भागवत आयु, आरोग्य और पुष्टिको देनेवाला है; इसका पाठ अथवा श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ १९ ॥

लोकेश ! जो इस परम उत्तम भागवतको न तो सुनते हैं और न सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके स्वामी सदा यमराज ही हैं—वे सदा यमराजके ही वशमें रहते हैं—यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ ।

न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ।
एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापरतस्ततः ॥ २० ॥

पुत्र ! जो मनुष्य सदा ही—विशेषतः एकादशीको भागवत सुनने नहीं जाता, उससे बढ़कर पापी कोई नहीं है ।

श्लोकं भागवतं चापि श्लोकार्धं पादमेव वा ।
लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥ २१ ॥

जिसके घरमें एक श्लोक, आधा श्लोक अथवा श्लोकका एक ही चरण लिखा रहता है, उसके घरमें मैं निवास करता हूँ ।

सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ २२ ॥

मनुष्यके लिये सम्पूर्ण पुण्य-आश्रमोंकी यात्रा या सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करना भी वैसा पवित्रकारक नहीं है, जैसा श्रीमद्भागवत है ।

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ।
गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥ २३ ॥

चतुर्मुख ! जहाँ-जहाँ भागवतकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ मैं उसी प्रकार जाता हूँ, जैसे पुत्रवत्सला गौ अपने बछड़ेके पीछे-पीछे जाती है ।

मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥ २४ ॥

जो मेरी कथा कहता है, जो सदा उसे सुननेमें लगा रहता है तथा जो मेरी कथासे मन-ही-मन प्रसन्न होता है, उस मनुष्यका मैं कभी त्याग नहीं करता ।

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः ।
सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ २५ ॥

पुत्र ! जो परम पुण्यमय श्रीमद्भागवतशास्त्रको देखकर अपने आसनसे उठकर खड़ा नहीं हो जाता, उसका एक वर्षका पुण्य नष्ट हो जाता है ।

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युथानाभिवादनैः ।
सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिर्ममातुला ॥ २६ ॥

जो श्रीमद्भागवतपुराणको देखकर खड़ा होने और प्रणाम करने आदिके द्वारा उसका सम्मान करता है, उस मनुष्यको देखकर मुझे अनुपम आनन्द मिलता है ।

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २७ ॥

जो श्रीमद्भागवतको दूरसे ही देखकर उसके सम्मुख जाता है, वह एक-एक पगपर अश्वमेध यज्ञके पुण्यको प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

उत्थाय प्रणमेद् यो वै श्रीमद्भागवतं नरः ।
धनपुत्रांस्तथा दारान् भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥ २८ ॥

जो मानव खड़ा होकर श्रीमद्भागवतको प्रणाम करता है, उसे मैं धन, स्त्री, पुत्र और अपनी भक्ति प्रदान करता हूँ।

महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम्॥ २९॥

हे पुत्र! जो लोग महाराजोचित सामग्रियोंसे युक्त होकर भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा सुनते हैं, मैं उनके वशीभूत हो जाता हूँ।

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत॥ ३०॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः।
वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा॥ ३१॥*

सुव्रत! जो लोग मेरे पर्वोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी उत्सवोंमें मेरी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप और दीप आदि उपहार अर्पण करते हुए परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे मुझे उसी प्रकार अपने वशमें कर लेते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने साधुस्वभाववाले पतिको वशमें कर लेती है।

श्रीशुकदेवजीको नमस्कार

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥
(१।२।२)

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा! बेटा!' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे, सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम्।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम्॥
(१।२।३)

यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय-रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥
(१२।१२।६८)

श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मङ्गलमयी मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगतके प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका *विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन* भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ।

श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीमद्भागवतकी महिमा मैं क्या लिखूँ ? उसके आदिके तीन श्लोकोंमें जो महिमा कह दी गयी है, उसके बराबर कौन कह सकता है ? उन तीनों श्लोकोंको कितनी ही बार पढ़ चुकनेपर भी जब उनका स्मरण होता है, मनमें अद्भुत भाव उदित होते हैं। कोई अनुवाद उन श्लोकोंकी गम्भीरता और मधुरताको पा नहीं सकता। उन तीनों श्लोकोंसे मनको निर्मल करके फिर इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान कीजिये—

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः॥
प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने॥
रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम्।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद् दुर्मना इव॥

मुझको श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त प्रेम है। मेरा विश्वास और अनुभव है कि इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्यको ईश्वरका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और उनके चरणकमलोंमें अचल भक्ति होती है। इसके पढ़नेसे मनुष्यको दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस संसारको रचने और पालन करनेवाली कोई सर्वव्यापक शक्ति है—

एक अनन्त त्रिकाल सच, चेतन शक्ति दिखात।
सिरजत, पालत, हरत, जग, महिमा बरनि न जात॥

इसी एक शक्तिको लोग ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। भागवतके पहले ही श्लोकमें वेदव्यासजीने ईश्वरके स्वरूपका वर्णन किया है कि जिससे इस संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, जो त्रिकालमें सत्य है—अर्थात् जो सदा रहा भी, है भी और रहेगा भी—और जो अपने प्रकाशसे अन्धकारको सदा दूर रखता है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं। उसी स्थानमें श्रीमद्भागवतका स्वरूप भी इस प्रकारसे संक्षेपमें वर्णित है कि इस भागवतमें—जो दूसरोंकी बढ़ती देखकर डाह नहीं करते, ऐसे साधुजनोंका सब प्रकारके स्वार्थसे रहित परम धर्म और वह जाननेके योग्य ज्ञान वर्णित है जो वास्तवमें सब कल्याणका देनेवाला और आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन तीनों प्रकारके तापोंको मिटानेवाला है। और ग्रन्थोंसे क्या, जिन सुकृतियोंने पुण्यके कर्म कर रखे हैं और जो श्रद्धासे भागवतको पढ़ते या सुनते हैं, वे इसका सेवन करनेके समयसे ही अपनी भक्तिसे ईश्वरको अपने हृदयमें अविचलरूपसे स्थापित कर लेते हैं। ईश्वरका ज्ञान और उनमें भक्तिका परम साधन—ये दो पदार्थ जब किसी प्राणीको प्राप्त हो गये तो कौन-सा पदार्थ रह गया, जिसके लिये मनुष्य कामना करे और ये दोनों पदार्थ श्रीमद्भागवतसे पूरी मात्रामें प्राप्त होते हैं। इसीलिये यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्यमात्रका उपकारी है। जबतक मनुष्य भागवतको पढ़े नहीं और उसकी इसमें श्रद्धा न हो, तबतक वह समझ नहीं सकता कि ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका यह कितना विशाल समुद्र है। भागवतके पढ़नेसे उसको यह विमल ज्ञान हो जाता है कि एक ही परमात्मा प्राणी-प्राणीमें बैठा हुआ है और जब उसको यह ज्ञान हो जाता है, तब वह अधर्म करनेका मन नहीं करता; क्योंकि दूसरोंको चोट पहुँचाना अपनेको चोट पहुँचानेके समान हो जाता है। इसका ज्ञान होनेसे मनुष्य सत्य धर्ममें स्थिर हो जाता है, स्वभावहीसे दया-धर्मका पालन करने लगता है और किसी अहिंसक प्राणीके ऊपर वार करनेकी इच्छा नहीं करता। मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और प्राणिमात्रके प्रति दयाका भाव स्थापित करनेके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं। वर्तमान समयमें, जब संसारके बहुत अधिक भागोंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ा हुआ है, मनुष्यमात्रको इस पवित्र धर्मका उपदेश अत्यन्त कल्याणकारी होगा। जो भगवद्भक्त हैं और श्रीमद्भागवतके महत्त्वको जानते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि मनुष्यके लोक और परलोक दोनोंके बनानेवाले इस पवित्र ग्रन्थका सब देशोंकी भाषाओंमें अनुवाद कर इसका प्रचार करें।

॥ श्रीहरिः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त

उपचार

१-आवाहनम्—ॐ सहस्रशीर्षा॰
२-आसनम्—पुरुष एवेदं॰
३-पाद्यम्—एतावानस्य॰
४-अर्घ्यम्—त्रिपादूर्ध्व उदैत्॰
५-आचमनीयम्—तस्माद् विराड॰
६-स्नानम्—यत्पुरुषेण हविषा॰

७-वस्त्रम्—तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्॰

८-यज्ञोपवीतम्—तस्माद्यज्ञात्-सम्भृतम्॰
९-चन्दनम्—तस्माद्यज्ञात्-ऋत॰
१०-पुष्पम्—तस्मादश्वा अजायन्त॰
११-धूपम्—यत्पुरुषं व्यदधुः॰
१२-दीपम्—ब्राह्मणोऽस्य॰
१३-नैवेद्यम्—चन्द्रमा मनसो॰
१४-ताम्बूलम्—नाभ्या आसीद॰
१५-दक्षिणाम्—सप्तास्यासन्॰
१६-नमस्कारम्—वेदाहमेतं पुरुषम्॰
१७-प्रदक्षिणाम्—धाता पुरस्ता॰
१८-पुष्पाञ्जलिम्—यज्ञेन यज्ञ॰

प्रार्थना—

उपचार-समर्पणमें नमस्कारसे अन्तर है। वैसा ही आचार है।

शुक्लयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त

	विशेष
१-ॐ सहस्रशीर्षा॰	१-मन्त्रके उत्तरार्धमें अन्तर
२-पुरुष एवेदम्॰	२-भव्यम्। भाव्यम् भेद
३-एतावानस्य॰	३-अन्तर नहीं है।
४-त्रिपादूर्ध्व उदैत्॰	४-अन्तर नहीं है।
५-ततो विराड॰	५-मन्त्रके आरम्भमें अन्तर
६-तस्माद्यज्ञात्	६-सम्भृतम् क्रममें अन्तरारम्भ ६—८
७-तस्माद्यज्ञात्॰	७-ऋच्॰ क्रममें अन्तर ७—९
८-तस्मादश्वा अजायन्त॰	८—१०
९-तं यज्ञं बर्हिषि॰	९—७
१०-यत्पुरुषं व्यदधुः॰	१०-११
११-ब्राह्मणोऽस्य॰	११-१२
१२-चन्द्रमा मनसो॰	१२-१३
१३-नाभ्या आसीद॰	१३-१४
१४-यत्पुरुषेण हविषा॰	१४—६
१५-सप्तास्यासन्॰	अन्तर नहीं है।
१६-यज्ञेन यज्ञ॰—१६—१८	पुष्पाञ्जलि-मन्त्र एक ही है।
१७-अद्भ्यः—सम्भृतम्॰, धातापुरस्ता॰	
१८-वेदाहमेतं पुरुषम्॰	१८—१६ नमस्कारका मन्त्र है।

प्रार्थना—

पुष्पाञ्जलि, अर्घ्य, का प्रदक्षिणा, नमस्कार, का ही आचार है।

नोट—ये दोनों क्रम शाखाभेदसे वह-वह, क्रम ही शुद्ध है। उन-उन शाखावालोंके लिये यह शास्त्रीय व्यवस्था है।

—श्रीजनार्दनशास्त्री

शुक्लयजुर्वेदमें १६ ही उपचार हैं। कृष्णयजुर्वेदमें १८ उपचार कहे गये हैं। वहाँ ताम्बूल तथा दक्षिणाके लिये अलग-अलग मन्त्र हैं।

श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि तथा विनियोग, न्यास एवं ध्यान

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् अपना नित्य-नियम समाप्त करके पहले भगवत्-सम्बन्धी स्तोत्रों एवं पदोंके द्वारा मङ्गलाचरण और वन्दना करे। इसके बाद आचमन और प्राणायाम करके—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ १॥

—इत्यादि मन्त्रोंसे शान्तिपाठ करे। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीव्यासजी, शुकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत-ग्रन्थकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। यहाँ श्रीमद्भागवत-पुस्तकके षोडशोपचार पूजनकी मन्त्रसहित विधि दी जा रही है, इसीके अनुसार श्रीकृष्ण आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर पूजनके लिये संकल्प करना चाहिये। संकल्पके समय दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिमें कुशकी पवित्री पहने और हाथमें जल लिये रहे। संकल्पवाक्य इस प्रकार है—

ॐ तत्सत्। ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ओ३मद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यस्थाने कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकयोगवारांशकलग्नमुहूर्तकरणान्वितायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकशर्मणः (वर्मणः गुप्तस्य वा) मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य श्रीगोवर्धनधरणचरणारविन्दप्रसादात् सर्वसमृद्धिप्राप्त्यर्थं भगवदनुग्रहपूर्वकभगवदीयप्रेमोपलब्धये च श्रीभगवन्नामात्मकभगवत्स्वरूपश्रीभागवतस्य पाठेऽधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतस्य प्रतिष्ठां पूजनं चाहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके—

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंय्योऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां
नमो दिवे बृहते सादनाय॥२॥

—यह मन्त्र पढ़कर श्रीमद्भागवतकी सिंहासन या अन्य किसी आसनपर स्थापना करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्तके एक-एक मन्त्रद्वारा क्रमशः षोडश-उपचार अर्पण करते हुए पूजन करे।

(कृष्ण यजुर्वेदियोंके लिये पूजन-विधि अथवा मन्त्रके विनियोगमें जहाँ भिन्नता है, वहाँ पाद-टिप्पणीमें संकेत कर दिया गया है।)

१—देवताओ! हमें अपने कानोंसे ऐसे ही वचन सुननेको मिलें, जो परिणाममें कल्याणकारी हों। हम यज्ञकर्ममें समर्थ होकर अपनी इन आँखोंसे सदा शुभ-ही-शुभ देखें—अशुभका कभी दर्शन न हो। हमारा शरीर और उसके अवयव स्थिर हों—पुष्ट हों और उनसे परमात्माकी स्तुति—भगवान्‌की सेवा करते हुए हम ऐसी आयुका उपभोग करें, ऐसा जीवन बितायें जो देवताओंके लिये हितकर हो, जिसका देवकार्यमें उपयोग हो सके।

२—परमात्मन्! आप सबके मित्र—हितकारी होनेके कारण मित्र नामसे पुकारे जाते हैं, सबसे वर—श्रेष्ठ होनेसे आप वरुण हैं, सबको ग्रहण करनेवाले होनेके कारण अग्नि हैं। हम आपको इन 'मित्र', 'वरुण' एवं 'अग्नि' नामोंसे सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं कि यह सूक्त (आपके सुयशसे पूर्ण यह श्रीमद्भागवत-रूप सुन्दर उक्ति) अत्यन्त प्रशस्त हो—सर्वोत्तम होनेके साथ ही इसकी ख्याति एवं प्रसार हो तथा यह सूक्त हमलोगोंके लिये ऐसा सुख, ऐसी शान्ति प्रदान करे, जिसमें दुःख या अशान्तिका मेल न हो, अर्थात् इससे नित्यसुख, नित्यशान्ति प्राप्त हो। हम चाहते हैं अविचल स्थिति, हम चाहते हैं शाश्वत प्रतिष्ठा, इसे इस सूक्तके द्वारा हम प्राप्त कर सकें। देवदेव! यह जो आपका अत्यन्त प्रकाशमान परम महान् समस्त लोकोंका आश्रयभूत 'सूर्य' नामक स्वरूप है, इसे हम सदा ही नमस्कार करते हैं।

पूजन-मन्त्र

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥*

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। आवाहयामि।

—इस मन्त्रसे भगवान्‌के नामस्वरूप भागवतको नमस्कार करके आवाहन करे।

ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥†

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। आसनं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे आसन समर्पित करे।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥‡

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। पाद्यं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे पैर पखारनेके लिये गङ्गाजल समर्पित करे।

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥४॥§

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। अर्घ्यं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे अर्घ्य (गन्ध-पुष्पादिसहित गङ्गाजल) निवेदित करे।

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥५॥+

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। आचमनं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे आचमनके लिये गङ्गाजल अर्पित करे।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥६॥×

१—सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्डकी भूमिको सब ओरसे व्याप्त करके स्थित हैं और इससे दस अङ्गुल ऊपर भी हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए वे इससे परे भी हैं। उन परमात्माके मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं—असंख्य हैं।

२—यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्माका ही स्वरूप है, भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है। इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्तिका स्वामी है, तथापि ये जो अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, उन सबका भी शासन—सबको नियमके अंदर रखनेवाला वह परमात्मा ही है।

३—भूत, भविष्य और वर्तमान कालसे सम्बन्ध रखनेवाला जितना भी जगत् है—यह सब इस पुरुषकी महिमा है, इस परमात्माका विभूति-विस्तार है। उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट्स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है। यह सारा विश्व (ये तीनों लोक) तो उसके एक पादमें है, उसकी एक चौथाईमें समाप्त हो जाते हैं। अभी उसके तीन पाद और शेष हैं। यह त्रिपादस्वरूप अमृत है—अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूपमें ही स्थित है।

४—यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह परमात्मा अज्ञानके कार्यभूत इस संसारसे पृथक् तथा यहाँके गुणदोषोंसे अछूता रहकर ऊँची स्थितिमें विराजमान है। उसका एक अंशमात्र मायाके सम्पर्कमें आकर यहाँ जगत्‌के रूपमें उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड-चेतनमयी नाना प्रकारकी सृष्टिके रूपमें स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया।

५—उस आदिपुरुष परमात्मासे विराट्की उत्पत्ति हुई—यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इस ब्रह्माण्डके ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि परमात्माने अपनी मायासे विराट् ब्रह्माण्डकी रचनाकर स्वयं ही उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया। वे ही जीव ब्रह्माण्डका अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होकर वह विराट् पुरुष पुनः देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपोंमें प्रकट हुआ। इसके बाद उसने भूमिको उत्पन्न किया, फिर जीवोंके शरीरोंकी रचना की।

६—जिसमें सब कुछ हवन किया गया, उस पुरुषरूप यज्ञसे दही-घी आदि सामग्री उत्पन्न हुई। पुरुषने वनमें

---

* कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्तमें—"स भूमिं विश्वतो वृत्वा॰" पाठ है।
† " " —"यच्च भव्यम्॰" "
‡ " " —कोई अन्तर नहीं है।
§ कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्तसे इसमें कोई अन्तर नहीं है।
+ " " "तस्माद् विराडजायत॰" पाठ है।
× " " "ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत॰"—यह मन्त्र है।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। स्नानं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे स्नानके लिये गङ्गाजल अथवा शुद्ध जल अर्पित करे।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तमादजायत॥७॥*

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। वस्त्रं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे वस्त्र समर्पित करे।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥८॥†

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत अर्पित करे।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥९॥‡

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। गन्धं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे गन्ध-चन्दनादि चढ़ाये।

ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते॥१०॥§

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। पुष्पाणि समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे पुष्प चढ़ावे।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥११॥+

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। धूपमाघ्रापयामि।

—इस मन्त्रसे धूप सुँघाये।

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥१२॥×

उत्पन्न होनेवाले हिरन आदि और गाँवोंमें होनेवाले गाय, घोड़े आदि, वायु-देवता-सम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओंको भी उत्पन्न किया।

७—जिसमें सब कुछ हवन किया गया है उस यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए, उसीसे गायत्री आदि छन्दोंकी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे यजुर्वेदका भी प्रादुर्भाव हुआ।

८—उस यज्ञपुरुषसे घोड़े उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त भी जो नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले खच्चर, गदहे आदि प्राणी हैं, ये भी उत्पन्न हुए। उसीसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उसीसे भेड़ों तथा बकरोंकी उत्पत्ति हुई।

९—सबसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञका साधन था, देवताओंने उसे सङ्कल्पद्वारा यूपमें बँधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञमें उस सङ्कल्पित पशुका भावनाद्वारा ही प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया। इस प्रकार संस्कार किये हुए उस पुरुषरूपी पशुके द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियोंने उस मानसिक यज्ञको पूर्ण किया।

१०—जब प्राणमय देवताओंने उस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट किया, उस समय उसके अवयवोंके रूपमें कितने विभाग किये। इस पुरुषका क्या था, दोनों बाहें क्या थीं। दोनों जाँघें और दोनों पैर कौन थे।

११—ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात् मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई। दोनों भुजाएँ क्षत्रिय जाति बनीं, अर्थात् उनसे क्षत्रियोंका प्राकट्य हुआ। इस पुरुषकी दोनों जंघाएँ वैश्य हुईं—जंघाओंसे वैश्य जातिकी उत्पत्ति हुई और दोनों पैरोंसे शूद्र जाति प्रकट हुई।

१२—इसके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई। श्रोत्र (कान) से वायु और प्राणकी उत्पत्ति हुई और मुखसे अग्निका प्रादुर्भाव हुआ।

---

* कृष्णयजुःपुरुषसूक्तमें इसके स्थानपर—"ॐ ते यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः०" यह मन्त्र है।

† " " " "ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्०।"

‡ " " " "ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे०।"

§ " " " "ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः" यह मन्त्र है। इसमें पाठभेद नहीं है।

+ " " "ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य किं बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥"

× " " " "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः०।" यह मन्त्र है।

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। दीपं दर्शयामि॥

—इस मन्त्रसे घीका दीप जलाकर दिखाये। (उसके बाद हाथ धो ले।)

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१३॥*

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। नैवेद्यं निवेदयामि।

—इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यके बाद **''मध्ये पानीयं समर्पयामि''** एवम् **'उत्तरापोशनं समर्पयामि'** कहकर तीन-तीन बार जल छोड़े (प्रसाद)।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥१४॥†

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। प्रदक्षिणां समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा समर्पण करे।

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥‡

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। नमस्कारं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे नमस्कार समर्पित करे।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१६॥§

श्रीभगवन्नामस्वरूपिणे भागवताय नमः। मन्त्रपुष्पं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

१३—नाभिसे अन्तरिक्ष-लोककी उत्पत्ति हुई, मस्तकसे स्वर्गलोक प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथिवी हुई और कानसे दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकोंकी कल्पना की।

१४—उस समय देवताओंने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञकी कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुषस्वरूपमें ही हविष्यकी भावना की। जब पुरुषरूप हविष्यसे ही देवताओंने यज्ञका विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार वसन्तऋतु घी हुई, ग्रीष्मऋतुने समिधाका काम दिया और शरदृऋतुसे विशेष प्रकारके चरु-पुरोडाशादि हविष्यकी आवश्यकता पूर्ण हुई।

१५—प्रजापतिके प्राणरूपी देवताओंने जब मानसिक यज्ञका अनुष्ठान करते समय सङ्कल्पद्वारा पुरुषरूपी पशुका बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र इस यज्ञकी परिधि थे और इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी समिधा हुई। (गायत्री आदि ७, श्रुति जगती आदि ७ और कृति आदि ७—ये ही २१ छन्द हैं।)

१६—देवताओंने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञद्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष-प्रजापतिकी आराधना की। इस आराधनासे समस्त जगत्को धारण करनेवाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए। इस यज्ञकी उपासना करनेवाले महात्मालोग उस स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास करते हैं।

---

* कृष्णयजुःपुरुषसूक्तमें इसके स्थानपर—''ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥

† '' ''ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः। तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते॥''—मन्त्र है।

‡ '' ''ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे। सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते॥''

§ —पाठमें कोई अन्तर नहीं है।

प्रार्थना

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकभिदं वेदवेदान्तवेद्यं
लोके भक्तिप्रसिद्धं यदुकुलजलधौ प्रादुरासीदपारे।
यस्यासीद् रूपमेवं त्रिभुवनतरणे भक्तिवच्च स्वतन्त्रं
शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदा यः स नो भूतिहेतुः॥

जो इस जगत्‌में भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं, जिनका तत्त्व वेद और वेदान्तके द्वारा ही जाननेयोग्य है, जो अपार यादवरूपी समुद्रमें प्रकट हुए थे, मुर और नरकासुरको मारनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं सादर सप्रेम प्रणाम करता हूँ। जो इस संसारमें अपने स्वरूप तथा शास्त्रको प्रसन्नतापूर्वक प्रकट किया करते हैं तथा सचमुच ही जिनका स्वरूप इस त्रिभुवनको तारनेके लिये भक्तिके समान स्वतन्त्र नौकारूप है, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंका कल्याण करें।

नमः कृष्णपदाब्जाय भक्ताभीष्टप्रदायिने।
आरक्तं रोचयेच्छश्वन्मामके हृदयाम्बुजे॥

कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए श्रीकृष्णका जो चरणकमल मेरे हृदयकमलमें सदा दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है और भक्तजनोंकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण किया करता है, उसे मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

श्रीभागवतरूपं तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम्।
अर्चकायाखिलान् कामान् प्रयच्छति न संशयः॥

श्रीमद्भागवत भगवान्‌का स्वरूप है, इसका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। यह पूजन करनेवालेकी सारी कामनाएँ पूर्ण करता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

विनियोग

दाहिने हाथकी अनामिकामें कुशकी पवित्री पहन ले। फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर भूमिपर गिरा दे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः। बृहती छन्दः। श्रीकृष्णः परमात्मा देवता। ब्रह्म बीजम्। भक्तिः शक्तिः। ज्ञानवैराग्ये कीलकम्। मम श्रीमद्भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

'इस श्रीमद्भागवतस्तोत्र-मन्त्रके देवर्षि नारदजी ऋषि हैं, बृहती छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, ब्रह्म बीज है, भक्ति शक्ति है, ज्ञान और वैराग्य कीलक है। अपने ऊपर भगवान्‌की प्रसन्नता हो, उनकी कृपा बराबर बनी रहे—इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पाठ करनेमें इस भागवतका विनियोग (उपयोग) किया जाता है।'

न्यास

विनियोगमें आये हुए ऋषि आदिका तथा प्रधान देवताके मन्त्राक्षरोंका अपने शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें जो स्थापन किया जाता है, उसे 'न्यास' कहते हैं। मन्त्रका एक-एक अक्षर चिन्मय होता है, उसे मूर्तिमान् देवताके रूपमें देखना चाहिये। इन अक्षरोंके स्थापनसे साधक स्वयं मन्त्रमय हो जाता है, उसके हृदयमें दिव्य चेतनाका प्रकाश फैलता है, मन्त्रके देवता उसके स्वरूप होकर उसकी सर्वथा रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** इस श्रुतिके अनुसार स्वयं देवस्वरूप होकर देवताओंका पूजन करता है। ऋषि आदिका न्यास सिर आदि कतिपय अङ्गोंमें होता है। मन्त्रपदों अथवा अक्षरोंका न्यास प्रायः हाथकी अँगुलियों और हृदयादि अङ्गोंमें होता है। इन्हें क्रमशः 'करन्यास' और 'अङ्गन्यास' कहते हैं। किन्हीं-किन्हीं मन्त्रोंका न्यास सर्वाङ्गमें होता है। न्याससे बाहर-भीतरकी शुद्धि, दिव्यबलकी प्राप्ति और साधनाकी निर्विघ्न पूर्ति होती है। यहाँ क्रमशः ऋष्यादिन्यास, करन्यास और अङ्गन्यास दिये जा रहे हैं—

ऋष्यादिन्यास

नारदर्षये नमः शिरसि॥ १॥ बृहतीच्छन्दसे नमो मुखे॥ २॥ श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमो हृदये॥ ३॥ ब्रह्मबीजाय नमो गुह्ये॥ ४॥ भक्तिशक्तये नमः पादयोः॥ ५॥ ज्ञानवैराग्यकीलकाभ्यां नमो नाभौ॥ ६॥ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे॥ ७॥

ऊपर न्यासके सात वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इनमें पहला वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करे, दूसरा वाक्य पढ़कर मुखका, तीसरे वाक्यसे हृदयका, चौथेसे गुदाका, पाँचवेंसे दोनों पैरोंका, छठेसे नाभिका और सातवें वाक्यसे सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये।

करन्यास

इसमें '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षरमन्त्रके एक-एक अक्षरको प्रणवसे सम्पुटित करके दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंमें स्थापित करना है। मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं—

'**ॐ ॐ ॐ नमो दक्षिणतर्जन्याम्**' ऐसा उच्चारण करके दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी तर्जनीका स्पर्श करे। '**ॐ नं ॐ नमो दक्षिणमध्यमायाम्**'—यह उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ मों ॐ नमो दक्षिणानामिकायाम्**'—यह पढ़कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ भं ॐ नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्**'—इससे दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ गं ॐ नमो वामकनिष्ठिकायाम्**'—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ वं ॐ नमो वामानामिकायाम्**'—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ तें ॐ नमो वाममध्यमायाम्**'—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ वां ॐ नमो वामतर्जन्याम्**'—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिका स्पर्श करे। '**ॐ सुं ॐ नमः ॐ दें ॐ नमो दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वणोः**'—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे दाहिने हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे। '**ॐ वां ॐ नमः ॐ यं ॐ नमो वामाङ्गुष्ठपर्वणोः**'—इसका उच्चारण करके बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे बायें हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्रके पदोंका हृदयादि अङ्गोंमें न्यास करना है—

'**ॐ नमो नमो हृदयाय नमः**'—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। '**ॐ भगवते नमः शिरसे स्वाहा**'—इसका उच्चारण करके दाहिने हाथकी सभी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करे। '**ॐ वासुदेवाय नमः शिखायै वषट्**'—इसके द्वारा दाहिने हाथसे शिखाका स्पर्श करे। '**ॐ नमो नमः कवचाय हुम्**'—इसको पढ़कर दायें हाथकी अङ्गुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अङ्गुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे। '**ॐ भगवते नमः नेत्रत्रयाय वौषट्**'—इसको पढ़कर दाहिनें हाथकी अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागमें गुप्तरूपसे स्थित तृतीय नेत्र (ज्ञानचक्षु) का स्पर्श करे। '**ॐ वासुदेवाय नमः अस्त्राय फट्**'—इसका उच्चारण करके दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे उलटा अर्थात् बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले जाये और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये।

अङ्गन्यासमें आये हुए '**स्वाहा**' '**वषट्**', '**हुम्**', '**वौषट्**' और '**फट्**'—ये पाँच शब्द देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेवाले हवनसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। यहाँ इनका आत्मशुद्धिके लिये ही उच्चारण किया जाता है।

ध्यान

इस प्रकार न्यास करके बाहर-भीतरसे शुद्ध हो मनको सब ओरसे हटाकर एकाग्र भावसे भगवान्‌का ध्यान करे—

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
र्मण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम् ।
पीताम्बरं काञ्चनचित्रनद्ध-
मालाधरं केशवमध्युपैमि ॥

'जिनके मस्तकपर किरीट, बाहुओंमें भुजबन्ध और गलेमें बहुमूल्य हार शोभा पा रहे हैं, मणियोंके सुन्दर गहनोंसे सारे अङ्ग सुशोभित हो रहे हैं और शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है—सोनेके तारद्वारा विचित्र रीतिसे बँधी हुई वनमाला धारण किये, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।'

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी आवश्यक विधि

पुराणोंमें श्रीमद्भागवतके सप्ताहपारायण तथा श्रवणकी बड़ी भारी महिमा बतलायी गयी है, अतः यहाँ श्रीमद्भागवत-प्रेमियोंके लिये संक्षेपसे सप्ताह-यज्ञकी आवश्यक विधिका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मुहूर्तविचार—पहले विद्वान् ज्योतिषीको बुलाकर उनके द्वारा कथा-प्रारम्भके लिये शुभ मुहूर्तका विचार करा लेना चाहिये। नक्षत्रोंमें हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा तथा पूर्वाभाद्रपदा उत्तम हैं। तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशीको इस कार्यके लिये श्रेष्ठ बतलाया गया है। सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र—ये वार सर्वोत्तम हैं। तिथि, वार और नक्षत्रका विचार करनेके साथ ही यह भी देख लेना चाहिये कि शुक्र या गुरु अस्त, बाल अथवा वृद्ध तो नहीं हैं। कथारम्भका मुहूर्त भद्रादि दोषोंसे रहित होना चाहिये। उस दिन पृथ्वी जागती हो, वक्ता और श्रोताका चन्द्रबल ठीक हो। लग्नमें शुभ ग्रहोंका योग अथवा उनकी दृष्टि हो। शुभ ग्रहोंकी स्थिति केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो उत्तम है। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष (अगहन)—ये मास कथा आरम्भ करनेके लिये श्रेष्ठ बतलाये गये हैं। किन्हीं विद्वानोंके मतसे चैत्र और पौषको छोड़कर सभी मास ग्राह्य हैं।

कथाके लिये स्थान—सप्ताहकथाके लिये उत्तम एवं पवित्र स्थानकी व्यवस्था हो। जहाँ अधिक लोग सुविधासे बैठ सकें, ऐसे स्थानमें कथाका आयोजन उत्तम है। नदीका तट, उपवन (बगीचा), देवमन्दिर अथवा अपना निवास-स्थान—ये सभी कथाके लिये उपयोगी स्थल हैं, स्थान लिपा-पुता स्वच्छ हो। नीचेकी भूमि गोबर और पीली मिट्टीसे लीपी गयी हो। अथवा पक्का आँगन हो तो उसे धो दिया गया हो। उसपर पवित्र एवं सुन्दर आसन बिछे हों। ऊपरसे चँदोवा तना हो। चँदोवा आदि किसी भी कार्यमें नीले रंगके वस्त्रका उपयोग न किया जाय। यजमानके हाथसे सोलह हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा कथा-मण्डप बने। उसे केलेके खम्भोंसे सजाया जाय। हरे बाँसके खंभे लगाये जायँ। नूतन पल्लवोंकी बंदनवारों, पुष्पमालाओं और ध्वजा-पताकाओंसे मण्डपको भलीभाँति सुसज्जित किया जाय। उसपर ऊपरसे सुन्दर चँदोवा तान दिया जाय। उस मण्डपके दक्षिण-पश्चिम भागमें कथावाचक और मुख्य श्रोताके बैठनेके लिये स्थान हो। शेष भागमें देवताओं और कलश आदिका स्थापन किया जाय। कथावाचकके बैठनेके लिये ऊँची चौकी रखी जाय। उसपर शुद्ध आसन (नया गद्दा) बिछाया जाय। पीछे तथा पार्श्वभागमें मसनद एवं तकिये रख दिये जायँ। श्रीमद्भागवतको स्थापित करनेके लिये एक स्वर्णमण्डित * छोटी-सी चौकी या आधारपीठ बनवाकर उसपर पवित्र वस्त्र बिछा दिया जाय। उसपर आगे बतायी जानेवाली विधिके अनुसार अष्टदल कमल बनाकर पूजन करके श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापित की जाय। कथावाचक विद्वान्, सर्वशास्त्रकुशल, दृष्टान्त देकर श्रोताओंको समझानेमें समर्थ, सदाचारी एवं सद्गुणसम्पन्न ब्राह्मण हों। उनमें सुशीलता, कुलीनता, गम्भीरता तथा श्रीकृष्ण-भक्तिका होना भी परमावश्यक है। वक्ताको असूया तथा परनिन्दा आदि दोषसे सर्वथा रहित निःस्पृह होना चाहिये। श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको रेशमी वस्त्रसे आच्छादित करके छत्र-चँवरके साथ डोलीमें अथवा अपने मस्तकपर रखकर कथामण्डपमें लाना और स्थापित करना चाहिये। उस समय गीत-वाद्य आदिके द्वारा उत्सव मनाना चाहिये। कथामण्डपसे अनुपयोगी वस्तुएँ हटा देनी चाहिये। इधर-उधर दीवालोंमें भगवान् और उनकी लीलाओंके स्मारक चित्र लगा देने चाहिये। वक्ताका मुँह यदि उत्तरकी ओर हो तो मुख्य श्रोताका मुख पूर्वकी ओर होना चाहिये। यदि वक्ता पूर्वाभिमुख हो तो

---

* इस चौकीपर तीन तोला सोना मढ़ा होना चाहिये। इतनी शक्ति न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही यह स्वर्णसिंहासन बनवाये; परंतु शक्ति होते हुए लोभवश संकोच न करे।

श्रोताको उत्तराभिमुख होना चाहिये।

सप्ताह-कथा एक महान् यज्ञ है। इसे सुसम्पन्न करनेके लिये अन्य सुहृद्-सम्बन्धियोंको भी सहायक बना लेना चाहिये। अर्थकी भी समुचित व्यवस्था पहलेसे ही कर लेना उत्तम है। पाँच-सात दिन पहलेसे ही दूर-दूरतक कथाका समाचार भेज देना चाहिये और सबसे यह अनुरोध करना चाहिये कि वे स्वयं उपस्थित होकर सप्ताह-कथा श्रवण करें। अधिक समय न दे सकें तो भी एक दिन अवश्य पधारकर कथाश्रवणका लाभ लें। दूरसे आये हुए अतिथियोंके ठहरने और भोजनादिकी व्यवस्था भी करनी चाहिये। वक्ताको व्रत ग्रहण करनेके लिये एक दिन पहले ही क्षौर करा लेना चाहिये। सप्ताह-प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही देवस्थापन, पूजनादि कर लेना उत्तम है। वक्ता प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही स्नानादि करके संक्षेपसे सन्ध्या-वन्दनादिका नियम पूरा कर ले और कथामें कोई विघ्न न आये, इसके लिये नित्यप्रति गणेशजीका पूजन कर लिया करें।

सप्ताहके प्रथम दिन यजमान स्नान आदिसे शुद्ध हो नित्यकर्म करके आभ्युदयिक श्राद्ध करे। आभ्युदयिक श्राद्ध और पहले भी किया जा सकता है। यज्ञमें इक्कीस दिन पहले भी आभ्युदयिक श्राद्ध करनेका विधान है। उसके बाद गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओंसहित नवग्रह, षोडश मातृका, सप्त चिरजीवी (अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुरामजी) एवं कलशकी स्थापना तथा पूजा करे। एक चौकीपर सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें ताम्रकलश स्थापित करे। कलशके ऊपर भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। कलशके ही बगलमें भगवान् शालग्रामका सिंहासन विराजमान कर देना चाहिये। सर्वतोभद्र-मण्डलमें स्थित समस्त देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् भगवान् नर-नारायण, गुरु, वायु, सरस्वती, शेष, सनकादि कुमार, सांख्यायन, पराशर, बृहस्पति, मैत्रेय तथा उद्धवका भी आवाहन, स्थापन एवं पूजन करना चाहिये। फिर त्रय्यारुणि आदि छः पौराणिकोंका भी स्थापन-पूजन करके एक अलग पीठपर उसे सुन्दर वस्त्रसे आवृत करके, श्रीनारदजीकी स्थापना एवं अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर आधारपीठ, पुस्तक एवं व्यास (वक्ता आचार्य) का भी यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। कथा निर्विघ्न पूर्ण हो—इसके लिये गणेश-मन्त्र, द्वादशाक्षर-मन्त्र तथा गायत्री-मन्त्रका जप और विष्णुसहस्रनाम एवं गीताका पाठ करनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार सात, पाँच या तीन ब्राह्मणोंका वरण करे। श्रीमद्भागवतका भी एक पाठ अलग ब्राह्मणद्वारा कराये। देवताओंकी स्थापना और पूजाके पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक हाथमें पवित्री, अक्षत, फूल, जल और द्रव्य लेकर एक महासङ्कल्प कर लेना चाहिये। सङ्कल्प इस प्रकार है—

ॐ तत्सदद्य श्रीमहाभगवतो विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे वैवस्वतमनुभोग्यैकसप्ततियुगचतुष्टयान्त-
र्गताष्टाविंशतितमकलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे अमुक-संवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ अमुकराशिस्थिते भगवति सवितरि अमुकामुकराशिस्थितेषु चान्येषु ग्रहेषु महामाङ्गल्यप्रदे मासानामुत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकमुहूर्तकरणादि-युतायाम् अमुकतिथौ अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं पूर्वतीतानेकजन्म-संचिताखिलदुष्कृतनिवृत्तिपुरस्सरैहिकाध्यात्मिकादि-विविधतापपापापनोदार्थं दशाश्वमेधयज्ञजन्य-सम्यगिष्टराजसूययज्ञसहस्रपुण्यसमपुण्यचन्द्रसूर्यग्रहण-कालिकबहुब्राह्मणसम्प्रदानकसर्वसस्यपूर्णसर्व-रत्नोपशोभितमहीदानपुण्यप्राप्तये श्रीगोविन्द-चरणारविन्दयुगले निरन्तरमुत्तरोत्तरमेधमाननिस्सीम-प्रेमोपलब्धये तदीयपरमानन्दमयगोलोकधाम्नि नित्यनिवास-पूर्वकतत्परिचर्यारसास्वादनसौभाग्यसिद्धये च अमुक-गोत्रामुकप्रवरामुकशर्मब्राह्मणवदनारविन्दाच्छ्रीकृष्णवाङ्मय-मूर्तीभूतं श्रीमद्भागवतमष्टादशपुराणप्रकृतिभूतमनेक-श्रोतृश्रवणपूर्वकममुकदिनादारभ्यामुकदिनपर्यन्तं सप्ताह-

यज्ञरूपतया श्रोष्यामि प्राप्स्यमानेऽस्मिन् सप्ताहयज्ञे विघ्नपूगनिवारणपूर्वकं यज्ञरक्षाकरणार्थं गणपतिब्रह्मादि-सहितनवग्रहषोडशमातृकासप्तचिरजीविपुरुषसर्वतोभद्र-मण्डलस्थदेवकलशाद्यर्चनपुरस्सरं श्रीलक्ष्मीनारायण-प्रतिमाशालग्रामनरनारायणगुरुवायुसरस्वतीशेषसनत्कुमार-सांख्यायनपराशरबृहस्पतिमैत्रेयोद्धवत्रय्यारुणि-कश्यपरामशिष्याकृतव्रणवैशम्पायनहारीतनारदपूजन-माधारपीठपुस्तकव्यासपूजनञ्च यथालब्धोपचारैः करिष्ये।*

सङ्कल्पके पश्चात् पूर्वोक्त देवताओंके चित्रपटमें अथवा अक्षत-पुञ्जपर उनका आवाहन-स्थापन करके वैदिक-पूजा-पद्धतिके अनुसार उन सबकी पूजा करनी चाहिये। सप्तचिरजीविपुरुषों तथा सनत्कुमार आदिका पूजन नाम-मन्त्रद्वारा करना चाहिये।

कथामण्डपमें चारों दिशाओं या कोणोंमें एक-एक कलश और मध्यभागमें एक कलश—इस प्रकार पाँच कलश स्थापित करने चाहिये। चारों ओरके चार कलशोंमेंसे पूर्वके कलशपर ऋग्वेदकी, दक्षिण कलशपर यजुर्वेदकी, पश्चिम कलशपर सामवेदकी और उत्तर कलशपर अथर्ववेदकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। कोई-कोई मध्यमें सर्वतोभद्र-मण्डलके मध्यभागमें एक ही ताम्र-कलश स्थापित करके उसीके चारों दिशाओंमें सर्वतोभद्र-मण्डलकी चौकीके चारों ओर चारों वेदोंकी स्थापनाका विधान करते हैं। इसी कलशके ऊपर भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे और षोडशोपचार-विधिसे उसकी पूजा करे। देवपूजाका क्रम प्रारम्भसे इस प्रकार रखना चाहिये—

पहले रक्षादीप प्रज्वलित करे। एक पात्रमें घी भरकर रूईकी फूलबत्ती जलाये और उसे सुरक्षित स्थानपर अक्षतके ऊपर स्थापित कर दे। वह वायु आदिके झोंकेसे बुझ न जाय, इसकी सावधानीके साथ व्यवस्था करे। फिर स्वस्तिवाचनपूर्वक मङ्गलपाठ एवं सर्वदेव-नमस्कार करके पूर्वोक्त महासङ्कल्प पढ़े। उसके बाद एक पात्रमें चावल भरकर उसपर मौलीमें लपेटी हुई एक सुपारी रख दे और उसीमें गणेशजीका आवाहन करे—'**ॐ भूर्भुवः स्वः गणपते इहागच्छ इह तिष्ठ मम पूजां गृहाण।**' इस प्रकार आवाहन करके '**गणानां त्वा**०' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़े। फिर '**गजाननं भूत**०' इत्यादि श्लोकोंको पढ़ते हुए तदनुरूप ध्यान करे। '**ॐ मनो जूतिः**०' इत्यादि मन्त्रसे प्रतिष्ठा करके विभिन्न उपचार-समर्पणसम्बन्धी मन्त्र पढ़ते हुए अथवा '**श्रीगणपतये नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गणेशजीको क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, पुनराचमनीय, पञ्चामृतस्नान, शुद्धोदकस्नान, वस्त्र, रक्षासूत्र, यज्ञोपवीत, चन्दन, रोली, सिन्दूर, अबीर-गुलाल, अक्षत, फूल, माला, दूर्वादल, आभूषण, सुगन्ध (इत्रका फाहा), धूप, दीप, नैवेद्य (मिष्टान्न एवं गुड़, मेवा आदि) तथा ऋतुफल अर्पण करे। गङ्गाजलसे आचमन कराकर मुखशुद्धिके लिये सुपारी, लवंग, इलायची और कर्पूरसहित ताम्बूल अर्पण करे। अन्तमें दक्षिणा-द्रव्य एवं विशेषार्घ्य, प्रदक्षिणा एवं साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करके प्रार्थना करे।

ॐ लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं
रक्ताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम्।
उद्यद्दिवाकरकरोज्ज्वलकायकान्तं
विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि॥
त्वां देव विघ्नदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव॥

---

* संतानकी इच्छासे प्रयोग करना हो तो सङ्कल्पके उद्देश्यमें इस प्रकार योजना कर लेनी चाहिये। 'अतीतानन्तजन्म-संपादितदुष्कृतपरिपाकवशप्राप्तजन्मान्धक्रूरग्रहसूचितपलीवन्ध्यात्वकाकवन्ध्यात्वमृतवत्सात्वस्रवद्गर्भात्वादिरूपसन्ततिप्रतिबन्धकदोषनिवृत्तये सद्गुणसम्पन्नचिरञ्जीविस्वस्थसुन्दरसुपुत्रप्राप्तये च.....।'

यदि किसी मृत व्यक्तिकी सद्गतिके उद्देश्यसे भागवत-सप्ताह करना हो तो सङ्कल्पके उद्देश्यमें इस प्रकार योजना कर ले—'स्वीयानन्तदुष्कृतपरिपाकवशान्नानाविधदुःखक्षेत्रयोनिनाम् पितॄणाम् अमुकामुकशर्मणाम् (.....योनेः पितुः अमुकशर्मणः अन्यस्य वा कस्यचित्) प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकमुत्तमवैकुण्ठधामोपलब्धये.....।'

इसी प्रकार आवश्यकताके अनुसार अन्यान्य उद्देश्यकी भी योजना कर लेनी चाहिये।

—'**अनया पूजया गणपतिः प्रीयतां न मम।**' यों कहकर गणेशजीको पुष्पाञ्जलि दे।

इसके बाद '**ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मविष्णु-शिवसहितसूर्यादिनवग्रहा इहागच्छतेह तिष्ठत मम पूजां गृह्णीत**' इस प्रकार या वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक ब्रह्मादिसहित नवग्रहोंका आवाहन करे। फिर पूर्ववत् उपचार-मन्त्रोंसे अथवा **ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ सूर्याय नमः, ॐ चन्द्रमसे नमः, ॐ भौमाय नमः, ॐ बुधाय नमः, ॐ बृहस्पतये नमः, ॐ भार्गवाय नमः, ॐ शनैश्चराय नमः, ॐ राहवे नमः, ॐ केतवे नमः**—इन नाम-मन्त्रोंसे पाद्य, अर्घ्य आदि सब उपचार समर्पण करके निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे—

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः
सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु॥

—'**अनया पूजया ब्रह्मविष्णुशिवसहितसूर्यादि-नवग्रहाः प्रीयन्तां न मम।**' यों कहकर पुष्पाञ्जलि चढ़ाये।

तत्पश्चात् '**ॐ भूर्भुवः स्वः भो गौर्यादिषोडश-मातर इहागच्छत मम पूजां गृह्णीत**' इस प्रकार आवाहन करके नाम-मन्त्रोंद्वारा पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन करे—१ **ॐ गौर्यै नमः**। २ **ॐ पद्मायै नमः**। ३ **ॐ शच्यै नमः**। ४ **ॐ मेधायै नमः**। ५ **ॐ सावित्र्यै नमः**। ६ **ॐ विजयायै नमः**। ७ **ॐ जयायै नमः**। ८ **ॐ देवसेनायै नमः**। ९ **ॐ स्वधायै नमः**। १० **ॐ स्वाहायै नमः**। ११ **ॐ मातृभ्यो नमः**। १२ **ॐ लोकमातृभ्यो नमः**। १३ **ॐ हृष्ट्यै नमः**। १४ **ॐ पुष्ट्यै नमः**। १५ **ॐ तुष्ट्यै नमः**। १६ **ॐ आत्म-कुलदेवतायै नमः**॥ पूजनके पश्चात् प्रार्थना करे—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता।
इत्येता मातरः सर्वा वृद्धिं कुर्वन्तु मे सदा॥

—'**अनया पूजया गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्तां न मम।**' इस प्रकार समर्पणपूर्वक पुष्पाञ्जलि निवेदन करे।

तदनन्तर '**भो अश्वत्थामादिसप्तचिरजीविन इहागत्य मम पूजां गृह्णीत**' इस प्रकार आवाहन करके पूर्ववत् नाममन्त्रसे पूजा करे—

१ ॐ अश्वत्थाम्ने नमः। २ ॐ बलये नमः। ३ ॐ व्यासाय नमः। ४ ॐ हनुमते नमः। ५ ॐ विभीषणाय नमः। ६ ॐ कृपाय नमः। ७ ॐ परशुरामाय नमः।

पूजाके पश्चात् हाथमें फूल लेकर निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
वजमानगृहे नित्यं सुखदाः सिद्धिदाः सदा॥

—'**अनया पूजया अश्वत्थामादिसप्तचिरजीविनः प्रीयन्तां न मम।**' यह कहकर फूल चढ़ा दे।

इसके अनन्तर सर्वतोभद्र-मण्डलस्थ देवताओं-का आवाहन-पूजन (देवपूजापद्धतियोंके अनुसार) करके मध्यमें ताम्र-कलश स्थापित करे। उसकी संक्षिप्त विधि यह है—'**ॐ भूरसि**०' इत्यादि मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करके हाथसे (कलशके नीचेकी) भूमिका स्पर्श करे। उस समय '**ॐ मही द्यौः पृथ्वी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पितृतान्नो वरीमभिः॥**' इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये। उसी भूमिपर कुङ्कुम आदिसे अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर '**ॐ धान्यमसि**०' इत्यादि मन्त्रसे सप्तधान्य स्थापित करे। फिर उस सप्तधान्यपर कलश स्थापित करे; उस समय '**ॐ आजिघ्र कलश**०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। इसके बाद '**ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि**०' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशको शुद्ध जलसे भर दे। तत्पश्चात् '**ॐ स्थिरो भव**०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर कलशको ऐसा सुस्थिर कर दे, जिससे वह हिलने-डुलने या गिरने लायक न रह जाय। फिर उस कलशके पूर्व भागमें '**ॐ अग्निमीळे**०' इत्यादि मन्त्रसे ऋग्वेदका, दक्षिण भागमें '**ॐ इषे त्वोर्जेत्वा**०' इत्यादि मन्त्रसे यजुर्वेदका, पश्चिम भागमें '**ॐ अग्न आयाहि वीतये**०' इत्यादि मन्त्रसे सामवेदका तथा '**ॐ शन्नो देवी**०' इत्यादि मन्त्रसे उत्तर भागमें अथर्ववेदका स्थापन करे। पाँच कलश हों

तो पृथक्-पृथक् कलशोंपर वेदोंकी स्थापना करनी चाहिये। इसके अनन्तर आम, बड़, पीपल, पाकर और गूलरके पल्लवोंको कलशमें डाले और '**ॐ अश्वत्थे०**' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर '**ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती०**' इत्यादि मन्त्रसे कलशमें दूर्वादल छोड़े, '**ॐ पवित्रे स्थो०**' इत्यादि मन्त्रसे कुशा, '**ॐ याः फलिनी०**' इत्यादि मन्त्रसे पूगीफल, '**ॐ हिरण्यगर्भः०**' इत्यादि मन्त्रसे सोनेकी टिकड़ी, '**ॐ परिवाजपतिः०**' से पञ्चरत्न, '**ॐ या ओषधीः०**' इत्यादिसे सर्वौषधी, '**ॐ गन्धद्वारां०**' इत्यादिसे गन्ध और '**ॐ अक्षन्नमीमदन्त०**' इत्यादिसे अक्षतको कलशमें छोड़े। तदनन्तर '**ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०**' इत्यादिसे फूल छोड़े। '**ॐ धूरसि०**' इत्यादिसे धूपकी आहुति अग्निमें छोड़े। '**ॐ अग्निर्ज्योतिः०**' इत्यादि मन्त्रसे अलग दीप जलाकर रख दे। उसके बाद कलशमें तीर्थोदक डाले और '**ॐ पञ्चनद्यः०**' इत्यादि मन्त्रको पढ़े। फिर '**ॐ उपह्वरे०**' इत्यादि मन्त्रसे नदी-संगमका जल डाले। तत्पश्चात् '**ॐ समुद्राय त्वा०**' इत्यादि मन्त्रसे समुद्रका जल कलशमें डाले। फिर '**ॐ स्योना पृथिवि०**' इत्यादिसे सप्तमृत्तिका डालकर '**ॐ वसोः पवित्रमसि०**' इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए लाल वस्त्रसे कलशको आच्छादित करे। तदनन्तर '**ॐ पूर्णादर्वि०**' इत्यादि मन्त्रसे एक पूर्णपात्र (चावलसे भरा हुआ काँसी या ताँबेका पात्र) कलशके ऊपर रखे। इसके बाद '**ॐ श्रीश्च ते०**' इत्यादि मन्त्रसे उस पूर्णपात्रपर लाल कपड़ेमें लपेटा हुआ श्रीफल (गरीका गोला या नारियल) रखे। फिर हाथमें अक्षत ले '**ॐ मनो जूतिः०**' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुए कलशपर अक्षत छोड़े और इस प्रकार कलशकी प्रतिष्ठा सम्पन्न करे। तदनन्तर '**सर्वे समुद्राः सरितः०**' इत्यादि श्लोकोंका पाठ करते हुए कलशमें तीर्थोंका आवाहन करे। फिर गन्ध आदि उपचारोंसे तीर्थोंका पूजन करके कलशकी प्रार्थना करे—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने जलार्णवे।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव॥
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।
ब्रह्मणैर्निर्मितस्त्वं हि मन्त्रैरेवामृतोद्भवैः॥
प्रार्थयामि च कुम्भ त्वां वाञ्छितार्थं ददस्व मे।
पुरा हि सृष्टश्च पितामहेन
महोत्सवानां प्रथमो वरिष्ठः।
दूर्वाग्रसाश्वत्थसुपल्लवैर्युक्
करोतु शान्तिं कलशः सुवासाः॥

इस प्रार्थनाके अनन्तर कलशमें '**ॐ गणानां त्वा०**' इत्यादिसे गणेशका तथा '**ॐ तत्त्वायामि**' इत्यादि मन्त्रसे वरुणदेवताका आवाहन करके इनका षोडशोपचारसे पूजन करे। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जलि—ये ही षोडश उपचार कहे गये हैं। पूजनके पश्चात् '**अनया पूजया वरुणाद्यावाहितदेवताः प्रीयन्ताम्**' कहकर फूल छोड़ दे।

तदनन्तर कलशके ऊपर सुवर्णमयी लक्ष्मी-नारायणप्रतिमाको संस्कार करके स्थापित करे। पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंसे षोडश-उपचार चढ़ाकर पूजन करे। साथ ही शालग्रामजीकी भी पूजा करे। (षोडशोपचारपूजनविधि अन्यत्र इसीमें 'श्रीमद्भागवतकी पूजनविधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है) पूजाके पश्चात् इस प्रकार भगवान्‌से प्रार्थना करे—

ब्रह्मसत्रं करिष्यामि तवानुग्रहतो विभो।
तन्निर्विघ्नं भवेद्देव रमानाथ क्षमस्व मे॥

—'**अनया पूजया लक्ष्मीसहितो भगवान्नारायणः प्रीयतां न मम।**' यों कहकर पुष्पाञ्जलि चढ़ाये। ऐसा ही सर्वत्र करे।

इसके बाद '**ॐ नरनारायणाभ्यां नमः**' इस मन्त्रसे भगवान् नर-नारायणका आवाहन और पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

यो मायया विरचितं निजमात्मनीदं
खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय।

एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य
प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥
सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्
सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन
यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥

—'अनया पूजया भगवन्तौ नरनारायणौ प्रीयेतां न मम ।'

तत्पश्चात् वक्ता और श्रोताओंके सब विकारोंको दूर करनेके लिये वायुदेवताका आवाहन एवं पूजन करे—'ॐ वायवे सर्वकल्याणकर्त्रे नमः ।' इस मन्त्रसे पाद्य आदि निवेदन करके निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥

—'अनया पूजया सर्वकल्याणकर्ता वायुः प्रीयतां न मम ।'

वायुकी पूजाके पश्चात् गुरुका 'ॐ गुरवे नमः ।' इस मन्त्रसे पूजन करके प्रार्थना करे—

ब्रह्मस्थानसरोजमध्यविलसच्छीतांशुपीठस्थितं
स्फूर्जत्सूर्यरुचिं वराभयकरं कर्पूरकुन्दोज्ज्वलम् ।
श्वेतस्रग्वसनानुलेपनयुतं विद्युद्द्रुचा कान्तया
संश्लिष्टार्धतनुं प्रसन्नवदनं वन्दे गुरुं सादरम् ॥

—'अनया पूजया गुरुदेवः प्रीयतां न मम ।'

तदनन्तर श्वेतपुष्प आदिसे 'ॐ सरस्वत्यै नमः ।' इस मन्त्रद्वारा सरस्वतीका पूर्ववत् पूजन करके प्रार्थना करे—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

—'अनया पूजया भगवती सरस्वती प्रीयतां न मम ।'

सरस्वतीपूजनके पश्चात् 'ॐ शेषाय नमः', 'ॐ सनत्कुमाराय नमः', 'ॐ सांख्यायनाय नमः,' 'ॐ पराशराय नमः', 'ॐ बृहस्पतये नमः,' 'ॐ मैत्रेयाय नमः,' 'ॐ उद्धवाय नमः'—इन मन्त्रोंसे शेष आदिकी पूजा करके प्रार्थना करे—

शेषः सनत्कुमारश्च सांख्यायनपराशरौ ।
बृहस्पतिश्च मैत्रेय उद्धवश्चात्र कर्मणि ॥
प्रत्यूहवृन्दं सततं हरन्तां पूजिता मया ।

—'अनया पूजया शेषसनत्कुमारसांख्यायनपराशर-बृहस्पतिमैत्रेयोद्धवाः प्रीयन्तां न मम ।'

इसके बाद 'ॐ त्रय्यारुणये नमः', 'ॐ कश्यपाय नमः,' 'ॐ रामशिष्याय नमः,' 'ॐ अकृतव्रणाय नमः,' 'ॐ वैशम्पायनाय नमः', 'ॐ हारीताय नमः'—इन मन्त्रोंसे त्रय्यारुणि आदि छः पौराणिकोंकी पूर्ववत् पूजा करके प्रार्थना करे—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च रामशिष्योऽकृतव्रणः ।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥
सुखदाः सन्तु मे नित्यमनया पूजयार्चिताः ।

—'एतया पूजया त्रय्यारुणिप्रभृतयः षट् पौराणिकाः प्रीयन्तां न मम ।'

तत्पश्चात् 'ॐ भगवते व्यासाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान् व्यासदेवकी स्थापना और पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्य यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥

—'अनया पूजया भगवान् व्यासः प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद सप्ताहयज्ञके उपदेशक भगवान् सूर्यकी स्थापना करके प्रतिदिन उनकी भी पूजा करे। उनकी पूजाका मन्त्र 'ॐ सूर्याय नमः' है। पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये।

लोकेश त्वं जगच्चक्षुः सत्कर्म तव भाषितम् ।
करोमि तच्च निर्विघ्नं पूर्णमस्तु त्वदर्चनात् ॥

—'अनया पूजया सप्ताहयज्ञोपदेष्टा भगवान् सूर्यः प्रीयतां न मम ।'

इसके बाद दशावतारोंकी तथा शुकदेवजीकी भी यथास्थान स्थापना करके पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर नारदपीठ और पुस्तकपीठ दोनोंकी एक ही साथ पूजा करे। पहले उन दोनों पीठोंका जलसे अभिषेक करके उनपर चन्दनादिसे अष्टदल कमल बनावे। फिर 'ॐ आधारशक्तये नमः', 'ॐ मूलप्रकृतये नमः', 'ॐ क्षीरसमुद्राय नमः', 'ॐ श्वेतद्वीपाय नमः,' 'ॐ कल्पवृक्षाय नमः,' 'ॐ रत्नमण्डपाय नमः,' 'ॐ रत्नसिंहासनाय नमः'—इन मन्त्रोंसे दोनों पीठोंमें आधारशक्ति आदिकी भावना करके पूजा करे। फिर चारों

दिशाओंमें पूर्वादिके क्रमसे '**ॐ धर्माय नमः,**' '**ॐ ज्ञानाय नमः,**' '**ॐ वैराग्याय नमः,**' '**ॐ ऐश्वर्याय नमः**'—इन मन्त्रोंद्वारा धर्मादिकी भावना एवं पूजा करे। फिर पीठोंके मध्यभागमें '**ॐ अनन्ताय नमः**' से अनन्तकी और '**ॐ महापद्माय नमः**' से महापद्मकी पूजा करे। फिर यह चिन्तन करे—उस महापद्मका कन्द (मूलभाग) आनन्दमय है। उसकी नाल संवित्स्वरूप है, उसके दल प्रकृतिमय हैं, उसके केसर विकृतिरूप हैं, उसके बीज पञ्चाशत् वर्णस्वरूप हैं—और उन्हींसे उस महापद्मकी कर्णिका (गद्दी) विभूषित है। उस कर्णिकामें अर्कमण्डल, सोममण्डल और वह्निमण्डलकी स्थिति है। वहीं प्रबोधात्मक सत्त्व, रज एवं तम भी विराजमान हैं। ऐसी भावनाके पश्चात् उन सबकी पञ्चोपचारसे पूजा करे। मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ आनन्दमयकन्दाय नमः**', '**ॐ संवित्पालाय नमः,**' '**ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः,**' '**ॐ विकृतिमयकेसरेभ्यो नमः,**' '**ॐ पञ्चाशद्वर्णबीज-भूषितायै कर्णिकायै नमः**', '**ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः,**' '**ॐ सं सोममण्डलाय नमः,**' '**ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः,**' '**ॐ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः,**' '**ॐ रं रजसे नमः,**' '**ॐ तं तमसे नमः**'। इन सबकी पूजाके पश्चात् कमलके सब ओर पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः '**ॐ विमलायै नमः,**' '**ॐ उत्कर्षिण्यै नमः,**' '**ॐ ज्ञानायै नमः,**' '**ॐ क्रियायै नमः**', '**ॐ योगायै नमः,**' '**ॐ प्रह्वयै नमः**', '**ॐ सत्यायै नमः**', '**ॐ ईशानायै नमः**'—इन मन्त्रोंद्वारा विमला आदि आठ शक्तियोंकी पूजा करे और कमलके मध्यभागमें '**ॐ अनुग्रहायै नमः**' से अनुग्रहा नामकी शक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर '**ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय पद्मपीठात्मने नमः**' इस मन्त्रसे सम्पूर्ण पद्मपीठका पूजन करके उसपर सुन्दर वस्त्र डाल दे और उसीके ऊपर स्थापित करनेके लिये श्रीमद्भागवतकी पुस्तकको हाथमें लेकर '**ॐ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा सा पर्वता इमे। ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामसि॥**' इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त पीठपर स्थापित करे दे। फिर '**ॐ मनो जूतिः०**' इस मन्त्रसे पुस्तककी प्रतिष्ठा करके पुरुषसूक्तके षोडश मन्त्रोंद्वारा षोडशोपचार-विधिसे पूजा करे। (यह विधि पहले 'श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि' शीर्षक लेखमें दी गयी है।) तत्पश्चात् द्वितीय पीठको श्वेत वस्त्रसे आच्छादित करके उसपर देवर्षि नारदको स्थापित करे और '**ॐ सुरर्षिवरनारदाय नमः**' इस मन्त्रसे उनकी विधिवत् पूजा करके निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते ज्ञानवैराग्यशालिने।
नारदाय सर्वलोकपूजिताय सुरर्षये॥

—'**अनया पूजया देवर्षिनारदः प्रीयतां न मम।**'

इस प्रकार पूजनके पश्चात् यजमान पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, वस्त्र, दक्षिणा, सुपारी तथा रक्षासूत्र हाथमें लेकर '**ॐ अद्यामुकगोत्रममुकप्रवरममुक-शर्माणं ब्राह्मणमेभिर्वरणद्रव्यैः सर्वेष्टदश्रीमद्भागवत-वक्तृत्वेन भवन्तमहं वृणे**'—इस प्रकार कहते हुए कथावाचक आचार्यका वरण करे। हाथमें ली हुई सब सामग्री उनको दे दे। वह सब लेकर कथावाचक व्यास '**वृतोऽस्मि**' यों कहें। इसके बाद पुनः उन्हीं सब सामग्रियोंको हाथमें लेकर जप और पाठ करनेवाले ब्राह्मणों-का वरण करे। इसके लिये सङ्कल्पवाक्य इस प्रकार है—'**अद्याहममुकगोत्रानमुकप्रवरानमुकशर्मणो यथासंख्याकान् ब्राह्मणानेभिर्वरणद्रव्यैर्गाथा-विघ्नापनोदार्थं गणेशगायत्रीवासुदेवमन्त्रजपकर्तृत्वेन गीताविष्णुसहस्रनामपाठकर्तृत्वेन च वो विभज्य वृणे।**' इस प्रकार सङ्कल्प करके प्रत्येक ब्राह्मणको वरण-सामग्री अर्पित करे। सामग्री लेकर वे ब्राह्मण कहें '**वृताः स्मः**'। इसके बाद पहले कथावाचक आचार्यके हाथमें दिये हुए रक्षासूत्रको लेकर उन्हींके हाथमें बाँध दे। उस समय आचार्य निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करें—'**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।**' रक्षा बाँधनेके अनन्तर यजमान उनके ललाटमें कुङ्कुम (रोली) और अक्षतसे तिलक करे। इसी प्रकार जपकर्ता ब्राह्मणोंके हाथोंमें भी रक्षा बाँधकर तिलक करे। तदनन्तर पीले अक्षत लेकर यजमान चारों दिशाओंमें रक्षाके लिये बिखेरे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रोंका पाठ भी करे—

पूर्वे नारायणः पातु वारिजाक्षश्च दक्षिणे।
पश्चिमे पातु गोविन्द उत्तरे मधुसूदनः॥
ऐशान्यां वामनः पातु चाग्नेय्यां च जनार्दनः।
नैर्ऋत्यां पद्मनाभश्च वायव्यां माधवस्तथा॥

ऊर्ध्वं गोवर्धनधरो ह्यधस्ताच्च त्रिविक्रमः ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षतां हरिः ॥

इसके बाद वक्ता आचार्य यजमानके हाथमें—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥

इस मन्त्रको पढ़कर रक्षा बाँधे और—

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
तिलकं ते प्रयच्छन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥

—इस मन्त्रसे उसके ललाटमें तिलक कर दे। फिर यजमान व्यासासनकी चन्दन-पुष्प आदिसे पूजा करे। पूजनका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ व्यासासनाय नमः**'। तदनन्तर कथावाचक आचार्य ब्राह्मणों और वृद्ध पुरुषोंकी आज्ञा लेकर विप्रवर्गको नमस्कार और गुरुचरणोंका ध्यान करके व्यासासनपर बैठे। मन-ही-मन गणेश और नारदादिका स्मरण एवं पूजन करें। इसके बाद यजमान '**ॐ नमः पुराणपुरुषोत्तमाय**' इस मन्त्रसे पुनः पुस्तककी गन्ध, पुष्प, तुलसीदल एवं दक्षिणा आदिके द्वारा पूजा करे। फिर गन्ध, पुष्प आदिसे वक्ताका पूजन करते हुए निम्नाङ्कित श्लोकका पाठ करे—

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे हुए श्लोकोंको पढ़कर प्रार्थना करे—

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ।
कर्मग्राहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर श्रीमद्भागवतपर पुष्प, चन्दन और नारियल आदि चढ़ाये—

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥
मनोरथो मदीयोऽयं सर्वथा सफलस्त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥

कथा-मण्डपमें वायुरूपधारी आतिवाहिक शरीरवाले जीवविशेषके लिये एक सात गाँठके बाँसको भी स्थापित कर देना चाहिये।

तत्पश्चात् वक्ता भगवान्‌का स्मरण करके उस दिन श्रीमद्भागवतमाहात्म्यकी कथा सब श्रोताओंको सुनायें और दूसरे दिनसे प्रतिदिन देवपूजा, पुस्तक तथा व्यासकी पूजा एवं आरती हो जानेके पश्चात् वक्ता कथा प्रारम्भ करें। सन्ध्याको कथाकी समाप्ति होनेपर भी नित्यप्रति पुस्तक तथा वक्ताकी पूजा तथा आरती, प्रसाद एवं तुलसीदलका वितरण, भगवन्नामकीर्तन एवं शङ्खध्वनि करनी चाहिये। कथाके प्रारम्भमें और बीच-बीचमें भी जब कथाका विराम हो तो समयानुसार भगवन्नामकीर्तन करना चाहिये।

वक्ताको चाहिये कि प्रतिदिन पाठ प्रारम्भ करनेसे पूर्व एक सौ आठ बार '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका अथवा '**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' इस गोपाल-मन्त्रका जप करे। इसके बाद निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर विनियोग करें—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद-ऋषिः बृहतीच्छन्दः श्रीकृष्णपरमात्मा देवता ब्रह्मबीजं भक्तिः शक्तिः ज्ञानवैराग्यकीलकं मम श्रीमद्भगवत्-प्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।

विनियोगके पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे न्यास करें—

ऋष्यादिन्यासः—नारदर्षये नमः शिरसि । बृहती-च्छन्दसे नमः मुखे । श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः हृदि । ब्रह्मबीजाय नमः गुह्ये । भक्तिशक्तये नमः पादयोः । ज्ञानवैराग्यकीलकाभ्यां नमः नाभौ । श्रीमद्भगवत्प्रसाद-सिद्ध्यर्थकपाठविनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

द्वादशाक्षर-मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास करना चाहिये अथवा नीचे लिखे अनुसार उसका सम्पादन करना चाहिये—

करन्यासः—ॐ क्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ क्लीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ क्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्गन्यासः—ॐ क्लां हृदयाय नमः । ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लूं शिखायै वषट् । ॐ क्लैं कवचाय हुम् । ॐ क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ क्लः अस्त्राय फट् ।

इसके बाद निम्नाङ्कितरूपसे ध्यान करे—

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥
अस्ति स्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं
वस्तु प्रस्तुतवेणुनादलहरीनिर्वाणनिर्व्याकुलम् ।

स्रस्तस्रस्तनिबद्धनीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं
हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृतिः ॥

इस प्रकार ध्यानके पश्चात् कथा प्रारम्भ करनी चाहिये। सूर्योदयसे आरम्भ करके प्रतिदिन साढ़े तीन प्रहरतक कथा बाँचनी चाहिये। मध्याह्नमें दो घड़ी कथा बंद रखनी चाहिये। प्रातःकालसे मध्याह्नतक मूलका पाठ होना चाहिये और मध्याह्नसे सन्ध्यातक उसका संक्षिप्त भावार्थ अपनी भाषामें कहना चाहिये। मध्याह्नमें विश्रामके समय तथा रात्रिके समय भगवन्नाम-कीर्तनकी व्यवस्था होनी चाहिये।

श्रोताओंके स्थान—वक्ताके सामने श्रोताओंके बैठनेके लिये आगे-पीछे सात पंक्तियाँ बना लेनी चाहिये। पहली पंक्तिका नाम सत्यलोक है, इसमें साधु-संन्यासी, विरक्त, वैष्णव आदिको बैठाना चाहिये। दूसरी पंक्ति तपोलोक कहलाती है, इसमें वानप्रस्थ श्रोताओंको बैठाना चाहिये। तीसरी पंक्तिको जनलोक नाम दिया गया है, इसमें ब्रह्मचारी श्रोता बैठाये जाने चाहिये। चौथी पंक्ति महर्लोक कही गयी है, यह ब्राह्मण श्रोताओंका स्थान है। पाँचवीं पंक्तिको स्वर्लोक कहते हैं। इसमें क्षत्रिय श्रोताओंको बैठाना चाहिये। छठी पंक्तिका नाम भुवर्लोक है, जो वैश्य श्रोताओंका स्थान है। सातवीं पंक्ति भूर्लोक मानी गयी है, उसमें शूद्रजातीय श्रोताओंको बैठाना चाहिये। स्त्रियाँ वक्ताके वामभागकी भूमिपर कथा सुनें। ये स्थान उन लोगोंके लिये नियत किये गये हैं, जो प्रतिदिन नियमपूर्वक कथा सुनते हैं। जो श्रोता कथा प्रारम्भ होनेपर कुछ समयके लिये अनियमितरूपसे आते हैं, उनके लिये वक्ताके दक्षिण भागमें स्थान रहना चाहिये।

श्रोताओंके नियम—श्रोता प्रतिदिन एक बार हविष्यान्न भोजन करें। पतित, दुर्जन आदिका सङ्ग तो दूर रहा, उनसे वार्तालाप भी न करें। ब्रह्मचर्यपालन, भूमिशयन (नीचे आसन बिछाकर या तख्तपर सोना) सबके लिये अनिवार्य है। एकाग्रचित्त होकर कथा सुननी चाहिये। जितने दिन कथा सुनें—धन, स्त्री, पुत्र, घर एवं लौकिक लाभकी समस्त चिन्ताएँ त्याग दें। मलमूत्रपर काबू रखनेके लिये हलका आहार सुखद होता है। यदि शक्ति हो तो सात दिनतक उपवास करके कथा सुनें। अन्यथा दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुनें। इससे भी काम न चले तो फलाहार या एक समय अन्न-भोजन करें। जिस तरह भी सुखपूर्वक कथा सुननेकी सुविधा हो, वैसे कर ले। प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही भोजन करना उचित है। दाल, शहद, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित अन्न तथा बासी अन्नका परित्याग करें। काम, क्रोध, मद, मान, ईर्ष्या, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषसे दूर रहें। वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा तथा महापुरुषोंकी कभी भूलकर भी निन्दा न करें। रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदबहिष्कृत मनुष्योंसे वार्तालाप न करें। मनमें सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा उदारताको स्थान दें। श्रोताओंको वक्तासे ऊँचे आसनपर कभी नहीं बैठना चाहिये।

कुछ विशेष बातें—प्रत्येक स्कन्धकी समाप्ति होनेपर चन्दन, पुष्प, नैवेद्य आदिसे पुस्तककी पूजा करके आरती उतारनी चाहिये। शुकदेवजीके आगमन तथा श्रीकृष्णके प्राकट्यका प्रसङ्ग आनेपर भी आरती करनी चाहिये। बारहवें स्कन्धकी समाप्ति होनेपर पुस्तक और वक्ताका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। वक्ता गृहस्थ हों तो, उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार उदारतापूर्वक वस्त्राभूषण तथा नकद रुपये भेंट देने चाहिये। मृदङ्ग आदि बजाकर जोर-जोरसे कीर्तन करना चाहिये। जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खनाद करने चाहिये। ब्राह्मणों और याचकोंको अन्न एवं धन देना चाहिये। वक्ताके हाथोंसे श्रोताओंको प्रसाद एवं तुलसीदल मिलने चाहिये। प्रतिदिन कथाके प्रारम्भ और अन्तमें आरती होनी आवश्यक है। (श्रीमद्भागवतकी आरती इसीमें अन्यत्र दी गयी है।)

कथाका विश्राम प्रतिदिन नियत स्थलपर ही करना चाहिये। प्रथम दिन मनु-कर्दम-संवादतक। दूसरे दिन भरत-चरित्रतक। तीसरे दिन सातवें-स्कन्धकी समाप्तितक। चौथे दिन श्रीकृष्णके प्राकट्यतक। पाँचवें दिन रुक्मिणी-विवाहतक और छठे दिन हंसोपाख्यानतक-की कथा बाँचकर, सातवें दिन अवशिष्ट भागको पूर्ण कर देना चाहिये। * स्कन्धके आदि और अन्तिम श्लोकको

---

* मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि। भरतोपाख्यानपर्यन्तं द्वितीयेऽहनि वाचयेत्॥
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम्। कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थे दिवसे वदेत्॥
रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽहनि शस्यते। श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽहनि वदेत् सुधीः॥
सप्तमे तु दिने कुर्यात् पूर्तिं भागवतस्य च। एवं निर्विघ्नतासिद्धिर्विपर्यय इतोऽन्यथा॥

कई बार उच्च स्वरसे पढ़ना चाहिये। कथा-समाप्तिके दूसरे दिन वहाँ स्थापित हुए सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करके हवनकी वेदीपर पञ्चभूसंस्कार, अग्निस्थापन एवं कुशकण्डिका करे। फिर विधिपूर्वक वृत ब्राह्मणोंद्वारा हवन, तर्पण एवं मार्जन कराकर श्रीमद्भागवतकी शोभायात्रा निकाले और ब्राह्मण-भोजन कराये। मधु-मिश्रित खीर और तिल आदिसे भागवतके श्लोकोंका दशांश (अर्थात् १८००) आहुति देनी चाहिये। खीरके अभावमें तिल, चावल, जौ, मेवा, शुद्ध घी और चीनीको मिलाकर हवनीय पदार्थ तैयार कर लेना चाहिये। इसमें सुगन्धित पदार्थ (कपूर-काचरी, नागरमोथा, छड़छड़ीला, अगर-तगर, चन्दनचूर्ण आदि) भी मिलाने चाहिये। पूर्वोक्त अठारह सौ आहुति गायत्री-मन्त्र अथवा दशमस्कन्धके प्रति श्लोकसे देनी चाहिये। हवनके अन्तमें दिक्पाल आदिके लिये बलि, क्षेत्रपाल-पूजन, छायापात्र-दान, हवनका दशांश तर्पण एवं तर्पणका दशांश मार्जन करना चाहिये। फिर आरतीके पश्चात् किसी नदी, सरोवर या कूपादिपर जाकर अवभृथ-स्नान (यज्ञान्त-स्नान) भी करना चाहिये। इसके लिये समूहके साथ शोभायात्रा निकालकर गाजे-बाजेके साथ कीर्तन करते हुए जाना चाहिये। यजमान श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको अपने मस्तकपर रखकर उसकी शोभायात्रा निकाले, जिसमें वक्ता तथा सब श्रोता सम्मिलित हों। हरिकीर्तन होता चले। भागवत-ग्रन्थपर चँवर डुलते रहें। घड़ियाल, घण्टा, झाँझ, शङ्ख आदि बाजे बजते रहें। जो पूर्ण हवन करनेमें असमर्थ हो, वह यथाशक्ति हवनीय पदार्थ दान करें। अन्तमें कम-से-कम बारह ब्राह्मणोंको मधुयुक्त खीरका भोजन कराना चाहिये। व्रतकी पूर्तिके लिये सुवर्ण-दान और गोदान करना चाहिये। सुवर्ण-सिंहासनपर विराजित सुन्दर अक्षरोंमें लिखित श्रीमद्भागवतकी पूजा करके उसे दक्षिणासहित कथावाचक आचार्यको दान कर देना चाहिये। अन्तमें सब प्रकारकी त्रुटियोंकी पूर्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ कथावाचक आचार्यके द्वारा सुनना चाहिये। विरक्त श्रेताओंको 'गीता' सुननी चाहिये।

सप्ताह-कथाके प्रारम्भमें संग्रहणीय सामग्रीकी सूची

पूजन-सामग्री—गङ्गाजल, रोली (कुङ्कुम), मोली (रक्षासूत्र), चन्दन, शुद्ध केसर, कपूर, पुष्प, पुष्पमाला, तुलसीदल, बिल्वपत्र, दूर्वादल, धूप ,शुद्ध अगरबत्ती, पञ्चामृत (दूध ऽ।, दही ऽ=,मधु दो पैसे भर, चीनी ऽ=, घी छटाँक भर), दीप (यथासम्भव शुद्ध, गोघृत और रूई), पानका पत्ता पचास, सुपारी पचीस, यज्ञोपवीत पचीस, इलायची, लौंग, पेड़ा ऽ॥,, मेवा ऽ॥ , गुड़ ऽ।, चावल ऽ।, गेहूँ ऽ५, कुण्डे मिट्टीके दो गेहूँ बोनेके लिये, पीली सरसों, अबीर, गुलाल, ऋतुफल—केला-संतरा आदि, कपड़ा सफेद ५ गज, कपड़ा लाल ५ गज, कपड़ा पीला ५ गज, कपड़ा शुद्ध रेशमी १ ॥ गज, सर्वतोभद्रकी रचनाके लिये हरा, लाल, काला, पीला और गुलाबी रंग, गोबर, नारियल दो या सात, शुद्ध इत्र, कुशा, सिन्दूर, रुपये-रेजगी-पैसे, आरतीका पात्र, घण्टा, घड़ियाल, शङ्ख-झाँझ आदि, कोसा पचास, दियासलाई, चौकी एक सर्वतोभद्रके लिये, चौकी एक नारदजीके लिये, चौकी एक नवग्रह, षोडशमातृका और गणेशके लिये, चौकी एक व्यास, शुकदेव, सप्तचिरजीवी तथा पौराणिकोंके लिये,पाटा एक शेष-सनत्कुमारादिके लिये।

कलशस्थापनकी सामग्री—कलश ताँबेका एक, ताँबे या काँसीका पात्र एक, कलश मिट्टीके पाँच, सप्तधान्य (जौ, गेहूँ, धान, तिल, कँगनी, साँवा, चीना), पञ्चपल्लव (आम, पीपल, पाकर, गूलर और बड़के पत्ते) दूर्वा, कुशा, सुपारी, सुवर्णकी टिकड़ी चार, पञ्चरत्न (हीरा, नीलम, लाल, मोती और सोना, अभावमें यथासाध्य सुवर्ण), चन्दन, अक्षत, फूल, तीर्थोदक, समुद्रजल, सप्तमृत्तिका (घुड़सालकी, हाथीशालाकी, दीमककी, नदी-संगमकी, राजद्वारकी, गोशालाकी, तालाबकी), सर्वौषधि (कूट, जटामाशी, हल्दी गाँठ २, राभट, मुरा, शैलेभ, चन्दन, बचा, चम्पक और नागरमोथा—अभावमें केवल हल्दी), नदीसंगमका जल, श्रीलक्ष्मी-नारायणकी स्वर्णमयी प्रतिमा (चार तोले सोनेकी अथवा अपनी शक्तिके अनुसार)।

कथामण्डपके लिये सामग्री—चँदोवेका कपड़ा,

चौकोर मण्डप, केलेके खम्भे चार, बाँसके खम्भे, मण्डपको चारों ओरसे माला, फूल और पत्तोंसे सजाना, चारों दिशाओंमें झंडी लगाना, वस्त्र और गोटे आदिसे सजाना, चौकी व्यासके लिये, गद्दी, मसनद, तकिये, कम्बल, चद्दर, पाँच झंडियाँ, पुस्तकका वेष्टन, पुस्तकके लिये चौकी, आमके पत्तोंके बंदनवार।

गणेशजी, देवता, श्रीमद्भागवत और आचार्यकी पूजाके लिये प्रतिदिन चन्दन, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीपादि सामग्री।

वरणकी सामग्री—वक्ताके लिये चादर, धोती, गमछा, आसन, दक्षिणा, रुद्राक्षमाला, तुलसीमाला, जलपात्र आदि, जप करनेवालोंके लिये भी यथासम्भव वस्त्र-द्रव्य आदि।

पाठके लिये पुस्तक—भागवत, रामायण, गीता, सहस्रनाम आदि।

हवनके लिये सामग्री—वेदीके लिये स्वच्छ बालू एक बोरा, सूखी आमकी लकड़ी दो मन, कुशकण्डिकाके लिये कुशा, दुर्वा, अग्नि लानेके लिये दो कांस्यपात्र, एक पूर्णपात्र पीतलका बड़ा-सा, यज्ञपात्र—प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुक्, पूर्णाहुतिपात्र, चरुस्थाली, आज्यस्थाली (काँसीका बड़ा-सा कटोरा), हवनीय पदार्थ—मधुमिश्रित खीर, छायापात्र-दानके लिये काँसेकी छोटी एक कटोरी तथा उसके लिये घी।

तिल १० सेर, चावल ५ सेर, जौ २ ॥ सेर शुद्ध घी ४ सेर, शुद्ध चीनी २ ॥, पञ्चमेवा २ सेर (पिश्ता, बादाम, किशमिश, अखरोट और काँजू) —इन सबको मिलाकर हवनसामग्री बनायी जाती है। फिर इसमें सुगन्धित द्रव्य (कपूरकाचरी, छड़छड़ीला, नागरमोथा, अगर-तगर, चन्दनचूर्ण आदि) आवश्यकतानुसार मिला देने चाहिये। बलिके लिये पापड़, उड़द, दही, चावल रूईकी बत्ती, दक्षिणा, क्षेत्रपाल-बलिके लिये हँड़िया, काजल, सिंदूर, दीपक, दक्षिणा आदि। पूर्णाहुतिके लिये नारियलका गोला इत्यादि, वितरणके लिये प्रसाद। ब्राह्मण-भोजनके लिये मधुमिश्रित खीर तथा अन्यान्य मधुर पकवान, पूरी-साग आदि। हवनकर्ता ब्राह्मणोंके लिये वरण और दक्षिणा आदि।

कथा-समाप्तिके पश्चात् कथावाचकको भेंट देनेके लिये वस्त्र, आभूषण, नकद रुपये आदि।

वन्दनम्

सर्गस्थितिनिरोधार्थं कामाकाममयो हि यः।
तं कामं कामकामघ्नं कामाभावाय कामये॥
यत्कामिनीकेलिकलापकुण्ठितः कामोऽप्यकामा विमदो बभूव ह।
तं मानिनीमानदमानदं सदा श्रीमोहनं मोहनमानतोऽस्म्यहम्॥
यस्याङ्घ्रिपङ्कजपरागपरप्रभावाद् भूत्वा कृती कृतिमतां सृतिमाचरामि।
तं सद्गुरुं सततसर्वसुखं सदग्र्यं वन्दे सदा विमलबोधघनं विचित्रम्॥
व्यासं व्यासकरं वन्दे मुनिं नारायणं स्वयम्।
यतः प्राप्तकृपालोका लोका मुक्ताः कलेर्ग्रहात्॥
यस्य तुण्डाच्च्युतश्चूतो राजतेऽयं रसात्मकः।
तमच्युतकथाकुञ्जे सुकूजन्तं शुकं भजे॥
श्रीधरं श्रीधरं वन्दे श्रीधरैकपरायणम्।
यस्यैव श्रीप्रसादेन श्रीधरेयं कृतिः कृता॥
राधा भक्तिर्हरिर्ज्ञानं ताभ्यां या च समन्विता।
तां श्रीभागवतीं गाथां वन्दे युगलरूपिणीम्॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

कृष्णं नारायणं वन्दे कृष्णं वन्दे व्रजप्रियम् ।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे कृष्णं वन्दे पृथासुतम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं, जो जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके हेतु तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक— तीनों प्रकारके तापोंका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।

पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, तभी उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके लिये घरसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा ! तुम कहाँ जा रहे हो ?' उस समय वृक्षोंने तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजी-की ओरसे उत्तर दिया था। ऐसे सर्वभूत-हृदयस्वरूप श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ३

एक बार भगवत्कथामृतका रसास्वादन करनेमें कुशल मुनिवर शौनकजीने नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान महामति सूतजीको नमस्कार करके उनसे पूछा ॥ ३ ॥

शौनक उवाच

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ४

शौनकजी बोले—सूतजी ! आपका ज्ञान अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेके लिये करोड़ों सूर्योंके समान है । आप हमारे कानोंके लिये रसायन—अमृतस्वरूप सारगर्भित कथा कहिये ॥ ४ ॥

भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवेको वर्धते महान् ।
मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ५

भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त होनेवाले महान् विवेककी वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वैष्णवलोग किस तरह इस माया-मोहसे अपना पीछा छुड़ाते हैं ?॥ ५ ॥

इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः ।
क्लेशाक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ६

इस घोर कलिकालमें जीव प्रायः आसुरी स्वभावके हो गये हैं, विविध क्लेशोंसे आक्रान्त इन जीवोंको शुद्ध (दैवीशक्ति-सम्पन्न) बनानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है ? ॥ ६ ॥

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ।
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ७

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ८

सूत उवाच

प्रीतिः शौनक चित्ते ते ह्यतो वच्मि विचार्य च ।
सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥ ९

भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ।
तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १०

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११

एतस्मादपरं किञ्चिन्मनःशुद्धयै न विद्यते ।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥ १३

शुकं नत्वावदन् सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १४

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १५

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ॥ १६

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ॥ १७

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः ।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यजः ॥ १८

लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९

सूतजी ! आप हमें कोई ऐसा शाश्वत साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी तथा पवित्र करनेवालोंमें भी पवित्र हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दे ॥ ७ ॥ चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकती है और कल्पवृक्ष अधिक-से-अधिक स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है; परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवान्‌का योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठ धाम दे देते हैं ॥ ८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी ! तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌का प्रेम है; इसलिये मैं विचारकर तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका निष्कर्ष सुनाता हूँ, जो जन्म-मृत्युके भयका नाश कर देता है ॥ ९ ॥ जो भक्तिके प्रवाहको बढ़ाता है और भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रधान कारण है, मैं तुम्हें वह साधन बतलाता हूँ; उसे सावधान होकर सुनो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कलियुगमें जीवोंके कालरूपी सर्पके मुखका ग्रास होनेके त्रासका आत्यन्तिक नाश करनेके लिये श्रीमद्भागवतशास्त्रका प्रवचन किया है ॥ ११ ॥ मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। जब मनुष्यके जन्म-जन्मान्तरका पुण्य उदय होता है, तभी उसे इस भागवतशास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ जब शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌को यह कथा सुनानेके लिये सभामें विराजमान हुए, तब देवतालोग उनके पास अमृतका कलश लेकर आये ॥ १३ ॥ देवता अपना काम बनानेमें बड़े कुशल होते हैं; अतः यहाँ भी सबने शुकदेवमुनिको नमस्कार करके कहा; 'आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार परस्पर विनिमय (अदला-बदली) हो जानेपर राजा परीक्षित् अमृतका पान करें और हम सब श्रीमद्भागवतरूप अमृतका पान करेंगे' ॥ १५ ॥ इस संसारमें कहाँ काँच और कहाँ महामूल्य मणि तथा कहाँ सुधा और कहाँ कथा ? श्रीशुकदेवजीने (यह सोचकर) उस समय देवताओंकी हँसी उड़ा दी ॥ १६ ॥ उन्हें भक्तिशून्य (कथाका अनधिकारी) जानकर कथामृतका दान नहीं किया। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १७ ॥

पूर्वकालमें श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्‌की मुक्ति देखकर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला ॥ १८ ॥ अन्य सभी साधन तौलमें हलके पड़ गये,

मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ॥ २०

सप्ताहेन श्रुतं चैतत्सर्वथा मुक्तिदायकम् ।
सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१

यद्यपि ब्रह्मसम्बन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ।
सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २२

शौनक उवाच

लोकविग्रहमुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ।
विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३

सूत उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २४

एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ।
सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २५

कुमारा ऊचुः

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान् ।
त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २६

इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ।
तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २७

नारद उवाच

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ।
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम् ।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २९

नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ।
कलिनाधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ॥ ३०

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३१

अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा। यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ १९ ॥ उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया ॥ २० ॥ सप्ताह-विधिसे श्रवण करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रदान करता है। पूर्वकालमें इसे दयापरायण सनकादिने देवर्षि नारदको सुनाया था ॥ २१ ॥ यद्यपि देवर्षिने पहले ब्रह्माजीके मुखसे इसे श्रवण कर लिया था, तथापि सप्ताहश्रवणकी विधि तो उन्हें सनकादिने ही बतायी थी ॥ २२ ॥

शौनकजीने पूछा—सांसारिक प्रपञ्चसे मुक्त एवं विचरणशील नारदजीका सनकादिके साथ संयोग कहाँ हुआ और विधि-विधानके श्रवणमें उनकी प्रीति कैसे हुई ? ॥ २३ ॥

सूतजीने कहा—अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना अनन्य शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था ॥ २४ ॥ एक दिन विशालापुरीमें वे चारों निर्मल ऋषि सत्सङ्गके लिये आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा ॥ २५ ॥

सनकादिने पूछा—ब्रह्मन् ! आपका मुख उदास क्यों हो रहा है ? आप चिन्तातुर कैसे हैं ? इतनी जल्दी-जल्दी आप कहाँ जा रहे हैं ? और आपका आगमन कहाँसे हो रहा है ? ॥ २६ ॥ इस समय तो आप उस पुरुषके समान व्याकुल जान पड़ते हैं जिसका सारा धन लुट गया हो; आप-जैसे आसक्तिरहित पुरुषोंके लिये यह उचित नहीं है। इसका कारण बताइये ॥ २७ ॥

नारदजीने कहा—मैं सर्वोत्तम लोक समझकर पृथ्वीमें आया था। यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी (नासिक), हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग और सेतुबन्ध आदि कई तीर्थोंमें मैं इधर-उधर विचरता रहा; किन्तु मुझे कहीं भी मनको संतोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सहायक कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है ॥ २८—३० ॥ अब यहाँ सत्य, तप, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, दान आदि कुछ भी नहीं है। बेचारे जीव केवल अपना पेट पालनेमें लगे हुए हैं;

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।
पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३३

आश्रमा यवनैरुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ।
देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३४

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ।
कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५

अट्टशूला[1] जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाविह ॥ ३६

एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३७

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ।
एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३८

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ।
शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३९

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ।
वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ४०

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ।
मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४१

बालोवाच

भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥ ४२

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ।
यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४३

वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, उपद्रवग्रस्त हो गये हैं। जो साधु-संत कहे जाते हैं, वे पूरे पाखण्डी हो गये हैं; देखनेमें तो वे विरक्त हैं, किन्तु स्त्री-धन आदि सभीका परिग्रह करते हैं। घरोंमें स्त्रियोंका राज्य है, साले सलाहकार बने हुए हैं, लोभसे लोग कन्याविक्रय करते हैं और स्त्री-पुरुषोंमें कलह मचा रहता है ॥ ३१—३३ ॥ महात्माओंके आश्रम, तीर्थ और नदियोंपर यवनों-(विधर्मियों-) का अधिकार हो गया है; उन दुष्टोंने बहुत-से देवालय भी नष्ट कर दिये हैं ॥ ३४ ॥ इस समय यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध है; न ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही है। सारे साधन इस समय कलिरूप दावानलसे जलकर भस्म हो गये हैं ॥ ३५ ॥ इस कलियुगमें सभी देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचने लगे हैं, ब्राह्मणलोग पैसा लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्या-वृत्तिसे निर्वाह करने लगी हैं ॥ ३६ ॥

इस तरह कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर पहुँचा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ हो चुकी हैं ॥ ३७ ॥ मुनिवरो ! सुनिये, वहाँ मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा। वहाँ एक युवती स्त्री खिन्न मनसे बैठी थी ॥ ३८ ॥ उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा करती हुई कभी उन्हें चेत करानेका प्रयत्न करती और कभी उनके आगे रोने लगती थी ॥ ३९ ॥ वह अपने शरीरके रक्षक परमात्माको दसों दिशाओंमें देख रही थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ उसे पंखा झल रही थीं और बार-बार समझाती जाती थीं ॥ ४० ॥ दूरसे यह सब चरित देखकर मैं कुतूहलवश उसके पास चला गया। मुझे देखकर वह युवती खड़ी हो गयी और बड़ी व्याकुल होकर कहने लगी ॥ ४१ ॥

युवतीने कहा—अजी महात्माजी ! क्षणभर ठहर जाइये और मेरी चिन्ताको भी नष्ट कर दीजिये। आपका दर्शन तो संसारके सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है ॥ ४२ ॥ आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी भी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। मनुष्यका जब बड़ा भाग्य होता है, तभी आपके दर्शन हुआ करते हैं ॥ ४३ ॥

नारद उवाच

कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४४

नारदजी कहते हैं—तब मैंने उस स्त्रीसे पूछा—देवि ! तुम कौन हो ? ये दोनों पुरुष तुम्हारे क्या होते हैं ? और तुम्हारे पास ये कमलनयनी देवियाँ कौन हैं ? तुम हमें विस्तारसे अपने दुःखका कारण बताओ ॥ ४४ ॥

बालोवाच

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४५

गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ।
तथापि न च मे श्रेयः सेविताया सुरैरपि ॥ ४६

इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ।
वार्ता मे विततापास्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४७

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४८

तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका ।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥ ४९

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥ ५०

इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ।
इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५१

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ।
साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५२

त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ।
घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५३

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ।
वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५४

युवतीने कहा—मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं । समयके फेरसे ही ये ऐसे जर्जर हो गये हैं ॥ ४५ ॥ ये देवियाँ गङ्गाजी आदि नदियाँ हैं । ये सब मेरी सेवा करनेके लिये ही आयी हैं । इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेवित होनेपर भी मुझे सुख-शान्ति नहीं है ॥ ४६ ॥ तपोधन ! अब ध्यान देकर मेरा वृत्तान्त सुनिये । मेरी कथा वैसे तो प्रसिद्ध है, फिर भी उसे सुनकर आप मुझे शान्ति प्रदान करें ॥ ४७ ॥

मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न हुई, कर्णाटकमें बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें सम्मानित हुई; किन्तु गुजरातमें मुझको बुढ़ापेने आ घेरा ॥ ४८ ॥ वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अङ्ग-भङ्ग कर दिया । चिरकालतक यह अवस्था रहनेके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ दुर्बल और निस्तेज हो गयी ॥ ४९ ॥ अब जबसे मैं वृन्दावन आयी, तबसे पुनः परम सुन्दरी सुरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ ॥ ५० ॥ किन्तु सामने पड़े हुए ये दोनों मेरे पुत्र थके-माँदे दुःखी हो रहे हैं । अब मैं यह स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना चाहती हूँ ॥ ५१ ॥ ये दोनों बूढ़े हो गये हैं—इसी दुःखसे मैं दुःखी हूँ । मैं तरुणी क्यों और ये दोनों मेरे पुत्र बूढ़े क्यों ? ॥ ५२ ॥ हम तीनों साथ-साथ रहनेवाले हैं । फिर यह विपरीतता क्यों ? होना तो यह चाहिये कि माता बूढ़ी हो और पुत्र तरुण ॥ ५३ ॥ इसीसे मैं आश्चर्यचकित चित्तसे अपनी इस अवस्थापर शोक करती रहती हूँ । आप परम बुद्धिमान् एवं योगनिधि हैं; इसका क्या कारण हो सकता है, बताइये ? ॥ ५४ ॥

नारद उवाच

ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ।
न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५५

नारदजीने कहा—साध्वि ! मैं अपने हृदयमें ज्ञानदृष्टिसे तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखका कारण देखता हूँ, तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये । श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ ५५ ॥

सूत उवाच

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ ५६

सूतजी कहते हैं—मुनिवर नारदजीने एक क्षणमें ही उसका कारण जानकर कहा ॥ ५६ ॥

नारद उवाच

श्रृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ।
तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ ५७

जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ।
इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ।
धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥ ५८

अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ।
वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥ ५९

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ।
उपेक्षितानुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६०

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६१

अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ।
किञ्चिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६२

नारदजीने कहा—देवि ! सावधान होकर सुनो । यह दारुण कलियुग है । इसीसे इस समय सदाचार, योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गये हैं ॥ ५७ ॥ लोग शठता और दुष्कर्ममें लगकर अघासुर बन रहे हैं । संसारमें जहाँ देखो, वहीं सत्पुरुष दुःखसे म्लान हैं और दुष्ट सुखी हो रहे हैं । इस समय जिस बुद्धिमान् पुरुषका धैर्य बना रहे, वही बड़ा ज्ञानी या पण्डित है ॥ ५८ ॥ पृथ्वी क्रमशः प्रतिवर्ष शेषजीके लिये भाररूप होती जा रही है । अब यह छूनेयोग्य तो क्या, देखनेयोग्य भी नहीं रह गयी है और न इसमें कहीं मङ्गल ही दिखायी देता है ॥ ५९ ॥ अब किसीको पुत्रोंके साथ तुम्हारा दर्शन भी नहीं होता । विषयानुरागके कारण अंधे बने हुए जीवोंसे उपेक्षित होकर तुम जर्जर हो रही थी ॥ ६० ॥ वृन्दावनके संयोगसे तुम फिर नवीन तरुणी हो गयी हो । अतः यह वृन्दावनधाम धन्य है, जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है ॥ ६१ ॥ परंतु तुम्हारे इन दोनों पुत्रोंका यहाँ कोई ग्राहक नहीं है, इसलिये इनका बुढ़ापा नहीं छूट रहा है । यहाँ इनको कुछ आत्मसुख (भगवत्स्पर्शजनित आनन्द) की प्राप्ति होनेके कारण ये सोते-से जान पड़ते हैं ॥ ६२ ॥

भक्तिरुवाच

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ।
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६३

करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ।
इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६४

भक्तिने कहा—राजा परीक्षित्‌ने इस पापी कलियुगको क्यों रहने दिया ? इसके आते ही सब वस्तुओंका सार न जाने कहाँ चला गया ? ॥ ६३ ॥ करुणामय श्रीहरिसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है ? मुने ! मेरा यह संदेह दूर कीजिये, आपके वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है ॥ ६४ ॥

नारद उवाच

यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ।
सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६५

यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ।
तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६६

दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ।
न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक् ॥ ६७

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ ६८

नारदजीने कहा—बाले ! यदि तुमने पूछा है, तो प्रेमसे सुनो; कल्याणी ! मैं तुम्हें सब बताऊँगा और तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ॥ ६५ ॥ जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहाँ सम्पूर्ण साधनोंमें बाधा डालनेवाला कलियुग आ गया ॥ ६६ ॥ दिग्विजयके समय राजा परीक्षित्‌की दृष्टि पड़नेपर कलियुग दीनके समान उनकी शरणमें आया । भ्रमरके समान सारग्राही राजाने यह निश्चय किया कि इसका वध मुझे नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥ क्योंकि जो फल तपस्या, योग एवं समाधिसे भी नहीं मिलता, कलियुगमें वही फल श्रीहरिकीर्तनसे ही भलीभाँति मिल जाता है ॥ ६८ ॥

एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ।
विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६९

इस प्रकार सारहीन होनेपर भी उसे इस एक ही दृष्टिसे सारयुक्त देखकर उन्होंने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये ही इसे रहने दिया था ॥ ६९ ॥

कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ७०

इस समय लोगोंके कुकर्ममें प्रवृत्त होनेके कारण सभी वस्तुओंका सार निकल गया है और पृथ्वीके सारे पदार्थ बीजहीन भूसीके समान हो गये हैं ॥ ७० ॥

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७१

ब्राह्मण केवल अन्न-धनादिके लोभवश घर-घर एवं जन-जनको भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इसलिये कथाका सार चला गया ॥ ७१ ॥

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७२

तीर्थोंमें नाना प्रकारके अत्यन्त घोर कर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी रहने लगे हैं; इसलिये तीर्थोंका भी प्रभाव जाता रहा ॥ ७२ ॥

कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७३

जिनका चित्त निरन्तर काम, क्रोध, महान् लोभ और तृष्णासे तपता रहता है, वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे हैं, इसलिये तपका भी सार निकल गया ॥ ७३ ॥

मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाद्यैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७४

मनपर काबू न होनेके कारण तथा लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण एवं शास्त्रका अभ्यास न करनेसे ध्यानयोगका फल मिट गया ॥ ७४ ॥

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७५

पण्डितोंकी यह दशा है कि वे अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं; उनमें संतान पैदा करनेकी ही कुशलता पायी जाती है, मुक्तिसाधनमें वे सर्वथा अकुशल हैं ॥ ७५ ॥

न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरा ।
एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७६

सम्प्रदायानुसार प्राप्त हुई वैष्णवता भी कहीं देखनेमें नहीं आती । इस प्रकार जगह-जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है ॥ ७६ ॥

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ।
अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७७

यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें किसीका दोष नहीं है । इसीसे पुण्डरीकाक्षभगवान् बहुत समीप रहते हुए भी यह सब सह रहे हैं ॥ ७७ ॥

सूत उवाच

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ; फिर उसने जो कुछ कहा, उसे सुनिये ॥ ७८ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तद्व शौनक ॥ ७८

भक्तिरुवाच

भक्तिने कहा—देवर्षे ! आप धन्य हैं ! मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो आपका समागम हुआ । संसारमें साधुओंका दर्शन ही समस्त सिद्धियोंका परम कारण है ॥ ७९ ॥ आपका केवल एक बारका उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रह्लादने मायापर विजय प्राप्त कर ली थी । ध्रुवने भी आपकी कृपासे ही ध्रुवपद प्राप्त किया था । आप सर्वमङ्गलमय और साक्षात् श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ८० ॥

सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ।
साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ८०

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग

नारद उवाच

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४

इति निश्चित्य चिद्रूपः सद्रूपां त्वां ससर्ज ह ।
परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५

बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ।
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान् पोषयेति च ॥ ६

अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ।
मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ।
भूमौ भक्तविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ।
कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ।
त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १०

स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ।
तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३

नारदजीने कहा—बाले ! तुम व्यर्थ ही अपनेको क्यों खेदमें डाल रही हो ? अरे ! तुम इतनी चिन्तातुर क्यों हो ? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करो, उनकी कृपासे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा ॥ १ ॥ जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं ॥ २ ॥ फिर तुम तो भक्ति हो और सदा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो; तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीचोंके घरोंमें भी चले जाते हैं ॥ ३ ॥ सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किन्तु कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाली है ॥ ४ ॥ यह सोचकर ही परमानन्दचिन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने अपने सत्स्वरूपसे तुम्हें रचा है; तुम साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रिया और परम सुन्दरी हो ॥ ५ ॥ एक बार जब तुमने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ ?' तब भगवान्‌ने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण करो।' ॥ ६ ॥ तुमने भगवान्‌की वह आज्ञा स्वीकार कर ली; इससे तुमपर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और तुम्हारी सेवा करनेके लिये मुक्तिको तुम्हें दासीके रूपमें दे दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्रोंके रूपमें ॥ ७ ॥ तुम अपने साक्षात् स्वरूपसे वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो, भूलोकमें तो तुमने उनकी पुष्टिके लिये केवल छायारूप धारण कर रखा है ॥ ८ ॥

तब तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लिये पृथ्वीतलपर आयीं और सत्ययुगसे द्वापरपर्यन्त बड़े आनन्दसे रहीं ॥ ९ ॥ कलियुगमें तुम्हारी दासी मुक्ति पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी थी, इसलिये वह तो तुरन्त ही तुम्हारी आज्ञासे वैकुण्ठलोकको चली गयी ॥ १० ॥ इस लोकमें भी तुम्हारे स्मरण करनेसे ही वह आती है और फिर चली जाती है; किंतु इन ज्ञान-वैराग्यको तुमने पुत्र मानकर अपने पास ही रख छोड़ा है ॥ ११ ॥ फिर भी कलियुगमें इनकी उपेक्षा होनेके कारण तुम्हारे ये पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं; फिर भी तुम चिन्ता न करो, मैं इनके नवजीवनका उपाय सोचता हूँ ॥ १२ ॥ सुमुखि ! कलिके समान कोई भी युग नहीं है, इस युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें प्रत्येक पुरुषके हृदयमें स्थापित कर दूँगा ॥ १३ ॥

अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४

त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ॥ १५

येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८

नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥ २०

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१

सूत उवाच

इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ।
सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२

भक्तिरुवाच

अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३

कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४

सूत उवाच

तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ।
तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५

मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ।
ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६

देखो, अन्य सब धर्मोंको दबाकर और भक्तिविषयक महोत्सवोंको आगे रखकर यदि मैंने लोकमें तुम्हारा प्रचार न किया तो मैं श्रीहरिका दास नहीं ॥ १४ ॥ इस कलियुगमें जो जीव तुमसे युक्त होंगे, वे पापी होनेपर भी बेखटके भगवान् श्रीकृष्णके अभय धामको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ जिनके हृदयमें निरन्तर प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती है, वे शुद्धान्तःकरण पुरुष स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते ॥ १६ ॥ जिनके हृदयमें भक्ति महारानीका निवास है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस या दैत्य आदि स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ १७ ॥ भगवान् तप, वेदाध्ययन, ज्ञान और कर्म आदि किसी भी साधनसे वशमें नहीं किये जा सकते; वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं। इसमें श्रीगोपीजन प्रमाण हैं ॥ १८ ॥ मनुष्योंका सहस्रों जन्मके पुण्य-प्रतापसे भक्तिमें अनुराग होता है। कलियुगमें केवल भक्ति, केवल भक्ति ही सार है। भक्तिसे तो साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र सामने उपस्थित हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं, वे तीनों लोकोंमें दुःख-ही-दुःख पाते हैं। पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ २० ॥ बस, बस—व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञानचर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं है; एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देनेवाली है ॥ २१ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अङ्ग पुष्ट हो गये और वे उनसे कहने लगीं ॥ २२ ॥

भक्तिने कहा—नारदजी ! आप धन्य हैं। आपकी मुझमें निश्चल प्रीति है। मैं सदा आपके हृदयमें रहूँगी, कभी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी ॥ २३ ॥ साधो ! आप बड़े कृपालु हैं। आपने क्षणभरमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया। किन्तु अभी मेरे पुत्रोंमें चेतना नहीं आयी है; आप इन्हें शीघ्र ही सचेत कर दीजिये, जगा दीजिये ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी करुणा आयी और वे उन्हें हाथसे हिलाडुलाकर जगाने लगे ॥ २५ ॥ फिर उनके कानके पास मुँह लगाकर जोरसे कहा, 'ओ ज्ञान ! जल्दी जग पड़ो; ओ वैराग्य ! जल्दी जग पड़ो।' ॥ २६ ॥

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ।
बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिद्योत्थितौ बलात् ॥ २७

नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ।
बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ ॥ २८

क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ।
ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ।
चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३०

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ।
उद्यमः सफलस्तेऽयं भविष्यति न संशयः ॥ ३१

एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ।
तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२

सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धतानयोः ।
गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३

इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ।
नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४

नारद उवाच

अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वेन निरूपितम् ।
किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५

क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६

सूत उवाच

तत्र द्वावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ।
तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७

वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ।
असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ।
मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥ ३८

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ।
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ ३९

फिर उन्होंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ करके उन्हें जगाया; इससे वे जैसे-तैसे बहुत जोर लगाकर उठे ॥ २७ ॥ किन्तु आलस्यके कारण वे दोनों जँभाई लेते रहे, नेत्र उघाड़कर देख भी नहीं सके । उनके बाल बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे, उनके अङ्ग प्रायः सूखे काठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भूख-प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगे, 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ २९ ॥ इनकी यह नींद और इससे भी बढ़कर इनकी वृद्धावस्था कैसे दूर हो ?' शौनकजी ! इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे भगवान्‌का स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने ! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग निःसंदेह सफल होगा ॥ ३१ ॥ देवर्षे ! इसके लिये तुम एक सत्कर्म करो, वह कर्म तुम्हें संतशिरोमणि महानुभाव बतायेंगे ॥ ३२ ॥ उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमें इनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायँगी तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार होगा' ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी वहाँ सभीको साफ-साफ सुनाई दी । इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझे तो इसका कुछ आशय समझमें नहीं आया' ॥ ३४ ॥

नारदजी बोले—इस आकाशवाणीने भी गुप्तरूपमें ही बात कही है । यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन किया जाय, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो ॥ ३५ ॥ वे संत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस साधनको बतायेंगे ? अब आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ३६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! तब ज्ञान-वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारदमुनि वहाँसे चल पड़े और प्रत्येक तीर्थमें जा-जाकर मार्गमें मिलनेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन पूछने लगे ॥ ३७ ॥ उनकी उस बातको सुनते तो सब थे, किंतु उसके विषयमें कोई कुछ भी निश्चित उत्तर न देता । किन्हींने उसे असाध्य बताया; कोई बोले—'इसका ठीक-ठीक पता लगना ही कठिन है ।' कोई सुनकर चुप रह गये और कोई-कोई तो अपनी अवज्ञा होनेके भयसे बातको टाल-टूलकर खिसक गये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीमें महान् आश्चर्यजनक हाहाकार मच गया । लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे—'भाई ! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगाये जा सके, तब और

भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ।
उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ ४०

योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ।
तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ ४१

एवमृषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२

ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ।
तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३

तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ।
कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४

नारद उवाच

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमोऽभवत् ।
कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५

भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ।
पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६

सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ।
लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७

हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ।
अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८

येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ।
भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः पुरं गतौ ॥ ४९

अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ।
अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५०

अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ।
अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१

भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ।
स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२

कुमारा ऊचुः

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ।
उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३

कोई उपाय नहीं है ॥ ३९-४० ॥ स्वयं योगिराज नारदको भी जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी लोग कैसे बता सकते हैं ?' ॥ ४१ ॥ इस प्रकार जिन-जिन ऋषियोंसे इसके विषयमें पूछा गया, उन्होंने निर्णय करके यही कहा कि यह बात दुःसाध्य ही है ॥ ४२ ॥

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और बदरीवनमें आये । ज्ञान-वैराग्यको जगानेके लिये वहाँ उन्होंने यह निश्चय किया कि 'मैं तप करूँगा' ॥ ४३ ॥ इसी समय उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये । उन्हें देखकर वे मुनिश्रेष्ठ कहने लगे ॥ ४४ ॥

नारदजीने कहा—महात्माओ ! इस समय बड़े भाग्यसे मेरा आपलोगोंके साथ समागम हुआ है, आप मुझपर कृपा करके शीघ्र ही वह साधन बताइये ॥ ४५ ॥ आप सभी लोग बड़े योगी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं । आप देखनेमें पाँच-पाँच वर्षके बालक-से जान पड़ते हैं, किंतु हैं पूर्वजोंके भी पूर्वज ॥ ४६ ॥ आपलोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं, निरन्तर हरिकीर्तनमें तत्पर रहते हैं, भगवल्लीलामृतका रसास्वादन कर सदा उसीमें उन्मत्त रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही आपके जीवनका आधार है ॥ ४७ ॥ **'हरिः शरणम्'** (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) सर्वदा आपके मुखमें रहता है; इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था भी आपको बाधा नहीं पहुँचाती ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें आपके भ्रूभङ्गमात्रसे भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरंत पृथ्वीपर गिर गये थे और फिर आपकी ही कृपासे वे पुनः वैकुण्ठलोक पहुँच गये ॥ ४९ ॥ धन्य है, इस समय आपका दर्शन बड़े सौभाग्यसे ही हुआ है । मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं; इसलिये मुझपर आपको अवश्य कृपा करनी चाहिये ॥ ५० ॥ बताइये—आकाशवाणीने जिसके विषयमें कहा है, वह कौन-सा साधन है, और मुझे किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये । आप इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ ५१ ॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख मिल सकता है ? और किस तरह इनकी प्रेमपूर्वक सब वर्णोंमें प्रतिष्ठा की जा सकती है?' ॥ ५२ ॥

सनकादिने कहा—देवर्षे ! आप चिन्ता न करें, मनमें प्रसन्न हों; उनके उद्धारका एक सरल उपाय पहलेसे

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।
सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ।
घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५

ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६

वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ।
तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९

सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६०

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ।
व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव ॥ ६२

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ।
प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३

नारद उवाच

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४

श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५

छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६

ही विद्यमान है ॥ ५३ ॥ नारदजी ! आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके शिरोमणि हैं। श्रीकृष्णदासोंके शाश्वत पथ-प्रदर्शक एवं भक्तियोगके भास्कर हैं ॥ ५४ ॥ आप भक्तिके लिये जो उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। भगवान्‌के भक्तके लिये तो भक्तिकी सम्यक् स्थापना करना सदा उचित ही है ॥ ५५ ॥ ऋषियोंने संसारमें अनेकों मार्ग प्रकट किये हैं; किंतु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं ॥ ५६ ॥ अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष प्रायः भाग्यसे ही मिलता है ॥ ५७ ॥ आपको आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है, उसे हम बतलाते हैं; आप प्रसन्न और समाहितचित्त होकर सुनिये ॥ ५८ ॥

नारदजी ! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं ॥ ५९ ॥ पण्डितोंने ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) का सूचक माना है। वह श्रीमद्भागवतका पारायण है, जिसका गान शुकादि महानुभावोंने किया है ॥ ६० ॥ उसके शब्द सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको आनन्द मिलेगा ॥ ६१ ॥ सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे कलियुगके सारे दोष नष्ट हो जायँगे ॥ ६२ ॥ तब प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर प्रत्येक घर और व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी ॥ ६३ ॥

नारदजीने कहा—मैंने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और गीतापाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किंतु फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगे ॥ ६४ ॥ ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे जगेंगे ? क्योंकि उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका ही तो सारांश है ॥ ६५ ॥ आपलोग शरणागतवत्सल हैं तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता; इसलिये मेरा यह संदेह दूर कर दीजिये, इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये ॥ ६६ ॥

कुमारा ऊचुः

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः ॥ ६७

आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते यथा ।
स भूयः संपृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्द्रव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७०

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१

वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२

तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ।

तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३
तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ।

श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४

नारद उवाच

यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः
श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।

निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः
प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन
सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ।

अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिये उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण वह बड़ी उत्तम जान पड़ती है ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्रपर्यन्त रहता है, किंतु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आ जाता है, तब संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है ॥ ६८ ॥ दूधमें घी रहता ही है, किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तब देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है ॥ ६९ ॥ खाँड ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त रहती है, तथापि अलग होनेपर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है ॥ ७० ॥ यह भागवतपुराण वेदोंके समान है। श्रीव्यासदेवने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये प्रकाशित किया है ॥ ७१ ॥ पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी भी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञानसमुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपने ही उन्हें चार श्लोकोंमें इसका उपदेश किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी ॥ ७२-७३ ॥ फिर इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे हैं ? आपको उन्हें शोक और दुःखका विनाश करनेवाला श्रीमद्भागवतपुराण ही सुनाना चाहिये ॥ ७४ ॥

नारदजीने कहा—महानुभावो ! आपका दर्शन जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जो संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं, उनपर शीघ्र ही शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्र मुखोंसे गाये हुए भगवत्कथामृतका ही पान करते रहते हैं। मैं प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरण लेता हूँ ॥ ७५ ॥ जब अनेकों जन्मोंके संचित पुण्यपुञ्जका उदय होनेसे मनुष्यको सत्सङ्ग मिलता है, तब वह उसके अज्ञानजनित मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके विवेक उदय होता है ॥ ७६ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारद उवाच

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १

कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ।
महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ॥ ३

कुमारा ऊचुः

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ।
गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४

नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ।
नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५

रम्यमेकान्तदेशस्थं हेमपद्मसुसौरभम् ।
यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६

ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ।
अपूर्वरसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७

पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ।
तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥ ८

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ।
कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९

सूत उवाच

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ।
गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १०

यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ।
भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११

नारदजी कहते हैं— अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुकदेवजीके कहे हुए भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा ॥ १ ॥ यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये, आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये। आपलोग वेदके पारगामी हैं, इसलिये मुझे इस शुकशास्त्रकी महिमा सुनाइये ॥ २ ॥ यह भी बताइये कि श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुनानी चाहिये और उसके सुननेकी विधि क्या है ॥ ३ ॥

सनकादि बोले—नारदजी ! आप बड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हरिद्वारके पास आनन्द नामका एक घाट है ॥ ४ ॥ वहाँ अनेकों ऋषि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन करते रहते हैं। भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंके कारण वह बड़ा सघन है और वहाँ बड़ी कोमल नवीन बालू बिछी हुई है ॥ ५ ॥ वह घाट बड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है, वहाँ हर समय सुनहले कमलोंकी सुगन्ध आया करती है। उसके आस-पास रहनेवाले सिंह, हाथी आदि परस्पर-विरोधी जीवोंके चित्तमें भी वैरभाव नहीं है ॥ ६ ॥ वहाँ आप बिना किसी विशेष प्रयत्नके ही ज्ञानयज्ञ आरम्भ कर दीजिये, उस स्थानपर कथामें अपूर्व रसका उदय होगा ॥ ७ ॥ भक्ति भी अपनी आँखोंके ही सामने निर्बल और जराजीर्ण अवस्थामें पड़े हुए ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर वहाँ आ जायगी ॥ ८ ॥ क्योंकि जहाँ भी श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहाँ ये भक्ति आदि अपने-आप पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाके शब्द पड़नेसे ये तीनों तरुण हो जायँगे ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर नारदजीके साथ सनकादि भी श्रीमद्भागवतकथामृतका पान करनेके लिये वहाँसे तुरंत गङ्गातटपर चले आये ॥ १० ॥ जिस समय वे तटपर पहुँचे, भूलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक—सभी जगह इस कथाका हल्ला हो गया ॥ ११ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो
मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो
मृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्पलादाः ॥ १३

योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च
छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः
स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ।
दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥ १५

गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ।
क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च ॥ १६

नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वदानवाः ।
गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥ १७

दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ।
कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८

वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ।
मुखभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९

एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ।
वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २०

जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च ।
चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१

विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ।
कल्पवृक्षप्रसूनैस्तान् सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२

सूत उवाच

एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ।
माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३

जो-जो भगवत्कथाके रसिक विष्णुभक्त थे, वे सभी श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये सबसे आगे दौड़-दौड़कर आने लगे ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान-प्रधान मुनिगण अपने-अपने पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंसमेत बड़े प्रेमसे वहाँ आये ॥ १३-१४ ॥ इनके सिवा वेद, वेदान्त (उपनिषद्), मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व और दानव आदि सभी कथा सुनने चले आये । जो लोग अपने गौरवके कारण नहीं आये, महर्षि भृगु उन्हें समझा-बुझाकर ले आये ॥ १६-१७ ॥

तब कथा सुनानेके लिये दीक्षित होकर श्रीकृष्ण-परायण सनकादि नारदजीके दिये हुए श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए । उस समय सभी श्रोताओंने उनकी वन्दना की ॥ १८ ॥ श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे और उन सबके आगे नारदजी विराजमान हुए ॥ १९ ॥ एक ओर ऋषिगण, एक ओर देवता, एक ओर वेद और उपनिषदादि तथा एक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठीं ॥ २० ॥ उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खोंका शब्द होने लगा और अबीर-गुलाल, खील एवं फूलोंकी खूब वर्षा होने लगी ॥ २१ ॥ कोई-कोई देवश्रेष्ठ तो विमानोंपर चढ़कर, वहाँ बैठे हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार पूजा समाप्त होनेपर जब सब लोग एकाग्रचित्त हो गये, तब सनकादि ऋषि महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके सुनाने लगे ॥ २३ ॥

कुमारा ऊचुः

अथ ते वर्ण्यतेऽस्माभिर्महिमा शुकशास्त्रजः ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः ।
परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३०

तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१

न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४

द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ।
ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५

तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ।
एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ ३७

सनकादिने कहा—अब हम आपको इस भागवतशास्त्रकी महिमा सुनाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लग जाती है॥ २४॥ श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा-सर्वदा सेवन, आस्वादन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आ विराजते हैं॥ २५॥ इस ग्रन्थमें अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्का संवाद है। आप यह भागवतशास्त्र ध्यान देकर सुनिये॥ २६॥ यह जीव तभीतक अज्ञानवश इस संसारचक्रमें भटकता है, जबतक क्षणभरके लिये भी कानोंमें इस शुकशास्त्र-की कथा नहीं पड़ती॥ २७॥ बहुत-से शास्त्र और पुराण सुननेसे क्या लाभ है, इससे तो व्यर्थका भ्रम बढ़ता है। मुक्ति देनेके लिये तो एकमात्र भागवतशास्त्र ही गरज रहा है॥ २८॥ जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २९॥ हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते॥ ३०॥ तपोधनो! जबतक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप निवास करते हैं॥ ३१॥ फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्रकथाकी समता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग—कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता॥ ३२॥

यदि आपको परम गतिकी इच्छा है तो अपने मुखसे ही श्रीमद्भागवतके आधे अथवा चौथाई श्लोकका भी नित्य नियमपूर्वक पाठ कीजिये॥ ३३॥ ॐकार, गायत्री, पुरुषसूक्त, तीनों वेद, श्रीमद्भागवत 'ॐनमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्यभगवान्, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें बुद्धिमान् लोग वस्तुतः कोई अन्तर नहीं मानते॥ ३४—३६॥ जो पुरुष अहर्निश अर्थसहित श्रीमद्भागवत-शास्त्रका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ ३७॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ।
नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ।
तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९

अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ।
प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥ ४०

हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ।
कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचि-
द्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च खरवद्भुत तेन नीतं
मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२

जीवच्छवोनिगदितः स तु पापकर्मा
येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ।
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूप-
मेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः ॥ ४३

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४

तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ।
दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ।
अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ।
दीक्षा कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ।
तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८

मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९

जो पुरुष नित्यप्रति भागवतका आधा या चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, उसे राजसूय और अश्वमेधयज्ञोंका फल मिलता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवतका पाठ करना, भगवान्‌का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—ये चारों समान हैं ॥ ३९ ॥ जो पुरुष अन्तसमयमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् उसे वैकुण्ठधाम देते हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर विष्णुभक्तको दान करता है, वह अवश्य ही भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

जिस दुष्टने अपनी सारी आयुमें चित्तको एकाग्र करके श्रीमद्भागवतामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने तो अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया; वह तो अपनी माताको प्रसव-पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ जिसने इस शुकशास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा तो जीता हुआ ही मुर्देके समान है। 'पृथ्वीके भारस्वरूप उस पशुतुल्य मनुष्यको धिक्कार है' —यों स्वर्गलोकमें देवताओंमें प्रधान इन्द्रादि कहा करते हैं ॥ ४३ ॥

संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथाका मिलना अवश्य ही कठिन है; जब करोड़ों जन्मोंका पुण्य होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ नारदजी ! आप बड़े ही बुद्धिमान् और योगनिधि हैं। आप प्रयत्नपूर्वक कथाका श्रवण कीजिये। इसे सुननेके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है, इसे तो सर्वदा ही सुनना अच्छा है ॥ ४५ ॥ इसे सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक सर्वदा ही सुनना श्रेष्ठ माना गया है। किन्तु कलियुगमें ऐसा होना कठिन है; इसलिये इसकी शुकदेवजीने जो विशेष विधि बतायी है, वह जान लेनी चाहिये ॥ ४६ ॥ कलियुगमें बहुत दिनोंतक चित्तकी वृत्तियोंको वशमें रखना, नियमोंमें बँधे रहना और किसी पुण्यकार्यके लिये दीक्षित रहना कठिन है; इसलिये सप्ताह-श्रवणकी विधि है ॥ ४७ ॥ श्रद्धापूर्वक कभी भी श्रवण करनेसे अथवा माघमासमें श्रवण करनेसे जो फल होता है, वही फल श्रीशुकदेवजीने सप्ताहश्रवणमें निर्धारित किया है ॥ ४८ ॥ मनके असंयम, रोगोंकी बहुलता और आयुकी अल्पताके कारण तथा कलियुगमें अनेकों दोषोंकी सम्भावनासे ही सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ॥ ४९ ॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५०

यज्ञाद्भ्रूर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ।
तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१

योगाद्भ्रूर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ।
किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२

शौनक उवाच

साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं
ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य साम्प्रतम् ।
निःश्रेयसे भागवतं पुराणं
जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३

सूत उवाच

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४

उद्धव उवाच

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५

आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ।
तत्सङ्गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६

तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ।
अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ।
भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९

इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ।
भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६०

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१

जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वाङ्गरूपमें सप्ताह श्रवणसे सहजमें ही मिल जाता है ॥ ५० ॥ सप्ताहश्रवण यज्ञसे बढ़कर है, व्रतसे बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है । तीर्थसेवनसे तो सदा ही बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है, अजी ! इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है ॥ ५१-५२ ॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात कही । अवश्य ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परन्तु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया ? ॥ ५३ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखारविन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा ॥ ५४ ॥

उद्धवजी बोले—गोविन्द ! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किन्तु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है । उसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये ॥ ५५ ॥ अब घोर कलिकाल आया ही समझिये, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे; उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उग्र प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी ? कमलनयन ! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखायी देता॥ ५६-५७ ॥ इसलिये भक्तवत्सल ! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये । भगवन् ! आपने निराकार और चिन्मात्र होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुण रूप धारण किया है ॥ ५८ ॥ फिर भला, आपका वियोग होनेपर वे भक्तजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणोपासनामें तो बड़ा कष्ट है । इसलिये कुछ और विचार कीजिये ॥ ५९ ॥

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझे क्या व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ६० ॥ शौनकजी ! तब भगवान्‌ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी; वे अन्तर्धान होकर इस भागवतसमुद्रमें प्रवेश कर गये ॥ ६१ ॥

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२

सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ।
साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३

दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ।
कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४

अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
कथं त्याज्या भवेत्पुम्भिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५

इसलिये यह भगवान्‌की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ६२ ॥ इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें तो अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म बताया गया है॥ ६३ ॥ कलिकालमें यही ऐसा धर्म है, जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है॥ ६४ ॥ अन्यथा, भगवान्‌की इस मायासे पीछा छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः इससे छूटनेके लिये भी सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है॥ ६५ ॥

सूत उवाच

एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे
प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं
तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा
प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ ६७

तां चागतां भागवतार्थभूषां
सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
कथं प्रविष्टा कथमागतेयं
मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥ ६८

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं
कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य
सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जिस समय सनकादि मुनीश्वर इस प्रकार सप्ताहश्रवणकी महिमाका बखान कर रहे थे, उस सभामें एक बड़ा आश्चर्य हुआ; उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो॥ ६६ ॥ वहाँ तरुणावस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई अकस्मात् प्रकट हो गयीं॥ ६७ ॥ सभी सदस्योंने देखा कि परम सुन्दरी भक्तिरानी भागवतके अर्थोंका आभूषण पहने वहाँ पधारीं। मुनियोंकी उस सभामें सभी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि ये यहाँ कैसे आयीं, कैसे प्रविष्ट हुईं॥ ६८ ॥ तब सनकादिने कहा—'ये भक्तिदेवी अभी-अभी कथाके अर्थसे निकली हैं।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत अत्यन्त विनम्र होकर सनत्कुमारजीसे कहा॥ ६९ ॥

भक्तिरुवाच

भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा
कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु
ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥ ७०

भक्ति बोलीं—मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी, आपने कथामृतसे सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया। अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ ? यह सुनकर सनकादिने उससे कहा— ॥ ७० ॥

भक्तेषु गोविन्दस्वरूपकर्त्री
प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया
निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥ ७१
ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां
द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्ति-
स्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२
सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३
ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता
श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४

'तुम भक्तोंको भगवान्‌का स्वरूप प्रदान करनेवाली, अनन्यप्रेमका सम्पादन करनेवाली और संसार-रोगको निर्मूल करनेवाली हो; अतः तुम धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर विष्णुभक्तोंके हृदयोंमें ही निवास करो ॥ ७१ ॥ ये कलियुगके दोष भले ही सारे संसारपर अपना प्रभाव डालें, किन्तु वहाँ तुमपर इनकी दृष्टि भी नहीं पड़ सकेगी ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्ति तुरन्त भगवद्भक्तोंके हृदयोंमें जा विराजीं ॥ ७२ ॥

जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्ति निवास करती है; वे त्रिलोकीमें अत्यन्त निर्धन होनेपर भी परम धन्य हैं; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर तो साक्षात् भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर उनके हृदयमें आकर बस जाते हैं ॥ ७३ ॥ भूलोकमें यह भागवत साक्षात् परब्रह्मका विग्रह है, हम इसकी महिमा कहाँतक वर्णन करें । इसका आश्रय लेकर इसे सुनानेसे तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त हो जाती है । अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्ति-कष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ

सूत उवाच

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १

वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ।
काञ्चीकलापरुचिरो लसन्मुकुटकुण्डलः ॥ २

त्रिभङ्गललितश्चास्यकौस्तुभेन विराजितः ।
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३

परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४

वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ।
तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५

सूतजी कहते हैं—मुनिवर ! उस समय अपने भक्तोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल श्रीभगवान् अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे ॥ १ ॥ उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी, श्रीअङ्ग सजल जलधरके समान श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी लटक और कानोंमें कुण्डलोंकी झलक देखते ही बनती थी ॥ २ ॥ वे त्रिभङ्गललित भावसे खड़े हुए चित्तको चुराये लेते थे । वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि दमक रही थी, सारा श्रीअङ्ग हरिचन्दनसे चर्चित था । उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसने तो मानो करोड़ों कामदेवोंकी रूपमाधुरी छीन ली थी ॥ ३ ॥ वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरलीधर ऐसी अनुपम छबिसे अपने भक्तोंके निर्मल चित्तोंमें आविर्भूत हुए ॥ ४ ॥ भगवान्‌के नित्य लोकनिवासी लीलापरिकर उद्धवादि वहाँ गुप्तरूपसे उस कथाको सुननेके लिये आये हुए थे ॥ ५ ॥

तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी।
चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत्॥ ६

तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः।
दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत्॥ ७

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः
सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया।
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र
सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति॥ ८

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचि-
च्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम्।
अघौघविध्वंसकरं तथैव
कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत्॥ ९

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं
सप्ताहयज्ञेन कथामयेन।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य
प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः॥ १०

कुमारा ऊचुः

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा
सदा दुराचाररता विमार्गगाः।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥ ११

सत्येन हीनाः पितृमातृदूषका-
स्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥ १२

पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः
क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥ १३

कायेन वाचा मनसापि पातकं
नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते॥ १४

प्रभुके प्रकट होते ही चारों ओर 'जय हो ! जय हो !!' की ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अद्भुत प्रवाह चला, बार-बार अबीर-गुलाल और पुष्पोंकी वर्षा तथा शङ्खध्वनि होने लगी॥ ६॥ उस सभामें जो लोग बैठे थे, उन्हें अपने देह, गेह और आत्माकी भी कोई सुधि न रही। उनकी ऐसी तन्मयता देखकर नारदजी कहने लगे—॥ ७॥

मुनीश्वरगण ! आज सप्ताहश्रवणकी मैंने यह बड़ी ही अलौकिक महिमा देखी। यहाँ तो जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु-पक्षी भी हैं, वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं॥ ८॥ अतः इसमें संदेह नहीं कि कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये इस भागवतकथाके समान मर्त्यलोकमें पापपुञ्जका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है॥ ९॥ मुनिवर ! आपलोग बड़े कृपालु हैं, आपने संसारके कल्याणका विचार करके यह बिलकुल निराला ही मार्ग निकाला है। आप कृपया यह तो बताइये कि इस कथारूप सप्ताहयज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं॥ १०॥

सनकादिने कहा—जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उलटे मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले, कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ ११॥ जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंकी उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ १२॥ जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीगमन और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ १३॥ जो दुष्ट आग्रहपूर्वक सर्वदा मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मलिन मन और दुष्ट हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ १४॥

अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५

तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम्।
यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६

आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्ववेदविशारदः।
श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७

भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥ १८

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः।
अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २०

पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे।
गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१

धनार्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथापि च।
न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥ २२

एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः।
मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३

पीत्वा जलं निषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः।
मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम्।
नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५

यतिरुवाच

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६

ब्राह्मण उवाच

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम्।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ २७

नारदजी ! अब हम तुम्हें इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, उसके सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ पूर्वकालमें तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक अनुपम नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका आचरण करते हुए सत्य और सत्कर्मोंमें तत्पर रहते थे ॥ १६ ॥ उस नगरमें समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निपुण एक आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था, वह साक्षात् दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी था ॥ १७ ॥ वह धनी होनेपर भी भिक्षाजीवी था। उसकी प्यारी पत्नी धुन्धुली कुलीन एवं सुन्दरी होनेपर भी सदा अपनी बातपर अड़ जानेवाली थी ॥ १८ ॥ उसे लोगोंकी बात करनेमें सुख मिलता था। स्वभाव था क्रूर। प्रायः कुछ-न-कुछ बकवाद करती रहती थी। गृहकार्यमें निपुण थी, कृपण थी और थी झगड़ालू भी ॥ १९ ॥ इस प्रकार ब्राह्मण दम्पति प्रेमसे अपने घरमें रहते और विहार करते थे। उनके पास अर्थ और भोग-विलासकी सामग्री बहुत थी। घर-द्वार भी सुन्दर थे, परन्तु उससे उन्हें सुख नहीं था ॥ २० ॥ जब अवस्था बहुत ढल गयी, तब उन्होंने सन्तानके लिये तरह-तरहके पुण्यकर्म आरम्भ किये और वे दीन-दुःखियोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादि दान करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार धर्ममार्गमें उन्होंने अपना आधा धन समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें पुत्र या पुत्री किसीका भी मुख देखनेको न मिला। इसलिये अब वह ब्राह्मण बहुत ही चिन्तातुर रहने लगा ॥ २२ ॥

एक दिन वह ब्राह्मणदेवता बहुत दुःखी होकर घरसे निकलकर वनको चल दिया। दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक तालाबपर आया ॥ २३ ॥ सन्तानके अभावके दुःखने उसके शरीरको बहुत सुखा दिया था, इसलिये थक जानेके कारण जल पीकर वह वहीं बैठ गया। दो घड़ी बीतनेपर वहाँ एक संन्यासी महात्मा आये ॥ २४ ॥ जब ब्राह्मणदेवताने देखा कि वे जल पी चुके हैं, तब वह उनके पास गया और चरणोंमें नमस्कार करनेके बाद सामने खड़े होकर लंबी-लंबी साँसें लेने लगा ॥ २५ ॥

संन्यासीने पूछा—कहो, ब्राह्मणदेवता ! रोते क्यों हो ? ऐसी तुम्हें क्या भारी चिन्ता है ? तुम जल्दी ही मुझे अपने दुःखका कारण बताओ ॥ २६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महाराज ! मैं अपने पूर्वजन्मके

मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ।
प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८

धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ।
धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ।
यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३०

यत्फलं मद्गृहायातं तच्च शीघ्रं विनश्यति ।
निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१

इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ।
तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाभूद्वरीयसी ॥ ३२

तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३

यतिरुवाच

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४

शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ।
सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५

संततेः सगरो दुःखमवापाङ्गः पुरा तथा ।
रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६

ब्राह्मण उवाच

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ।
नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ।
गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८

इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ।
चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात् ॥ ३९

न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ।
अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४०

पापोंसे संचित दुःखका क्या वर्णन करूँ ? अब मेरे पितर मेरे द्वारा दी हुई जलाञ्जलिके जलको अपनी चिन्ताजनित साँससे कुछ गरम करके पीते हैं ॥ २७ ॥ देवता और ब्राह्मण मेरा दिया हुआ प्रसन्न मनसे स्वीकार नहीं करते । सन्तानके लिये मैं इतना दुःखी हो गया हूँ कि मुझे सब सूना-ही-सूना दिखायी देता है । मैं प्राण त्यागनेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ २८ ॥ सन्तानहीन जीवनको धिक्कार है, सन्तानहीन गृहको धिक्कार है ! सन्तानहीन धनको धिक्कार है और सन्तानहीन कुलको धिक्कार है !! ॥ २९ ॥ मैं जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा बाँझ हो जाती है; जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल-फूल नहीं लगते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी सड़ जाता है । जब मैं ऐसा अभागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फूट-फूटकर रोने लगा । तब उन यतिवरके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे; उन्होंने उसके ललाटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

संन्यासीने कहा—ब्राह्मणदेवता ! इस प्रजाप्राप्तिका मोह त्याग दो । कर्मकी गति प्रबल है, विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्रवर ! सुनो; मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें राजा सगर एवं अङ्गको सन्तानके कारण दुःख भोगना पड़ा था । ब्राह्मण ! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो । संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महात्माजी ! विवेकसे मेरा क्या होगा । मुझे तो बलपूर्वक पुत्र दीजिये; नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-स्त्री आदिका सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है । लोकमें सरस तो पुत्र-पौत्रादिसे भरा-पूरा गृहस्थाश्रम ही है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपोधनने कहा, 'विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ ३९ ॥ इसलिये दैव जिसके उद्योगको कुचल देता है, उस पुरुषके समान तुम्हें भी पुत्रसे

तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान्।
इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१

सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम्।
वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२

एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः।
पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३

तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह।
अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४

फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता।
स्वल्पभक्षं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ ४५

दैवाद् धाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम्।
शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६

तिर्यक्चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत्।
प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा।
सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते।
वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम्।
पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५०

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता।
तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥ ५१

दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम्।
साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२

तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम्।
वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३

सुख नहीं मिल सकेगा। तुमने तो बड़ा हठ पकड़ रखा है और अतिथिके रूपमें तुम मेरे सामने उपस्थित हो; ऐसी दशामें मैं तुमसे क्या कहूँ' ॥ ४० ॥

जब महात्माजीने देखा कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ता, तब उन्होंने उसे एक फल देकर कहा—'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना, इससे उसके एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीको एक सालतक सत्य, शौच, दया, दान और एक समय एक ही अन्न खानेका नियम रखना चाहिये। यदि वह ऐसा करेगी तो बालक बहुत शुद्ध स्वभाववाला होगा' ॥ ४२ ॥

यों कहकर वे योगिराज चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया। वहाँ आकर उसने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं कहीं चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री तो कुटिल स्वभावकी थी ही, वह रो-रोकर अपनी एक सखीसे कहने लगी—'सखी ! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा। फिर कुछ खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी; तब बता, घरका धंधा कैसे होगा ? ॥ ४५ ॥ और—दैववश—यदि कहीं गाँवमें डाकुओंका आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कैसे भागेगी। यदि शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी पेटमें ही रह गया तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा ॥ ४६ ॥ और कहीं प्रसवकालके समय वह टेढ़ा हो गया तो फिर प्राणोंसे ही हाथ धोना पड़ेगा। यों भी प्रसवके समय बड़ी भयंकर पीड़ा होती है; मैं सुकुमारी भला, यह सब कैसे सह सकूँगी ? ॥ ४७ ॥ मैं जब दुर्बल पड़ जाऊँगी, तब ननदरानी आकर घरका सब माल-मता समेट ले जायँगी। और मुझसे तो सत्य-शौचादि नियमोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ॥ ४८ ॥ जो स्त्री बच्चा जनती है, उसे उस बच्चेके लालन-पालनमें भी बड़ा कष्ट होता है। मेरे विचारसे तो वन्ध्या या विधवा स्त्रियाँ ही सुखी हैं' ॥ ४९ ॥

मनमें ऐसे ही तरह-तरहके कुतर्क उठनेसे उसने वह फल नहीं खाया और जब उसके पतिने पूछा—'फल खा लिया ?' तब उसने कह दिया—'हाँ, खा लिया' ॥ ५० ॥ एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी; तब उसने अपनी बहिनको सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा कि 'मेरे मनमें इसकी बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस दुःखके कारण दिनोंदिन दुबली हो रही हूँ। बहिन ! मैं क्या करूँ ?' बहिनने कहा, 'मेरे पेटमें बच्चा है, प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुझे दे दूँगी ॥ ५२ ॥ तबतक तू गर्भवतीके समान घरमें गुप्तरूपसे सुखसे रह। तू मेरे पतिको कुछ धन दे देगी तो वे तुझे अपना बालक दे देंगे ॥ ५३ ॥

षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ।
तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४

फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ।
तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ।
आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ।
लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७

ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ।
गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मङ्गलं बहु ॥ ५८

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ।
अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९

मत्स्वसुश्च प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ।
तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६०

पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ।
पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ।
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२

दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ।
मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४

न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ।
गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ।
गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धकारी महाखलः ॥ ६६

(हम ऐसी युक्ति करेंगी) कि जिसमें सब लोग यही कहें कि 'इसका बालक छः महीनेका होकर मर गया' और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर उस बालकका पालन-पोषण करती रहूँगी ॥ ५४ ॥ तू इस समय इसकी जाँच करनेके लिये यह फल गौको खिला दे ।' ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभाववश जो-जो उसकी बहिनने कहा था, वैसे ही सब किया ॥ ५५ ॥

इसके पश्चात् समयानुसार जब उस स्त्रीके पुत्र हुआ, तब उसके पिताने चुपचाप लाकर उसे धुन्धुलीको दे दिया ॥ ५६ ॥ और उसने आत्मदेवको सूचना दे दी कि मेरे सुखपूर्वक बालक हो गया है । इस प्रकार आत्मदेवके पुत्र हुआ सुनकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणने उसका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया और उसके द्वारपर गाना-बजाना तथा अनेक प्रकारके माङ्गलिक कृत्य होने लगे ॥ ५८ ॥ धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा, 'मेरे स्तनोंमें तो दूध ही नहीं है; फिर गौ आदि किसी अन्य जीवके दूधसे मैं इस बालकका किस प्रकार पालन करूँगी ? ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनके अभी बालक हुआ था, वह मर गया है; उसे बुलाकर अपने यहाँ रख लें तो वह आपके इस बच्चेका पालन-पोषण कर लेगी ॥ ६० ॥ तब पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने वैसा ही किया तथा माता-धुन्धुलीने उस बालकका नाम धुन्धुकारी रखा ॥ ६१ ॥

इसके बाद तीन महीने बीतनेपर उस गौके भी एक मनुष्याकार बच्चा हुआ । वह सर्वाङ्गसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था ॥ ६२ ॥ उसे देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ा आनन्द हुआ और उसने स्वयं ही उसके सब संस्कार किये । इस समाचारसे और सब लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बालकको देखनेके लिये आये ॥ ६३ ॥ तथा आपसमें कहने लगे, 'देखो, भाई ! अब आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है ! कैसे आश्चर्यकी बात है कि गौके भी ऐसा दिव्यरूप बालक उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ दैवयोगसे इस गुप्त रहस्यका किसीको भी पता न लगा । आत्मदेवने उस बालकके गौके-से कान देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रखा ॥ ६५ ॥

कुछ काल बीतनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये । उनमें गोकर्ण तो बड़ा पण्डित और ज्ञानी हुआ, किन्तु धुन्धुकारी बड़ा ही दुष्ट निकला ॥ ६६ ॥

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः ।
दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम् ॥ ६७

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ।
लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६८

हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ।
चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ॥ ६९

तेन वेश्याकुसङ्गेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ।
एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७०

तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ।
वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ।
बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३

असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४

न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ।
निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताब्रवीत् ।
किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७

अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पङ्गुरहं शठः ।
कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८

स्नान-शौचादि ब्राह्मणोचित आचारोंका उसमें नाम भी न था और न खान-पानका ही कोई परहेज था। क्रोध उसमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह बुरी-बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। मुर्देके हाथसे छुआया हुआ अन्न भी खा लेता था ॥ ६७ ॥ दूसरोंकी चोरी करना और सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाना उसका स्वभाव बन गया था। छिपे-छिपे वह दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता था। दूसरोंके बालकोंको खेलानेके लिये गोदमें लेता और उन्हें चट कुएँमें डाल देता ॥ ६८ ॥ हिंसाका उसे व्यसन-सा हो गया था। हर समय वह अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहता और बेचारे अंधे और दीन-दुःखियोंको व्यर्थ तंग करता। चाण्डालोंसे उसका विशेष प्रेम था; बस, हाथमें फंदा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता ॥ ६९ ॥ वेश्याओंके जालमें फँसकर उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। एक दिन माता-पिताको मार-पीटकर घरके सब बर्तन-भाँड़े उठा ले गया ॥ ७० ॥

इस प्रकार जब सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, तब उसका कृपण पिता फूट-फूटकर रोने लगा और बोला—'इससे तो इसकी माँका बाँझ रहना ही अच्छा था; कुपुत्र तो बड़ा ही दुःखदायी होता है ॥ ७१ ॥ अब मैं कहाँ रहूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे इस संकटको कौन काटेगा ? हाय ! मेरे ऊपर तो बड़ी विपत्ति आ पड़ी है, इस दुःखके कारण अवश्य मुझे एक दिन प्राण छोड़ने पड़ेंगे ॥ ७२ ॥ उसी समय परम ज्ञानी गोकर्णजी वहाँ आये और उन्होंने पिताको वैराग्यका उपदेश करते हुए बहुत समझाया ॥ ७३ ॥ वे बोले, 'पिताजी ! यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुःखरूप और मोहमें डालनेवाला है। पुत्र किसका ? धन किसका ? स्नेहवान् पुरुष रात-दिन दीपकके समान जलता रहता है ॥ ७४ ॥ सुख न तो इन्द्रको है और न चक्रवर्ती राजाको ही; सुख है तो केवल विरक्त, एकान्तजीवी मुनिको ॥ ७५ ॥ 'यह मेरा पुत्र है' इस अज्ञानको छोड़ दीजिये। मोहसे नरककी प्राप्ति होती है। यह शरीर तो नष्ट होगा ही। इसलिये सब कुछ छोड़कर वनमें चले जाइये ॥ ७६ ॥

गोकर्णके वचन सुनकर आत्मदेव वनमें जानेके लिये तैयार हो गया और उनसे कहने लगा, 'बेटा ! वनमें रहकर मुझे क्या करना चाहिये, यह मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ७७ ॥ मैं बड़ा मूर्ख हूँ, अबतक कर्मवश स्नेह-पाशमें बँधा हुआ अपङ्गकी भाँति इस घररूप अँधेरे कुएँमें ही पड़ा रहा हूँ। तुम बड़े दयालु हो, इससे मेरा उद्धार करो' ॥ ७८ ॥

गोकर्ण उवाच

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥७९

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥८०

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय
यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥८१

गोकर्णने कहा—पिताजी ! यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिरका पिण्ड है; इसे आप 'मैं' मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादिको 'अपना' कभी न मानें। इस संसारको रात-दिन क्षणभङ्गुर देखें, इसकी किसी भी वस्तुको स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्य-रसके रसिक होकर भगवान्‌की भक्तिमें लगे रहें ॥ ७९ ॥ भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकारके लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़ लें। सदा साधुजनोंकी सेवा करें। भोगोंकी लालसाको पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्‌की कथाओंके रसका ही पान करें ॥ ८० ॥

इस प्रकार पुत्रकी वाणीसे प्रभावित होकर आत्मदेवने घर छोड़ दिया और वनकी यात्रा की। यद्यपि उसकी आयु उस समय साठ वर्षकी हो चुकी थी, फिर भी बुद्धिमें पूरी दृढ़ता थी। वहाँ रात-दिन भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेसे और नियमपूर्वक भागवतके दशमस्कन्धका पाठ करनेसे उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार

सूत उवाच

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ।
क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥१

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ।
कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥२

गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ।
न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ॥३

धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ।
अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥४

एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ।
तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ॥५

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! पिताके वन चले जानेपर एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको बहुत पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रखा है ? नहीं तो अभी तेरी लुआठी (जलती लकड़ी) से खबर लूँगा ॥ १ ॥ उसकी इस धमकीसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दुःखी होकर वह रात्रिके समय कुएँमें जा गिरी और इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी ॥ २ ॥ योगनिष्ठ गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये निकल गये। उन्हें इन घटनाओंसे कोई सुख या दुःख नहीं होता था; क्योंकि उनका न कोई मित्र था न शत्रु ॥ ३ ॥

धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा। उनके लिये भोग-सामग्री जुटानेकी चिन्ताने उसकी बुद्धि नष्ट कर दी और वह नाना प्रकारके अत्यन्त क्रूर कर्म करने लगा ॥ ४ ॥ एक दिन उन कुलटाओंने उससे बहुत-से-गहने माँगे। वह तो कामसे अंधा हो रहा था, मौतकी उसे कभी याद नहीं आती थी। बस, उन्हें जुटानेके लिये वह घरसे निकल पड़ा ॥ ५ ॥

यतस्ततश्च संहत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ।
ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६

बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ।
चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७

वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ।
अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८

निहत्यैनं गृहीत्वार्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ।
इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ॥ ९

पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ।
त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाभवन् ॥ १०

तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ।
न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ।
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३

स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः ।
विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४

सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५

संहत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ।
धुन्धकारी बभूवाथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६

वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ।
शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७

न लेभे शरणं क्वापि हा दैवेति मुहुर्वदन् ।
कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८

वह जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर घर लौट आया तथा उन्हें कुछ सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाकर दिये ॥ ६ ॥ चोरीका बहुत माल देखकर रात्रिके समय स्त्रियोंने विचार किया कि 'यह नित्य ही चोरी करता है, इसलिये इसे किसी दिन अवश्य राजा पकड़ लेगा ॥ ७ ॥ राजा यह सारा धन छीनकर इसे निश्चय ही प्राणदण्ड देगा। जब एक दिन इसे मरना ही है, तब हम ही धनकी रक्षाके लिये गुप्तरूपसे इसको क्यों न मार डालें ॥ ८ ॥ इसे मारकर हम इसका माल-मता लेकर जहाँ-कहीं चली जायँगी।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने सोये हुए धुन्धुकारीको रस्सियोंसे कस दिया और उसके गलेमें फाँसी लगाकर उसे मारनेका प्रयत्न किया। इससे जब वह जल्दी न मरा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥ ९-१० ॥ तब उन्होंने उसके मुखपर बहुत-से दहकते अँगारे डाले; इससे वह अग्निकी लपटोंसे बहुत छटपटाकर मर गया ॥ ११ ॥ उन्होंने उसके शरीरको एक गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया। सच है, स्त्रियाँ प्रायः बड़ी दुःसाहसी होती हैं। उनके इस कृत्यका किसीको भी पता न चला ॥ १२ ॥ लोगोंके पूछनेपर कह देती थीं कि 'हमारे प्रियतम पैसेके लोभसे अबकी बार कहीं दूर चले गये हैं, इसी वर्षके अन्दर लौट आयेंगे' ॥ १३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको दुष्टा स्त्रियोंका कभी विश्वास न करना चाहिये। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे दुःखी होना पड़ता है ॥ १४ ॥ इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका सञ्चार करती है; किन्तु हृदय छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है। भला, इन स्त्रियोंका कौन प्यारा है ? ॥ १५ ॥

वे कुलटाएँ धुन्धुकारीकी सारी सम्पत्ति समेटकर वहाँसे चंपत हो गयीं; उनके ऐसे न जाने कितने पति थे। और धुन्धुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयंकर प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वह बवंडरके रूपमें सर्वदा दसों दिशाओंमें भटकता रहता था तथा शीत-घामसे सन्तप्त और भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण 'हा दैव ! हा दैव !' चिल्लाता रहता था। परन्तु उसे कहीं भी कोई आश्रय न मिला। कुछ काल बीतनेपर गोकर्णने भी लोगोंके मुखसे धुन्धुकारीकी मृत्युका समाचार सुना ॥ १७-१८ ॥

अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ।
यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयत् ॥ १९

तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसका गयाजीमें श्राद्ध किया; और भी जहाँ-जहाँ वे जाते थे, उसका श्राद्ध अवश्य करते थे ॥ १९ ॥

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ।
रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २०

इस प्रकार घूमते-घूमते गोकर्णजी अपने नगरमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर सीधे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये पहुँचे ॥ २० ॥ वहाँ अपने भाईको सोया देख आधी रातके समय धुन्धुकारीने अपना बड़ा विकट रूप दिखाया ॥ २१ ॥ वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता। अन्तमें वह मनुष्यके आकारमें प्रकट हुआ ॥ २२ ॥ ये विपरीत अवस्थाएँ देखकर गोकर्णने निश्चय किया कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है। तब उन्होंने उससे धैर्यपूर्वक पूछा ॥ २३ ॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ।
निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ।
अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३

गोकर्ण उवाच

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ।
किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४

गोकर्णने कहा—तू कौन है ? रात्रिके समय ऐसे भयानक रूप क्यों दिखा रहा है ? तेरी यह दशा कैसे हुई ? हमें बता तो सही—तू प्रेत है, पिशाच है अथवा कोई राक्षस है ? ॥ २४ ॥

सूत उवाच

एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ।
अशक्तो वचनोद्धारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५

ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदैरयत् ।
तत्सेकहतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६

सूतजी कहते हैं—गोकर्णके इस प्रकार पूछनेपर वह बार-बार जोर-जोरसे रोने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने केवल संकेतमात्र किया ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अञ्जलिमें जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करके उसपर छिड़का। इससे उसके पापोंका कुछ शमन हुआ और वह इस प्रकार कहने लगा ॥ २६ ॥

प्रेत उवाच

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः ।
लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ।
वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ।
गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३०

प्रेत बोला—'मैं तुम्हारा भाई हूँ। मेरा नाम है धुन्धुकारी। मैंने अपने ही दोषसे अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥ २७ ॥ मेरे कुकर्मोंकी गिनती नहीं की जा सकती। मैं तो महान् अज्ञानमें चक्कर काट रहा था। इसीसे मैंने लोगोंकी बड़ी हिंसा की। अन्तमें कुलटा स्त्रियोंने मुझे तड़पा-तड़पाकर मार डाला ॥ २८ ॥ इसीसे अब प्रेत-योनिमें पड़कर यह दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैववश कर्मफलका उदय होनेसे मैं केवल वायुभक्षण करके जी रहा हूँ ॥ २९ ॥ भाई ! तुम दयाके समुद्र हो; अब किसी प्रकार जल्दी ही मुझे इस योनिसे छुड़ाओ।' गोकर्णने धुन्धुकारीकी सारी बातें सुनीं और तब उससे बोले ॥ ३० ॥

गोकर्ण उवाच

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः ।
तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१

गयाश्राद्धात्र मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ।
किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२

प्रेत उवाच

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।
उपायमपरं कंचित्त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ।
शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४

इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ।
त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५

धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ।
गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ।
तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७

विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ।
तन्मुक्तिं नैव तेऽपश्यन् पश्यन्तः शास्त्रसंचयान् ॥ ३८

ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ।
गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥ ३९

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ।
तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥ ४०

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ।
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ ४१

सर्वेऽब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ।
गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ ४२

तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ।
पङ्गवन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥ ४३

गोकर्णने कहा—भाई ! मुझे इस बातका बड़ा आश्चर्य है—मैंने तुम्हारे लिये विधिपूर्वक गयाजीमें पिण्डदान किया, फिर भी तुम प्रेतयोनिसे मुक्त कैसे नहीं हुए ? ॥ ३१ ॥ यदि गया-श्राद्धसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई, तब इसका और कोई उपाय ही नहीं है । अच्छा, तुम सब बात खोलकर कहो—मुझे अब क्या करना चाहिये ? ॥ ३२ ॥

प्रेतने कहा—मेरी मुक्ति सैकड़ों गया-श्राद्ध करनेसे भी नहीं हो सकती । अब तो तुम इसका कोई और उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया-श्राद्धोंसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, तब तो तुम्हारी मुक्ति असम्भव ही है ॥ ३४ ॥ अच्छा, अभी तो तुम निर्भय होकर अपने स्थानपर रहो; मैं विचार करके तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय करूँगा' ॥ ३५ ॥

गोकर्णकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी वहाँसे अपने स्थानपर चला आया । इधर गोकर्णने रातभर विचार किया, तब भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल उनको आया देख लोग प्रेमसे उनसे मिलने आये । तब गोकर्णने रातमें जो कुछ जिस प्रकार हुआ था, वह सब उन्हें सुना दिया ॥ ३७ ॥ उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और वेदज्ञ थे, उन्होंने भी अनेकों शास्त्रोंको उलट-पलटकर देखा; तो भी उसकी मुक्तिका कोई उपाय न मिला ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि इस विषयमें सूर्यनारायण जो आज्ञा करें, वही करना चाहिये । अतः गोकर्णने अपने तपोबलसे सूर्यकी गतिको रोक दिया ॥ ३९ ॥ उन्होंने स्तुति की—'भगवन् ! आप सारे संसारके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप मुझे कृपा करके धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये ।' गोकर्णकी यह प्रार्थना सुनकर सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, इसलिये तुम उसका सप्ताह पारायण करो ।' सूर्यका यह धर्ममय वचन वहाँ सभीने सुना ॥ ४०-४१ ॥ तब सबने यही कहा कि 'प्रयत्नपूर्वक यही करो, है भी यह साधन बहुत सरल ।' अतः गोकर्णजी भी तदनुसार निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हो गये ॥ ४२ ॥

देश और गाँवोंसे अनेकों लोग कथा सुननेके लिये आये । बहुत-से लँगड़े-लूले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके उद्देश्यसे वहाँ आ पहुँचे ॥ ४३ ॥

समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ।
यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ ४४

स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ।
सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ ४५

तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ।
वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ ४६

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ।
प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ ४७

दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ।
वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ ४८

द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ।
तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९

एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिविभेदनम् ।
कृत्वा स द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ ५०

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ५१

ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ।
त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ ५२

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ ५३

कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ ५४

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ।
श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ ५५

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५६

इस प्रकार वहाँ इतनी भीड़ हो गयी कि उसे देखकर देवताओंको भी आश्चर्य होता था। जब गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा कहने लगे, तब वह प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सीधे रखे हुए सात गाँठके बाँसपर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥ उसीके नीचेके छिद्रमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठ गया। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था, इसलिये बाँसमें घुस गया ॥ ४६ ॥

गोकर्णजीने एक वैष्णव ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बनाया और प्रथमस्कन्धसे ही स्पष्ट स्वरमें कथा सुनानी आरम्भ कर दी ॥ ४७ ॥ सायंकालमें जब कथाको विश्राम दिया गया, तब एक बड़ी विचित्र बात हुई। वहाँ सभासदोंके देखते-देखते उस बाँसकी एक गाँठ तड़-तड़ शब्द करती फट गयी ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार दूसरे दिन सायंकालमें दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन उसी समय तीसरी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सात दिनोंमें सातों गाँठोंको फोड़कर धुन्धुकारी बारहों स्कन्धोंके सुननेसे पवित्र होकर प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया और दिव्यरूप धारण करके सबके सामने प्रकट हुआ। उसका मेघके समान श्याम शरीर पीताम्बर और तुलसीकी मालाओंसे सुशोभित था तथा सिरपर मनोहर मुकुट और कानोंमें कमनीय कुण्डल झिलमिला रहे थे ॥ ५०-५१ ॥ उसने तुरन्त अपने भाई गोकर्णको प्रणाम करके कहा—'भाई ! तुमने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिकी यातनाओंसे मुक्त कर दिया ॥ ५२ ॥ यह प्रेतपीड़ाका नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह-पारायण भी धन्य है ! ॥ ५३ ॥ जब सप्ताहश्रवणका योग लगता है, तब सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहश्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है ॥ ५५ ॥

विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है ॥ ५६ ॥

किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ ५७

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ ५८

जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ॥ ५९

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ ६०

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ६१

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ।
अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ ६२

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३

जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रन्थिविभेदनम् ।
चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६५

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ।
कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६

एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमागमत्तदा ।
वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ।
विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८

भला, मोहपूर्वक लालन-पालन करके यदि इस अनित्य शरीरको हृष्ट-पुष्ट और बलवान् भी बना लिया तो भी श्रीमद्भागवतकी कथा सुने बिना इससे क्या लाभ हुआ ? ॥ ५७ ॥ अस्थियाँ ही इस शरीरके आधारस्तम्भ हैं, नस-नाडीरूप रस्सियोंसे यह बँधा हुआ है, ऊपरसे इसपर मांस और रक्त थोपकर इसे चर्मसे मँढ़ दिया गया है। इसके प्रत्येक अङ्गमें दुर्गन्ध आती है; क्योंकि है तो यह मल-मूत्रका भाण्ड ही ॥ ५८ ॥ वृद्धावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखमय ही है, रोगोंका तो घर ही ठहरा। यह निरन्तर किसी-न-किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती। इसे धारण किये रहना भी एक भार ही है; इसके रोम-रोममें दोष भरे हुए हैं और नष्ट होनेमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता ॥ ५९ ॥ अन्तमें यदि इसे गाड़ दिया जाता है तो इसके कीड़े बन जाते हैं; कोई पशु खा जाता है तो यह विष्ठा हो जाता है और अग्निमें जला दिया जाता है तो भस्मकी ढेरी हो जाता है। ये तीन ही इसकी गतियाँ बतायी गयी हैं। ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला काम क्यों नहीं बना लेता ? ॥ ६० ॥ जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायंकालतक बिगड़ जाता है; फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी ॥ ६१ ॥

इस लोकमें सप्ताहश्रवण करनेसे भगवान्‌की शीघ्र ही प्राप्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है ॥ ६२ ॥ जो लोग भागवतकी कथासे वञ्चित हैं, वे तो जलमें बुदबुदे और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये ही पैदा होते हैं ॥ ६३ ॥ भला, जिसके प्रभावसे जड़ और सूखे हुए बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, उस भागवतकथाका श्रवण करनेसे चित्तकी गाँठोंका खुल जाना कौन बड़ी बात है ॥ ६४ ॥ सप्ताह-श्रवण करनेसे मनुष्यके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, उसके समस्त संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ६५ ॥ यह भागवतकथारूप तीर्थ संसारके कीचड़को धोनेमें बड़ा ही पटु है। विद्वानोंका कथन है कि जब यह हृदयमें स्थित हो जाता है, तब मनुष्यकी मुक्ति निश्चित ही समझनी चाहिये ॥ ६६ ॥

जिस समय धुन्धुकारी ये सब बातें कह रहा था, जिसके लिये वैकुण्ठवासी पार्षदोंके सहित एक विमान उतरा; उससे सब ओर मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था ॥ ६७ ॥ सब लोगोंके सामने ही धुन्धुकारी उस विमानपर चढ़ गया। तब उस विमानपर आये हुए पार्षदोंको देखकर उनसे गोकर्णने यह बात कही ॥ ६८ ॥

गोकर्ण उवाच

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ।
आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ।
फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७०

हरिदासा ऊचुः

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः ।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ।
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ ७१

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ।
मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ ७२

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ ७३

अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ।
हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम् ॥ ७४

विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७५

एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ।
पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ ७६

गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ।
एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ ७७

श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ।
सप्तरात्रवर्तीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ ७८

कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९

विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ।
जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ॥ ८०

पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ।
गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१

गोकर्णने पूछा—भगवान्‌के प्रिय पार्षदो ! यहाँ हमारे अनेकों शुद्धहृदय श्रोतागण हैं, उन सबके लिये आपलोग एक साथ बहुत-से विमान क्यों नहीं लाये ? हम देखते हैं कि यहाँ सभीने समानरूपसे कथा सुनी है, फिर फलमें इस प्रकारका भेद क्यों हुआ, यह बताइये ॥ ६९-७० ॥

भगवान्‌के सेवकोंने कहा—हे मानद ! इस फलभेदका कारण इनके श्रवणका भेद ही है । यह ठीक है कि श्रवण तो सबने समानरूपसे ही किया है, किन्तु इसके-जैसा मनन नहीं किया । इसीसे एक साथ भजन करनेपर भी उसके फलमें भेद रहा ॥ ७१ ॥ इस प्रेतने सात दिनोंतक निराहार रहकर श्रवण किया था, तथा सुने हुए विषयका स्थिरचित्तसे यह खूब मनन-निदिध्यासन भी करता रहता था ॥ ७२ ॥ जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है । इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवणका, संदेहसे मन्त्रका और चित्तके इधर-उधर भटकते रहनेसे जपका भी कोई फल नहीं होता ॥ ७३ ॥ वैष्णवहीन देश, अपात्रको कराया हुआ श्राद्धका भोजन, अश्रोत्रिय-को दिया हुआ दान एवं आचारहीन कुल—इन सबका नाश हो जाता है ॥ ७४ ॥ गुरुवचनोंमें विश्वास, दीनताका भाव, मनके दोषोंपर विजय और कथामें चित्तकी एकाग्रता इत्यादि नियमोंका यदि पालन किया जाय तो श्रवणका यथार्थ फल मिलता है । यदि ये श्रोता फिरसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनें तो निश्चय ही सबको वैकुण्ठकी प्राप्ति होगी ॥ ७५-७६ ॥ और गोकर्णजी ! आपको तो भगवान् स्वयं आकर गोलोकधाममें ले जायँगे । यों कहकर वे सब पार्षद हरिकीर्तन करते वैकुण्ठलोकको चले गये ॥ ७७ ॥

श्रावण मासमें गोकर्णजीने फिर उसी प्रकार सप्ताहक्रमसे कथा कही और उन श्रोताओंने उसे फिर सुना ॥ ७८ ॥ नारदजी ! इस कथाकी समाप्तिपर जो कुछ हुआ, वह सुनिये ॥ ७९ ॥ वहाँ भक्तोंसे भरे हुए विमानोंके साथ भगवान् प्रकट हुए । सब ओरसे खूब जय-जयकार और नमस्कारकी ध्वनियाँ होने लगीं ॥ ८० ॥ भगवान् स्वयं हर्षित होकर अपने पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि करने लगे और उन्होंने गोकर्णको हृदयसे लगाकर अपने ही समान बना लिया ॥ ८१ ॥

श्रोतॄनन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ।
गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ।
कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ ८५

यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ।
तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६

ब्रूमोऽत्र ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं
सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः
पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणै-
स्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै
सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥ ८८

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९

आख्यानमेतत्परमं पवित्रं
श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहे-
न्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९०

उन्होंने क्षणभरमें ही अन्य सब श्रोताओंको भी मेघके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीताम्बरधारी तथा किरीट और कुण्डलादिसे विभूषित कर दिया ॥ ८२ ॥ उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डालपर्यन्त जितने भी जीव थे, वे सभी गोकर्णजीकी कृपासे विमानोंपर चढ़ा लिये गये ॥ ८३ ॥ तथा जहाँ योगिजन जाते हैं, उस भगवद्धाममें वे भेज दिये गये। इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण कथाश्रवणसे प्रसन्न होकर गोकर्णजीको साथ ले अपने ग्वालबालोंके प्रिय गोलोकधाममें चले गये ॥ ८४ ॥ पूर्वकालमें जैसे अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके साथ साकेतधाम सिधारे थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण उन सबको योगिदुर्लभ गोलोकधामको ले गये ॥ ८५ ॥ जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं हो सकती, उसमें वे श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे चले गये ॥ ८६ ॥

नारदजी ! सप्ताहयज्ञके द्वारा कथाश्रवण करनेसे जैसा उज्ज्वल फल संचित होता है, उसके विषयमें हम आपसे क्या कहें ? अजी ! जिन्होंने अपने कर्णपुटसे गोकर्णजीकी कथाके एक अक्षरका भी पान किया था, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये ॥ ८७ ॥ जिस गतिको लोग वायु, जल या पत्ते खाकर शरीर सुखानेसे, बहुत कालतक घोर तपस्या करनेसे और योगाभ्याससे भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहश्रवणसे सहजमें ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ८८ ॥ इस परम पवित्र इतिहासका पाठ चित्रकूटपर विराजमान मुनीश्वर शाण्डिल्य भी ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर करते रहते हैं ॥ ८९ ॥ यह कथा बड़ी ही पवित्र है। एक बारके श्रवणसे ही समस्त पापराशिको भस्म कर देती है। यदि इसका श्राद्धके समय पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको बड़ी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्ष-
वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

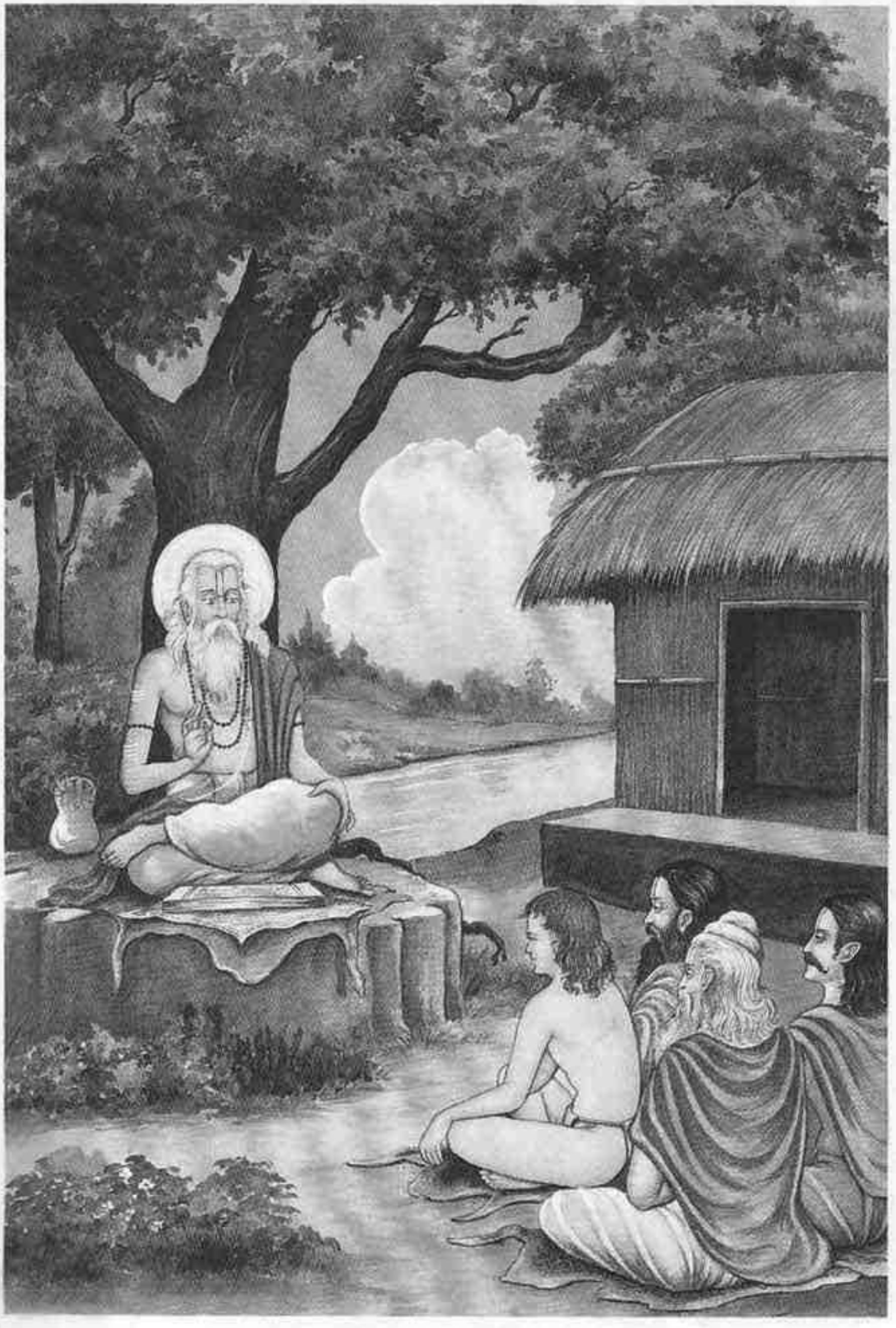

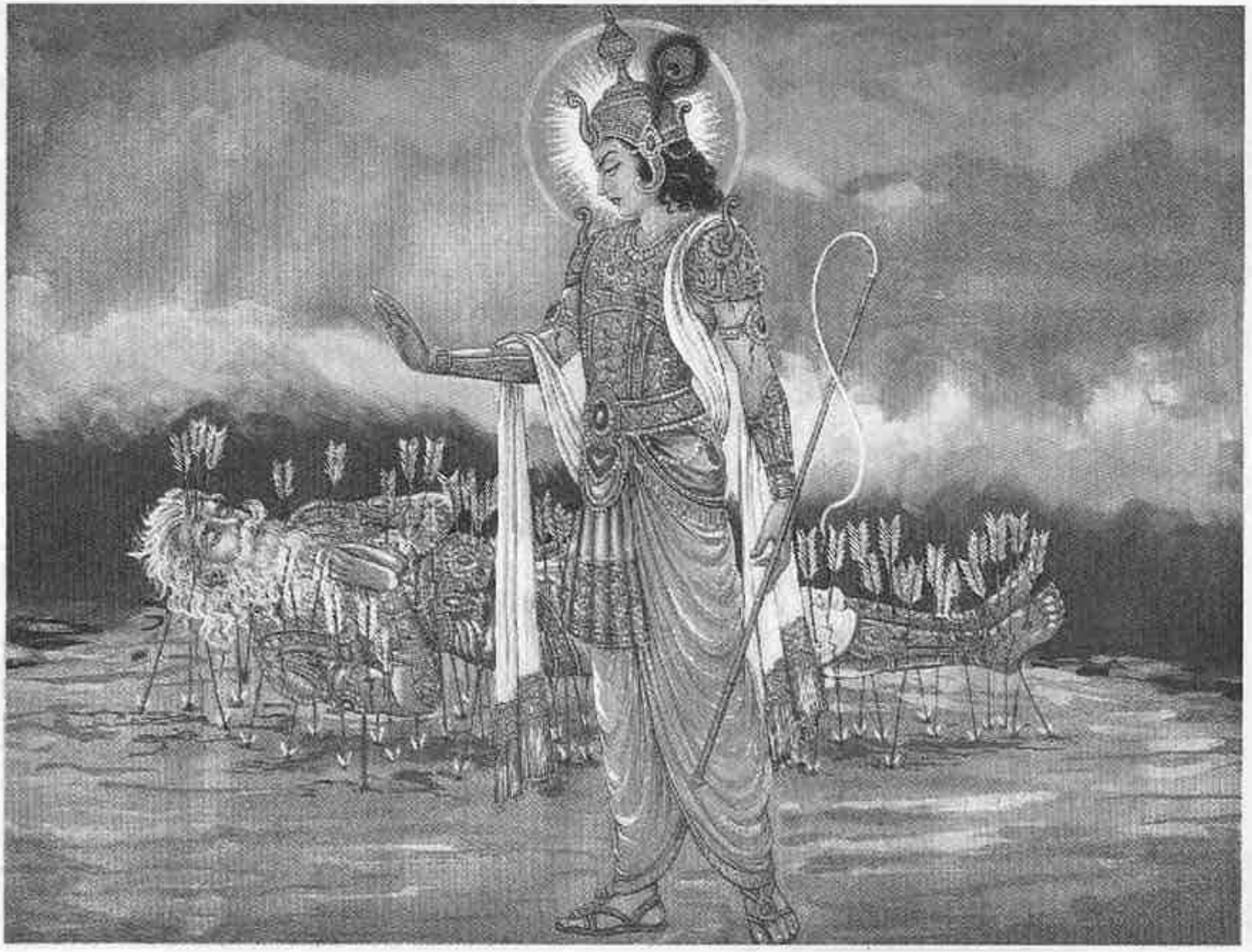

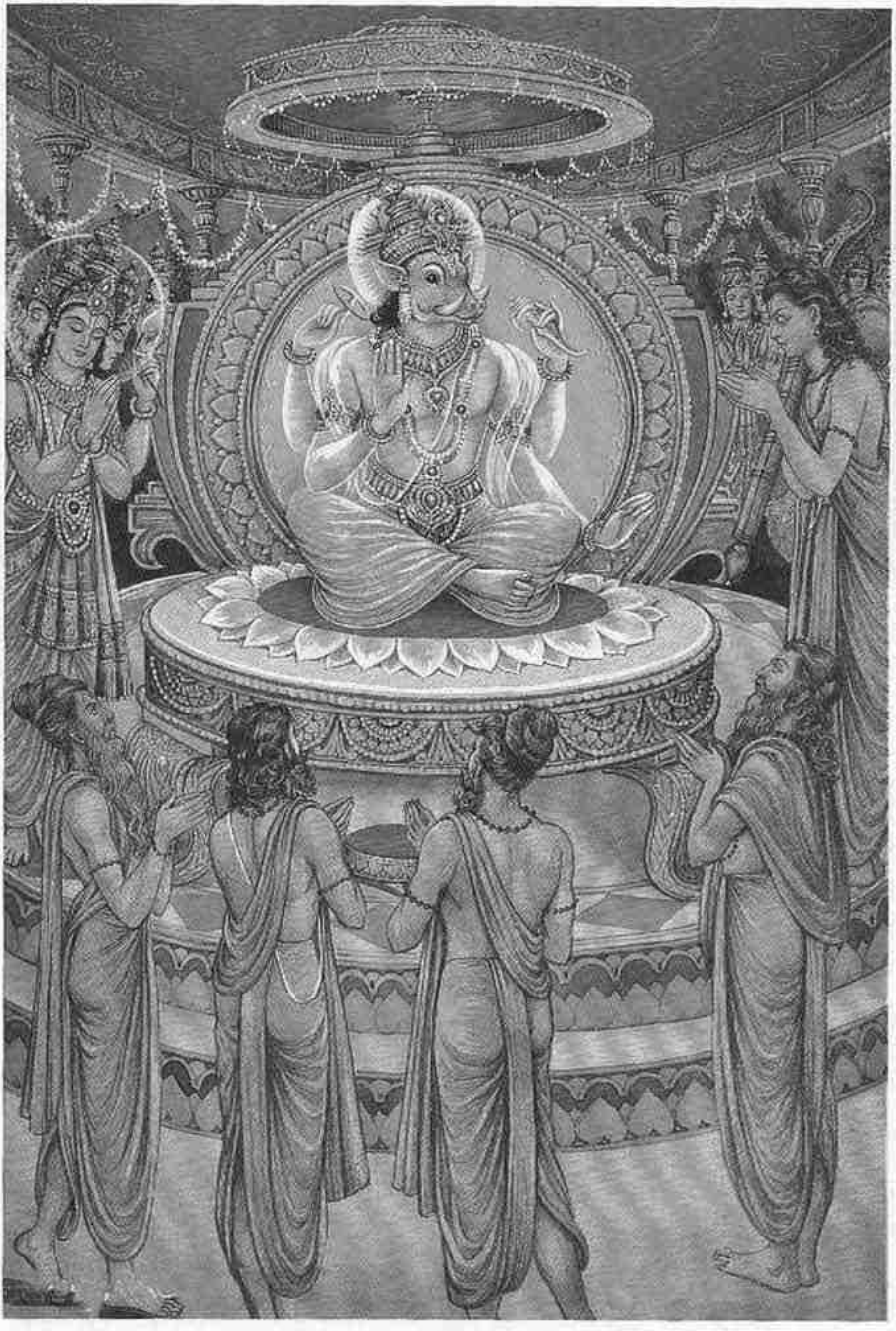

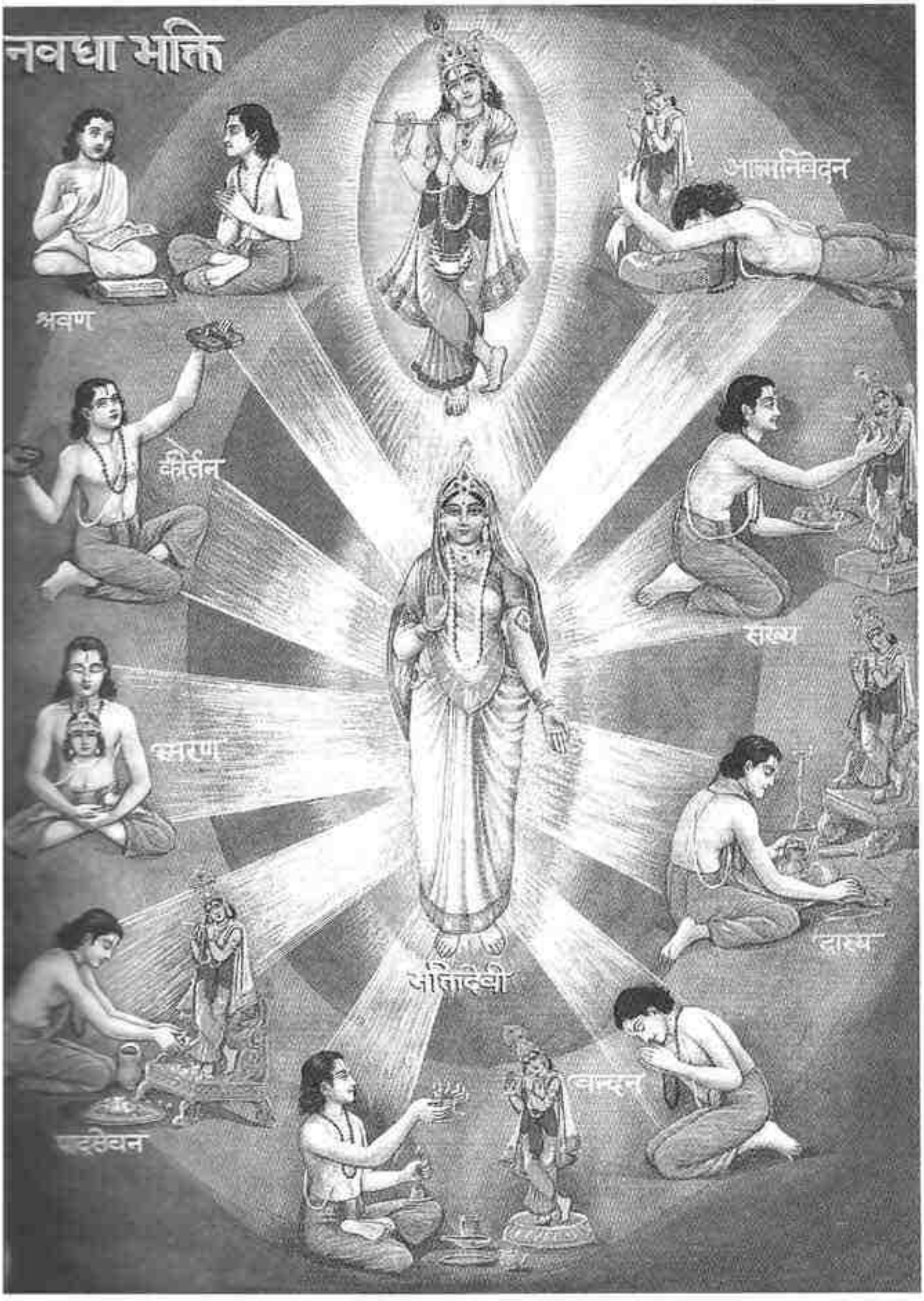
नवधा भक्ति
श्रवण
कीर्तन
स्मरण
पादसेवन
अर्चन
वंदन
दास्य
सख्य
आत्मनिवेदन
जगदंबा

अथ षष्ठोऽध्यायः

सप्ताहयज्ञकी विधि

कुमारा ऊचुः

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३

मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।
सहायाश्चेतरे तत्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४

देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ।
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५

दूरेहरिकथाः केचिद्दूरेचाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ।
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७

सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ।
अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९

नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ।
सर्वथाऽऽगमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १०

एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ।
आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११

तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ।
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥ १२

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी ! अब हम आपको सप्ताहश्रवणकी विधि बताते हैं। यह विधि प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य कही गयी है ॥ १ ॥ पहले तो यत्नपूर्वक ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जिस प्रकार धनका प्रबन्ध किया जाता है उस प्रकार ही धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये ॥ २ ॥ कथा आरम्भ करनेमें भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण—ये छः महीने श्रोताओंके लिये मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं ॥ ३ ॥ देवर्षे ! इन महीनोंमें भी भद्रा-व्यतीपात आदि कुयोगोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये। तथा दूसरे लोग जो उत्साही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना चाहिये ॥ ४ ॥ फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरोंमें यह संवाद भेजना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, सब लोगोंको सपरिवार पधारना चाहिये ॥ ५ ॥ स्त्री और शूद्रादि भगवत्कथा एवं संकीर्तनसे दूर पड़ गये हैं। उनको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ देश-देशमें जो विरक्त वैष्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके पास निमन्त्रणपत्र अवश्य भेजे। उसे लिखनेकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है ॥ ७ ॥ 'महानुभावो ! यहाँ सात दिनतक सत्पुरुषोंका बड़ा दुर्लभ समागम रहेगा और अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवतकी कथा होगी ॥ ८ ॥ आपलोग भगवद्रसके रसिक हैं, अतः श्रीभागवतामृतका पान करनेके लिये प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें ॥ ९ ॥ यदि आपको विशेष अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो अवश्य ही कृपा करनी चाहिये; क्योंकि यहाँका तो एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है' ॥ १० ॥ इस प्रकार विनयपूर्वक उन्हें निमन्त्रित करे और जो लोग आयें, उनके लिये यथोचित निवास-स्थानका प्रबन्ध करे ॥ ११ ॥

कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है। जहाँ लम्बा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथास्थल रखना चाहिये ॥ १२ ॥

शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम्।
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत्॥ १३

अर्वाक्पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत्।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः॥ १४

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसम्पद्विराजितः॥ १५

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम्।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च॥ १६

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम्।
वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत्॥ १७

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा।
प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा॥ १८

अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः।
श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः॥ १९

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत्।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः॥ २०

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः।
शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः॥ २१

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः॥ २२

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये।
अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत्॥ २३

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं स्वं प्रयत्नतः।
कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत्॥ २४

पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा॥ २५

भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे चौक पूरे। घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे॥ १३॥ पाँच दिन पहलेसे ही यत्नपूर्वक बहुत-से बिछानेके वस्त्र एकत्र कर ले तथा केलेके खंभोंसे सुशोभित एक ऊँचा मण्डप तैयार कराये॥ १४॥ उसे सब ओर फल, पुष्प, पत्र और चँदोवेसे अलंकृत करे तथा चारों ओर झंडियाँ लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजा दे॥ १५॥ उस मण्डपमें कुछ ऊँचाईपर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बैठाये॥ १६॥ आगेकी ओर उनके लिये वहाँ यथोचित आसन तैयार रखे। इनके पीछे वक्ताके लिये भी एक दिव्य सिंहासनका प्रबन्ध करे॥ १७॥ यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे और यदि वक्ता पूर्वाभिमुख रहे तो श्रोताको उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये॥ १८॥ अथवा वक्ता और श्रोताको पूर्वमुख होकर बैठना चाहिये। देश-काल आदिको जाननेवाले महानुभावोंने श्रोताके लिये ऐसा ही नियम बताया है॥ १९॥ जो वेद-शास्त्रकी स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हो, तरह-तरहके दृष्टान्त दे सकता हो तथा विवेकी और अत्यन्त निःस्पृह हो, ऐसे विरक्त और विष्णुभक्त ब्राह्मणको वक्ता बनाना चाहिये॥ २०॥ श्रीमद्भागवतके प्रवचनमें ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्री-लम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों॥ २१॥ वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो॥ २२॥

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये। तथा अरुणोदयके समय शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे॥ २३॥ और संध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे॥ २४॥ तदनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्वपापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे॥ २५॥

कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात्।
प्रदक्षिणनमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत्॥ २६

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्॥ २७

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः।
कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता॥ २८

ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत्।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा॥ २९

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे॥ ३०

मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव॥ ३१

फिर भगवान् श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचारविधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे॥ २६॥ 'करुणानिधान! मैं संसार-सागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रखा है। आप इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये'॥ २७॥ इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे॥ २८॥ फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—॥ २९॥ 'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है॥ ३०॥ मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ'॥ ३१॥

एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं चाथ पूजयेत्।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत्॥ ३२

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥ ३३

तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा।
सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि॥ ३४

वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया॥ ३५

ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत्॥ ३६

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम्॥ ३७

आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तकम्।
वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता॥ ३८

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—॥ ३२॥ 'शुकस्वरूप भगवन्! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारंगत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें'॥ ३३॥ फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे॥ ३४॥ कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करें॥ ३५॥ फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णुभक्त एवं कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा पाकर स्वयं भी आसनपर बैठ जाय॥ ३६॥ जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे केवल कथामें ही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका उत्तम फल मिलता है॥ ३७॥

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ।
तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥३९

मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ।
हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥४०

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ।
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥४१

फलाहारेण वा भाव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ।
सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥४२

भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥४३

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्शृणु नारद ।
विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥४४

ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥४५

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ।
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥४६

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ।
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥४७

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ।
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥४८

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तथा ।
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥४९

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥५०

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥५१

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥५२

तरह कथा बाँचे ॥ ३८ ॥ दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। उस समय कथाके प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पाहार सुखकारी होता है; इसलिये श्रोता केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन करे ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सातों दिन निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक श्रवण करे ॥ ४१ ॥ अथवा फलाहार या एक समय ही भोजन करे। जिससे जैसा नियम सुभीतेसे सध सके, उसीको कथाश्रवणके लिये ग्रहण करे ॥ ४२ ॥ मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो। यदि उपवाससे श्रवणमें बाधा पहुँचती हो तो वह किसी कामका नहीं ॥ ४३ ॥

नारदजी ! नियमसे सप्ताह सुननेवाले पुरुषोंके नियम सुनिये। विष्णुभक्तकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग करना चाहिये ॥ ४६ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने देना चाहिये ॥ ४७ ॥ वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक तथा स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचे ॥ ४८ ॥ नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये ॥ ५० ॥ धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा श्रवण करे ॥ ५१ ॥ जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी संतान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह यत्नपूर्वक इस कथाको सुने ॥ ५२ ॥

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षयतरं भवेत्।
अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३

ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है। यह अत्युत्तम दिव्य कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत्।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ ५४

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमी-व्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें ॥ ५४ ॥

अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५

किन्तु जो भगवान्‌के अकिञ्चन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे श्रवणसे ही पवित्र हैं; क्योंकि वे तो निष्काम भगवद्भक्त हैं ॥ ५५ ॥

एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ५६

इस प्रकार जब सप्ताहयज्ञ समाप्त हो जाय, तब श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदङ्ग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें ॥ ५७ ॥ जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खध्वनिका घोष कराये तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥ श्रोता विरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करे; गृहस्थ हो तो हवन करे ॥ ५९ ॥ उस हवनमें दशमस्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दे ॥ ६० ॥

प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम्।
मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७

जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत्।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८

विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि।
गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ५९

प्रतिश्लोकं तु जुहुयाद्विधिना दशमस्य च।
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६०

अथवा एकाग्र चित्तसे गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे; क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है ॥ ६१ ॥ होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको हवनसामग्री दान करे तथा नाना प्रकारकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये और विधिमें फिर जो न्यूनाधिकता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है ॥ ६२-६३ ॥

अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः।
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये।
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकतानयोः ॥ ६२

दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम्।
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्णका दान करे ॥ ६४ ॥ सामर्थ्य हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवाये, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर उसकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको—उसका वस्त्र, आभूषण

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः।
दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४

शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५

सम्पूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम्।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६

आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः।
एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७

फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम्।
धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८

एवं गन्धादिसे पूजनकर—दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे ॥ ६५-६६ ॥ यों करनेसे वह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मङ्गलमय भागवतपुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७-६८ ॥

कुमारा ऊचुः

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९

सनकादि कहते हैं—नारदजी ! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताहश्रवणकी विधि हमने पूरी-पूरी सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ? इस श्रीमद्भागवतसे भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ लग जाते हैं ॥ ६९ ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम्।
सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७०

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम्।
यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! यों कहकर महामुनि सनकादिने एक सप्ताहतक विधिपूर्वक इस सर्वपापनाशिनी, परम पवित्र तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली भागवतकथाका प्रवचन किया। सब प्राणियोंने नियमपूर्वक इसे श्रवण किया। इसके पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की ॥ ७०-७१ ॥

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा।
तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२

कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको बड़ी पुष्टि मिली और वे तीनों एकदम तरुण होकर सब जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने लगे ॥ ७२ ॥

नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे।
पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसम्भृतः ॥ ७३

अपना मनोरथ पूरा होनेसे नारदजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे परमानन्दसे पूर्ण हो गये ॥ ७३ ॥

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः।
प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४

इस प्रकार कथा श्रवणकर भगवान्‌के प्यारे नारदजी हाथ जोड़कर प्रेमगद्गद वाणीसे सनकादिसे कहने लगे ॥ ७४ ॥

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः।
अद्य मे भगवाँल्लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५

नारदजीने कहा—मैं धन्य हूँ, आपलोगोंने करुणा करके मुझे बड़ा ही अनुगृहीत किया है, आज मुझे सर्वपापहारी भगवान् श्रीहरिकी ही प्राप्ति हो गयी ॥ ७५ ॥

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः।
वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६

तपोधनो ! मैं श्रीमद्भागवतश्रवणको ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि जिसके श्रवणसे वैकुण्ठ (गोलोक)-विहारी श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

सूत उवाच

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे।
परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी यों कह ही रहे थे कि वहाँ घूमते-फिरते योगेश्वर शुकदेवजी

तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा
व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ।
कथावसाने निजलाभपूर्णः
प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं
सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं
स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९

श्रीशुक उवाच

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८०

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ ८१

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं
यस्मिन् पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८२

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ।
अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥ ८३

सूत उवाच

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ
मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभि-
र्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४
दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं
ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ।

आ गये ॥ ७७ ॥ कथा समाप्त होते ही व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी वहाँ पधारे। सोलह वर्षकी-सी आयु, आत्मलाभसे पूर्ण, ज्ञानरूपी महासागरका संवर्धन करनेके लिये चन्द्रमाके समान वे प्रेमसे धीरे-धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे ॥ ७८ ॥ परम तेजस्वी शुकदेवजीको देखकर सारे सभासद् झटपट खड़े हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठाया। फिर देवर्षि नारदजीने उनका प्रेमपूर्वक पूजन किया। उन्होंने सुखपूर्वक बैठकर कहा— 'आपलोग मेरी निर्मल वाणी सुनिये' ॥ ७९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—रसिक एवं भावुक जन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है। श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक आपलोग बार-बार इसका पान करें ॥ ८० ॥ महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवत महापुराणकी रचना की है। इसमें निष्कपट—निष्काम परम धर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जानने योग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है, जिससे तीनों तापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उनके हृदयमें अवरुद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥ यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठमें भी नहीं है। इसलिये भाग्यवान् श्रोताओ ! तुम इसका खूब पान करो; इसे कभी मत छोड़ो, मत छोड़ो ॥ ८३ ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि उस सभाके बीचोबीच प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। तब देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंकी यथोचित पूजा की ॥ ८४ ॥ भगवान्‌को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा

भवो भवान्या कमलासनस्तु
तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र
भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम्।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य
हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७

मत्तो वरं भाववृताद् वृणुध्वं
प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम्।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः
प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८

नगाहगाथासु च सर्वभक्तै-
रेभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात्।
मनोरथोऽयं परिपूरणीय-
स्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ॥ ८९

ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारद-
स्तथा शुकादीनपि तापसांश्च।
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः
सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९०

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा
शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवना-
च्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१

दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां
मायापिशाचीपरिमर्दितानाम्।
संसारसिन्धौ परिपातितानां
क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२

दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आये ॥ ८५ ॥ कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चञ्चलगति (फुर्तीले) होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने झाँझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गान-विद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्गभङ्गी करके भाव बताने लगे ॥ ८६ ॥ इन सबके बीचमें परम तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे। ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे— ॥ ८७ ॥ 'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्तिभावने इस समय मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो'। भगवान्के ये वचन सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमार्द्र चित्तसे भगवान्से कहने लगे ॥ ८८ ॥ 'भगवन्! हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्यमें भी जहाँ-कहीं सप्ताह-कथा हो, वहाँ आप इन पार्षदोंके सहित अवश्य पधारें। हमारा यह मनोरथ पूर्ण कर दीजिये'। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ॥ ८९ ॥

इसके पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके पार्षदोंके चरणोंको लक्ष्य करके प्रणाम किया और फिर शुकदेवजी आदि तपस्वियोंको भी नमस्कार किया। कथामृतका पान करनेसे सब लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ, उनका सारा मोह नष्ट हो गया। फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ९० ॥ उस समय शुकदेवजीने भक्तिको उसके पुत्रोंसहित अपने शास्त्रमें स्थापित कर दिया। इसीसे भागवतका सेवन करनेसे श्रीहरि वैष्णवोंके हृदयमें आ विराजते हैं ॥ ९१ ॥ जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचीने रौंद डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है ॥ ९२ ॥

शौनक उवाच

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ।
सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ॥ १३

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को, गोकर्णने धुन्धुकारीको और सनकादिने नारदजीको किस-किस समय यह ग्रन्थ सुनाया था—मेरा यह संशय दूर कीजिये ! ॥ १३ ॥

सूत उवाच

आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥ १४

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमनके बाद कलियुगके तीस वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर भाद्रपद मासकी शुक्ला नवमीको शुकदेवजीने कथा आरम्भ की थी ॥ १४ ॥ राजा परीक्षित्‌के कथा सुननेके बाद कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने यह कथा सुनायी थी ॥ १५ ॥ इसके पीछे कलियुगके तीस वर्ष और निकल जानेपर कार्तिक शुक्ला नवमीसे सनकादिने कथा आरम्भ की थी ॥ १६ ॥ निष्पाप शौनकजी ! आपने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने आपको दे दिया। इस कलियुगमें भागवतकी कथा भवरोगकी रामबाण औषध है ॥ १७ ॥

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ १५

तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ १६

इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ १७

संतजन ! आपलोग आदरपूर्वक इस कथामृतका पान कीजिये। यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला मुक्तिका एकमात्र कारण और भक्तिको बढ़ानेवाला है। लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंका विचार करने और तीर्थोंका सेवन करनेसे क्या होगा ॥ १८ ॥ अपने दूतको हाथमें पाश लिये देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो भगवान्‌की कथा-वार्तामें मत्त हो रहे हों, उनसे दूर रहना; मैं औरोंको ही दण्ड देनेकी शक्ति रखता हूँ, वैष्णवोंको नहीं' ॥ १९ ॥ इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो ! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो। प्यारे भाइयो ! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो ? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं ॥ १०० ॥ श्रीशुकदेवजीने प्रेमरसके प्रवाहमें स्थित होकर इस कथाको कहा था। इसका जिसके कण्ठसे सम्बन्ध हो जाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है ॥ १०१ ॥ शौनकजी ! मैंने अनेक शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम गोप्य रहस्य अभी-अभी सुनाया है।

कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च
मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।
सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण
लोके हि तीर्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १००

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ।
कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं
सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।

जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्
पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०२

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या
यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते
याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३

सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यही निचोड़ है। संसारमें इस शुकशास्त्रसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है; अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इस द्वादशस्कन्धरूप रसका पान करें ॥ १०२ ॥ जो पुरुष नियमपूर्वक इस कथाका भक्ति-भावसे श्रवण करता है और जो शुद्धान्तःकरण भगवद्भक्तोंके सामने इसे सुनाता है, वे दोनों ही विधिका पूरा-पूरा पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल पाते हैं— उनके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता ॥ १०३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये
श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशायः नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

मङ्गलाचरण

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरत-
श्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये
मुह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो
यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं
सत्यं परं धीमहि ॥ १

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो
निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं
तापत्रयोन्मूलनम् ।

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३

जिससे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत् पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं, चेतन है; परतन्त्र नहीं, स्वयंप्रकाश है; जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं, प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है; जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं; जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं॥ १ ॥ महामुनि व्यासदेवके द्वारा निर्मित इस श्रीमद्भागवत महापुराणमें मोक्ष-पर्यन्त फलकी कामनासे रहित परम धर्मका निरूपण हुआ है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य उस वास्तविक वस्तु परमात्माका निरूपण हुआ है, जो तीनों तापोंका जड़से नाश करनेवाली और परम कल्याण देनेवाली है। अब और किसी साधन या शास्त्रसे क्या प्रयोजन। जिस समय भी सुकृती पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, ईश्वर उसी समय अविलम्ब उनके हृदयमें आकर बन्दी बन जाता है॥ २ ॥ रसके मर्मज्ञ भक्तजन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। श्रीशुकदेवरूप तोतेके* मुखका सम्बन्ध हो जानेसे यह परमानन्दमयी सुधासे परिपूर्ण हो गया है। इस फलमें छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है। यह मूर्तिमान् रस है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इस दिव्य भगवद्रसका निरन्तर बार-बार पान करते रहो। यह पृथ्वीपर ही सुलभ है॥ ३ ॥

कथाप्रारम्भ

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४

एक बार भगवान् विष्णु एवं देवताओंके परम पुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरे होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ४ ॥

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५

एक दिन उन लोगोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर सूतजीका पूजन किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर बड़े आदरसे यह प्रश्न किया ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! आप निष्पाप हैं। आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभाँति व्याख्या भी की है ॥ ६ ॥

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६

वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् बादरायणने एवं भगवान्के सगुण-निर्गुण रूपको जाननेवाले दूसरे मुनियोंने जो कुछ जाना है—उन्हें जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं। आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं। गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त-से-गुप्त बात भी बता दिया करते हैं ॥ ७-८ ॥

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।
अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८

आयुष्मन् ! आप कृपा करके यह बतलाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका सहज साधन आपने क्या निश्चय किया है ॥ ९ ॥

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९

आप संत-समाजके भूषण हैं। इस कलियुगमें प्रायः लोगोंकी आयु कम हो गयी है। साधन करनेमें लोगोंकी रुचि और प्रवृत्ति भी नहीं है। लोग आलसी हो गये हैं। उनका भाग्य तो मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है। इसके साथ ही वे नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे घिरे हुए भी रहते हैं ॥ १० ॥

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १०

शास्त्र भी बहुत-से हैं। परन्तु उनमें एक निश्चित साधनका नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। साथ ही वे इतने बड़े हैं कि उनका एक अंश सुनना भी कठिन है। आप परोपकारी हैं। अपनी बुद्धिसे उनका सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये हम श्रद्धालुओंको सुनाइये, जिससे हमारे अन्तःकरणकी शुद्धि प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ॥ ११

प्यारे सूतजी ! आपका कल्याण हो। आप तो जानते ही हैं कि यदुवंशियोंके रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे क्या करनेकी इच्छासे अवतीर्ण हुए थे ॥ १२ ॥

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२

हम उसे सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हमारे लिये उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान्का अवतार जीवोंके परम कल्याण और उनकी भगवत्प्रेममयी समृद्धिके लिये ही होता है ॥ १३ ॥

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ।
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३

यह जीव जन्म-मृत्युके घोर चक्रमें पड़ा हुआ है—इस स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्के मङ्गलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय; क्योंकि स्वयं भय भी भगवान्से डरता

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥ १४

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥ १५

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ।
शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ।
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ॥ २०

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१

त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ।
कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३

रहता है ॥ १४ ॥ सूतजी ! परम विरक्त और परम शान्त मुनिजन भगवान्‌के श्रीचरणोंकी शरणमें ही रहते हैं, अतएव उनके स्पर्शमात्रसे संसारके जीव तुरन्त पवित्र हो जाते हैं। इधर गङ्गाजीके जलका बहुत दिनोंतक सेवन किया जाय, तब कहीं पवित्रता प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ ऐसे पुण्यात्मा भक्त जिनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं, उन भगवान्‌का कलिमलहारी पवित्र यश भला आत्मशुद्धिकी इच्छावाला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो श्रवण न करे ॥ १६ ॥ वे लीलासे ही अवतार धारण करते हैं। नारदादि महात्माओंने उनके उदार कर्मोंका गान किया है। हम श्रद्धालुओंके प्रति आप उनका वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् सूतजी ! सर्वसमर्थ प्रभु अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओंका अब वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ पुण्यकीर्ति भगवान्‌की लीला सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि रसज्ञ श्रोताओंको पद-पदपर भगवान्‌की लीलाओंमें नये-नये रसका अनुभव होता है ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको छिपाये हुए थे, लोगोंके सामने ऐसी चेष्टा करते थे मानो कोई मनुष्य हों। परन्तु उन्होंने बलरामजीके साथ ऐसी लीलाएँ भी की हैं, ऐसा पराक्रम भी प्रकट किया है, जो मनुष्य नहीं कर सकते ॥ २० ॥ कलियुगको आया जानकर इस वैष्णवक्षेत्रमें हम दीर्घकालीन सत्रका संकल्प करके बैठे हैं। श्रीहरिकी कथा सुननेके लिये हमें अवकाश प्राप्त है ॥ २१ ॥ यह कलियुग अन्तःकरणकी पवित्रता और शक्तिका नाश करनेवाला है। इससे पार पाना कठिन है। जैसे समुद्रसे पार जानेवालोंको कर्णधार मिल जाय, उसी प्रकार इससे पार पानेकी इच्छा रखनेवाले हम लोगोंसे ब्रह्माने आपको मिलाया है ॥ २२ ॥ धर्मरक्षक, ब्राह्मणभक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके अपने धाममें पधार जानेपर धर्मने अब किसकी शरण ली है—यह बताइये ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य

व्यास उवाच

इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १

श्रीव्यासजी कहते हैं—शौनकादि ब्रह्मवादी ऋषियोंके ये प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऋषियोंके इस मङ्गलमय प्रश्नका

सूत उवाच

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४

मुनयः[१] साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ५

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ ६

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥ ७

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १०

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११

अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरा लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा !' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय—रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करानेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌के अवतार नर-नारायण ऋषियोंको, सरस्वती देवीको और श्रीव्यासदेवजीको नमस्कार करके तब संसार और अन्तःकरणके समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त करानेवाले इस श्रीमद्भागवत महापुराणका पाठ करना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋषियो ! आपने सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि यह प्रश्न श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है और इससे भलीभाँति आत्मशुद्धि हो जाती है ॥ ५ ॥ मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे; ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है ॥ ६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही, अनन्य प्रेमसे उनमें चित्त जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है ॥ ७ ॥ धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्‌की लीला-कथाओंके प्रति अनुरागका उदय न हो तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है ॥ ८ ॥ धर्मका फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थप्राप्तिमें नहीं है। अर्थ केवल धर्मके लिये है। भोगविलास उसका फल नहीं माना गया है ॥ ९ ॥ भोगविलासका फल इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है, उसका प्रयोजन है केवल जीवन-निर्वाह। जीवनका फल भी तत्त्वजिज्ञासा है। बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना उसका फल नहीं है ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्तालोग ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया[1] ।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया[2] ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ १८

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥ २०

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥ २१

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥ २२

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।

रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान्‌के नामसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥ श्रद्धालु मुनिजन भागवत-श्रवणसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिसे अपने हृदयमें उस परमतत्त्वरूप परमात्माका अनुभव करते हैं ॥ १२ ॥ शौनकादि ऋषियो ! यही कारण है कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों ॥ १३ ॥ इसलिये एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्‌का ही नित्य-निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये ॥ १४ ॥ कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवान्‌के चिन्तनकी तलवारसे उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्‌की लीलाकथामें प्रेम न करे ॥ १५ ॥

शौनकादि ऋषियो ! पवित्र तीर्थोंका सेवन करनेसे महत्सेवा, तदनन्तर श्रवणकी इच्छा, फिर श्रद्धा, तत्पश्चात् भगवत्-कथामें रुचि होती है ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं; क्योंकि वे संतोंके नित्य सुहृद् हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके निरन्तर सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ तब रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुणमें स्थित एवं निर्मल हो जाता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्‌की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्‌के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है ॥ २० ॥ हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्‌का साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है ॥ २१ ॥ इसीसे बुद्धिमान् लोग नित्य-निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इनको स्वीकार करके इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और

स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।
सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥ २५

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः[१] शान्ता[२] भजन्ति ह्यनसूयवः ॥ २६

रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ।
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः ॥ ३०

तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ।
अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१

यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ।
नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२

प्रलयके लिये एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी मनुष्योंका परम कल्याण तो सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले श्रीहरिसे ही होता है ॥ २३ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार लकड़ीकी अपेक्षा धुआँ श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि—क्योंकि वेदोक्त यज्ञ-यागादिके द्वारा अग्नि सद्गति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्त्वगुण श्रेष्ठ है; क्योंकि वह भगवान्‌का दर्शन करानेवाला है ॥ २४ ॥ प्राचीन युगमें महात्मालोग अपने कल्याणके लिये विशुद्ध सत्त्वमय भगवान् विष्णुकी ही आराधना किया करते थे। अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके समान कल्याणभाजन होते हैं ॥ २५ ॥ जो लोग इस संसारसागरसे पार जाना चाहते हैं, वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसीमें दोष ही देखते हैं, फिर भी घोररूपवाले—तमोगुणी-रजोगुणी भैरवादि भूतपतियोंकी उपासना न करके सत्त्वगुणी विष्णुभगवान् और उनके अंश—कलास्वरूपोंका ही भजन करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु जिसका स्वभाव रजोगुणी अथवा तमोगुणी है, वे धन, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं; क्योंकि इन लोगोंका स्वभाव उन (भूतादि) से मिलता-जुलता होता है ॥ २७ ॥ वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है। यज्ञोंके उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। योग श्रीकृष्णके लिये ही किये जाते हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी श्रीकृष्णमें ही है ॥ २८ ॥ ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होती है। तपस्या श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही की जाती है। श्रीकृष्णके लिये ही धर्मोंका अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्रीकृष्णमें ही समा जाती हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत हैं, फिर भी अपनी गुणमयी मायासे, जो प्रपञ्चकी दृष्टिसे है और तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है—उन्होंने ही सर्गके आदिमें इस संसारकी रचना की थी ॥ ३० ॥ ये सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण उसी मायाके विलास हैं; इनके भीतर रहकर भगवान् इनसे युक्त-सरीखे मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दघन हैं ॥ ३१ ॥ अग्नि तो वस्तुतः एक ही है, परंतु जब वह अनेक प्रकारकी

असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ।
स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३
भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः ।
लीलावतारानुरतो[1] देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४

लकड़ियोंमें प्रकट होती है तब अनेक-सी मालूम पड़ती है। वैसे ही सबके आत्मरूप भगवान् तो एक ही हैं, परंतु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-जैसे जान पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ भगवान् ही सूक्ष्म भूत—तन्मात्रा, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि गुणोंके विकारभूत भावोंके द्वारा नाना प्रकारकी योनियोंका निर्माण करते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न जीवोंके रूपमें प्रवेश करके उन-उन योनियोंके अनुरूप विषयोंका उपभोग करते-कराते हैं ॥ ३३ ॥ वे ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवोंका पालन-पोषण करते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १
यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २
यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ।
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३
पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा
सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं
सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥ ४
एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५

श्रीसूतजी कहते हैं—सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदिसे निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं ॥ १ ॥ उन्होंने कारण-जलमें शयन करते हुए जब योगनिद्राका विस्तार किया, तब उनके नाभि-सरोवरमेंसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ भगवान्‌के उस विराट्‌रूपके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी है, वह भगवान्‌का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप है ॥ ३ ॥ योगीलोग दिव्यदृष्टिसे भगवान्‌के उस रूपका दर्शन करते हैं। भगवान्‌का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है; उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उल्लसित रहता है ॥ ४ ॥ भगवान्‌का यही पुरुषरूप जिसे नारायण कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है—इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूपके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है ॥ ५ ॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद् दुश्चरं तपः ॥ ९

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १०

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ॥ १२

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८

उन्हीं प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार ब्राह्मणोंके रूपमें अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया ॥ ६ ॥ दूसरी बार इस संसारके कल्याणके लिये समस्त यज्ञोंके स्वामी उन भगवान्‌ने ही रसातलमें गयी हुई पृथ्वीको निकाल लानेके विचारसे सूकररूप ग्रहण किया ॥ ७ ॥ ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत तन्त्रका (जिसे 'नारद-पाञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है ॥ ८ ॥ धर्मपत्नी मूर्तिके गर्भसे उन्होंने नर-नारायणके रूपमें चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियोंका सर्वथा संयम करके बड़ी कठिन तपस्या की ॥ ९ ॥ पाँचवें अवतारमें वे सिद्धोंके स्वामी कपिलके रूपमें प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय करनेवाले सांख्य-शास्त्रका, जो समयके फेरसे लुप्त हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मणको उपदेश किया ॥ १० ॥ अनसूयाके वर माँगनेपर छठे अवतारमें वे अत्रिकी सन्तान—दत्तात्रेय हुए। इस अवतारमें उन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद आदिको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया ॥ ११ ॥ सातवीं बार रुचि प्रजापतिकी आकूति नामक पत्नीसे यज्ञके रूपमें उन्होंने अवतार ग्रहण किया और अपने पुत्र याम आदि देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की ॥ १२ ॥ राजा नाभिकी पत्नी मेरु देवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें भगवान्‌ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया। इस रूपमें उन्होंने परमहंसोंका वह मार्ग, जो सभी आश्रमियोंके लिये वन्दनीय है, दिखाया ॥ १३ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवीं बार वे राजा पृथुके रूपमें अवतीर्ण हुए। शौनकादि ऋषियो ! इस अवतारमें उन्होंने पृथ्वीसे समस्त ओषधियोंका दोहन किया था, इससे यह अवतार सबके लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ ॥ १४ ॥ चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी त्रिलोकी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठाकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मनुकी रक्षा की ॥ १५ ॥ जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन कर रहे थे, उस समय ग्यारहवाँ अवतार धारण करके कच्छपरूपसे भगवान्‌ने मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवीं बार धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट हुए और तेरहवीं बार मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित करते हुए देवताओंको अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहवें अवतारमें उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और अत्यन्त बलवान् दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी छाती अपने नखोंसे अनायास इस प्रकार फाड़ डाली, जैसे चटाई बनानेवाला सींकको चीर डालता है ॥ १८ ॥

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २०

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः[1] कीकटेषु भविष्यति ॥ २४

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९

पंद्रहवीं बार वामनका रूप धारण करके भगवान् दैत्यराज बलिके यज्ञमें गये। वे चाहते तो थे त्रिलोकीका राज्य, परन्तु माँगी उन्होंने केवल तीन पग पृथ्वी ॥ १९ ॥ सोलहवें परशुराम अवतारमें जब उन्होंने देखा कि राजालोग ब्राह्मणोंके द्रोही हो गये हैं, तब क्रोधित होकर उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया ॥ २० ॥ इसके बाद सत्रहवें अवतारमें सत्यवतीके गर्भसे पराशरजीके द्वारा वे व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए, उस समय लोगोंकी समझ और धारणाशक्ति कम देखकर आपने वेदरूप वृक्षकी कई शाखाएँ बना दीं ॥ २१ ॥ अठारहवीं बार देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने राजाके रूपमें रामावतार ग्रहण किया और सेतु-बन्धन, रावणवध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाएँ कीं ॥ २२ ॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतारोंमें उन्होंने यदुवंशमें बलराम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट होकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २३ ॥ उसके बाद कलियुग आ जानेपर मगधदेश (बिहार) में देवताओंके द्वेषी दैत्योंको मोहित करनेके लिये अजनके पुत्ररूपमें आपका बुद्धावतार होगा ॥ २४ ॥ इसके भी बहुत पीछे जब कलियुगका अन्त समीप होगा और राजालोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब जगत्के रक्षक भगवान् विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे * ॥ २५ ॥

शौनकादि ऋषियो ! जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान्के ही अंश हैं ॥ २७ ॥ ये सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) ही हैं। जब लोग दैत्योंके अत्याचारसे व्याकुल हो उठते हैं, तब युग-युगमें अनेक रूप धारण करके भगवान् उनकी रक्षा करते हैं ॥ २८ ॥ भगवान्के दिव्य जन्मोंकी यह कथा अत्यन्त

---

१. प्रा० पा०—जिनसुतः ।

* यहाँ बाईस अवतारोंकी गणना की गयी है, परन्तु भगवान्के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। कुछ विद्वान् चौबीसकी संख्या यों पूर्ण करते हैं—राम-कृष्णके अतिरिक्त बीस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही, शेष चार अवतार श्रीकृष्णके ही अंश हैं। स्वयं श्रीकृष्ण तो पूर्ण परमेश्वर हैं; वे अवतार नहीं, अवतारी हैं। अतः श्रीकृष्णको अवतारोंकी गणनामें नहीं गिनते। उनके चार अंश ये हैं—एक तो केशका अवतार, दूसरा सुतपा तथा पृश्निपर कृपा करनेवाला अवतार, तीसरा संकर्षण-बलराम और चौथा परब्रह्म। इस प्रकार इन चार अवतारोंसे विशिष्ट पाँचवें साक्षात् भगवान् वासुदेव हैं। दूसरे विद्वान् ऐसा मानते हैं कि बाईस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही; इनके अतिरिक्त दो और हैं—हंस और हयग्रीव।

एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ।
मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३०

यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ।
एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ।
वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं
यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे[१] ।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं
न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९

गोपनीय—रहस्यमयी है; जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक सायङ्काल और प्रातःकाल प्रेमसे इसका पाठ करता है, वह सब दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २९ ॥

प्राकृत स्वरूपरहित चिन्मय भगवान्‌का जो यह स्थूल जगदाकार रूप है, यह उनकी मायाके महत्तत्त्वादि गुणोंसे भगवान्‌में ही कल्पित है ॥ ३० ॥ जैसे बादल वायुके आश्रय रहते हैं और धूसरपना धूलमें होता है, परन्तु अल्पबुद्धि मनुष्य बादलोंका आकाशमें और धूसरपनेका वायुमें आरोप करते हैं—वैसे ही अविवेकी पुरुष सबके साक्षी आत्मामें स्थूल दृश्यरूप जगत्‌का आरोप करते हैं ॥ ३१ ॥ इस स्थूलरूपसे परे भगवान्‌का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है—जो न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है और न देखने, सुननेमें ही आ सकता है; वही सूक्ष्मशरीर है। आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही जीव कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है ॥ ३२ ॥ उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं। जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उसी समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥ ३३ ॥ तत्त्वज्ञानी लोग जानते हैं कि जिस समय यह बुद्धिरूपा परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है और अपनी स्वरूप-महिमामें प्रतिष्ठित होता है ॥ ३४ ॥ वास्तवमें जिनके जन्म नहीं हैं और कर्म भी नहीं हैं, उन हृदयेश्वर भगवान्‌के अप्राकृत जन्म और कर्मोंका तत्त्वज्ञानी लोग इसी प्रकार वर्णन करते हैं; क्योंकि उनके जन्म और कर्म वेदोंके अत्यन्त गोपनीय रहस्य हैं ॥ ३५ ॥

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं, वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते ॥३६ ॥ जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता ॥३७ ॥ चक्रपाणि भगवान्‌की शक्ति और पराक्रम अनन्त है—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्‌के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपट भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवाभावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है ॥ ३८ ॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोग बड़े ही सौभाग्यशाली तथा धन्य हैं जो इस जीवनमें और

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः॥ ४०

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।
तदिदं[1] ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम्॥ ४१

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम्॥ ४२

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः।
कृष्णे[2] स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह॥ ४३

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः॥ ४४

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात्।
सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति॥ ४५

विघ्न-बाधाओंसे भरे इस संसारमें समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे वह सर्वात्मक आत्मभाव, वह अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम करते हैं, जिससे फिर इस जन्म-मरणरूप संसारके भयंकर चक्रमें नहीं पड़ना होता॥ ३९॥

भगवान् वेदव्यासने यह वेदोंके समान भगवच्चरित्रसे परिपूर्ण भागवत नामका पुराण बनाया है॥ ४०॥ उन्होंने इस श्लाघनीय, कल्याणकारी और महान् पुराणको लोगोंके परम कल्याणके लिये अपने आत्मज्ञानिशिरोमणि पुत्रको ग्रहण कराया॥ ४१॥ इसमें सारे वेद और इतिहासोंका सार-सार संग्रह किया गया है। शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को यह सुनाया॥ ४२॥ उस समय वे परमर्षियोंसे घिरे हुए आमरण अनशनका व्रत लेकर गङ्गातटपर बैठे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण जब धर्म, ज्ञान आदिके साथ अपने परमधामको पधार गये, तब इस कलियुगमें जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हो रहे हैं, उनके लिये यह पुराणरूपी सूर्य इस समय प्रकट हुआ है। शौनकादि ऋषियो! जब महातेजस्वी श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ इस पुराणकी कथा कह रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था। वहीं मैंने उनकी कृपापूर्ण अनुमतिसे इसका अध्ययन किया। मेरा जैसा अध्ययन है और मेरी बुद्धिने जितना जिस प्रकार इसको ग्रहण किया है, उसीके अनुसार इसे मैं आपलोगोंको सुनाऊँगा॥ ४३—४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे[3]
नैमिषीयोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

महर्षि व्यासका असन्तोष

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत्॥ १

व्यासजी कहते हैं—उस दीर्घकालीन सत्रमें सम्मिलित हुए मुनियोंमें विद्यावयोवृद्ध कुलपति ऋग्वेदी शौनकजीने सूतजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर उनकी प्रशंसा की और कहा॥ १॥

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर।
कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः॥ २

शौनकजी बोले—सूतजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े भाग्यशाली हैं, जो कथा भगवान् श्रीशुकदेवजीने कही थी, वही भगवान्‌की पुण्यमयी कथा कृपा करके आप हमें सुनाइये॥ २॥

कस्मिन् युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ।
कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः ॥ ३

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं [१]
देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥ ५

कथमालक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ।
उन्मत्तमूकजडवद्विचरन् गजसाह्वये ॥ ६

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ।
संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ।
तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ।
प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥ १०

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः
शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।
कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां
युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं
मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२

तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ।
मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥ १३

वह कथा किस युगमें, किस स्थानपर और किस कारणसे हुई थी ? मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायनने किसकी प्रेरणासे इस परमहंसोंकी संहिताका निर्माण किया था ? ॥ ३ ॥ उनके पुत्र शुकदेवजी बड़े योगी, समदर्शी, भेदभावरहित, संसार-निद्रासे जगे एवं निरन्तर एकमात्र परमात्मामें ही स्थिर रहते हैं। वे छिपे रहनेके कारण मूढ़-से प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥ व्यासजी जब संन्यासके लिये वनकी ओर जाते हुए अपने पुत्रका पीछा कर रहे थे, उस समय जलमें स्नान करनेवाली स्त्रियोंने नंगे शुकदेवको देखकर तो वस्त्र धारण नहीं किया, परंतु वस्त्र पहने हुए व्यासजीको देखकर लज्जासे कपड़े पहन लिये थे। इस आश्चर्यको देखकर जब व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपकी दृष्टिमें तो अभी स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है, परंतु आपके पुत्रकी शुद्ध दृष्टिमें यह भेद नहीं है' ॥ ५ ॥ कुरुजाङ्गल देशमें पहुँचकर हस्तिनापुरमें वे पागल, गूँगे तथा जडके समान विचरते होंगे। नगरवासियोंने उन्हें कैसे पहचाना ? ॥ ६ ॥ पाण्डवनन्दन राजर्षि परीक्षित्का इन मौनी शुकदेवजीके साथ संवाद कैसे हुआ, जिसमें यह भागवतसंहिता कही गयी ? ॥ ७ ॥ महाभाग श्रीशुकदेवजी तो गृहस्थोंके घरोंको तीर्थस्वरूप बना देनेके लिये उतनी ही देर उनके दरवाजेपर रहते हैं, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है ॥ ८ ॥ सूतजी ! हमने सुना है कि अभिमन्युनन्दन परीक्षित् भगवान्के बड़े प्रेमी भक्त थे। उनके अत्यन्त आश्चर्यमय जन्म और कर्मोंका भी वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ वे तो पाण्डववंशके गौरव बढ़ानेवाले सम्राट् थे। वे भला, किस कारणसे साम्राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके गङ्गातटपर मृत्युपर्यन्त अनशनका व्रत लेकर बैठे थे ? ॥ १० ॥ शत्रुगण अपने भलेके लिये बहुत-सा धन लाकर उनके चरण रखनेकी चौकीको नमस्कार करते थे। वे एक वीर युवक थे। उन्होंने उस दुस्त्यज लक्ष्मीको, अपने प्राणोंके साथ भला, क्यों त्याग देनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ जिन लोगोंका जीवन भगवान्के आश्रित है, वे तो संसारके परम कल्याण, अभ्युदय और समृद्धिके लिये ही जीवन धारण करते हैं। उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनका शरीर तो दूसरोंके हितके लिये था, उन्होंने विरक्त होकर उसका परित्याग क्यों किया ॥ १२ ॥ वेदवाणीको छोड़कर अन्य समस्त शास्त्रोंके आप पारदर्शी विद्वान् हैं। सूतजी ! इसलिये इस समय जो कुछ हमने आपसे पूछा है, वह सब कृपा करके हमें कहिये ॥ १३ ॥

सूत उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४

स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ।
विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५

परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ।
युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६

भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ।
अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥ १७

दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ।
सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥ २०

तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ।
वैशम्पायन एवैको[1] निष्णातो यजुषामुत ॥ २१

अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ।
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३

त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ।
एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५

सूतजीने कहा—इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसु-कन्या सत्यवतीके गर्भसे भगवान्‌के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ ॥ १४ ॥ एक दिन वे सूर्योदयके समय सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नानादि करके एकान्त पवित्र स्थानपर बैठे हुए थे ॥ १५ ॥ महर्षि भूत और भविष्यको जानते थे। उनकी दृष्टि अचूक थी। उन्होंने देखा कि जिसको लोग जान नहीं पाते, ऐसे समयके फेरसे प्रत्येक युगमें धर्मसङ्करता और उसके प्रभावसे भौतिक वस्तुओंकी भी शक्तिका ह्रास होता रहता है। संसारके लोग श्रद्धाहीन और शक्तिरहित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाती और आयु भी कम हो जाती है। लोगोंकी इस भाग्यहीनताको देखकर उन मुनीश्वरने अपनी दिव्यदृष्टिसे समस्त वर्णों और आश्रमोंका हित कैसे हो, इसपर विचार किया ॥ १६-१८ ॥ उन्होंने सोचा कि वेदोक्त चातुर्होत्र * कर्म लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला है। इस दृष्टिसे यज्ञोंका विस्तार करनेके लिये उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर दिये ॥ १९ ॥ व्यासजीके द्वारा ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन चार वेदोंका उद्धार (पृथक्करण) हुआ। इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा जाता है ॥ २० ॥ उनमेंसे ऋग्वेदके पैल, साम-गानके विद्वान् जैमिनि एवं यजुर्वेदके एकमात्र स्नातक वैशम्पायन हुए ॥ २१ ॥ अथर्ववेदमें प्रवीण हुए दरुणनन्दन सुमन्तु मुनि। इतिहास और पुराणोंके स्नातक मेरे पिता रोमहर्षण थे ॥ २२ ॥ इन पूर्वोक्त ऋषियोंने अपनी-अपनी शाखाको और भी अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार शिष्य, प्रशिष्य और उनके शिष्योंद्वारा वेदोंकी बहुत-सी शाखाएँ बन गयीं ॥ २३ ॥ कम समझवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान् वेदव्यासने इसलिये ऐसा विभाग कर दिया कि जिन लोगोंको स्मरणशक्ति नहीं है या कम है, वे भी वेदोंको धारण कर सकें ॥ २४ ॥

स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति—तीनों ही वेद-श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इसलिये वे कल्याणकारी शास्त्रोक्त कर्मोंके आचरणमें भूल कर बैठते हैं। अब इसके द्वारा उनका भी कल्याण हो जाय, यह सोचकर महामुनि व्यासजीने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहासकी रचना की ॥ २५ ॥

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।
सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६

नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ।
वितर्कयन् विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २८

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ २९

तथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३०

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ।
पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३

शौनकादि ऋषियो ! यद्यपि व्यासजी इस प्रकार अपनी पूरी शक्तिसे सदा-सर्वदा प्राणियोंके कल्याणमें ही लगे रहे, तथापि उनके हृदयको सन्तोष नहीं हुआ ॥ २६ ॥ उनका मन कुछ खिन्न-सा हो गया । सरस्वती नदीके पवित्र तटपर एकान्तमें बैठकर धर्मवेत्ता व्यासजी मन-ही-मन विचार करते हुए इस प्रकार कहने लगे— ॥ २७ ॥ 'मैंने निष्कपट भावसे ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए वेद, गुरुजन और अग्नियोंका सम्मान किया है और उनकी आज्ञाका पालन किया है ॥ २८ ॥ महाभारतकी रचनाके बहाने मैंने वेदके अर्थको खोल दिया है—जिससे स्त्री, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि मैं ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है ॥ ३० ॥ अवश्य ही अबतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया है । वे ही धर्म परमहंसोंको प्रिय हैं और वे ही भगवान्‌को भी प्रिय हैं (हो-न-हो मेरी अपूर्णताका यही कारण है)' ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास इस प्रकार अपनेको अपूर्ण-सा मानकर जब खिन्न हो रहे थे, उसी समय पूर्वोक्त आश्रमपर देवर्षि नारदजी आ पहुँचे ॥ ३२ ॥ उन्हें आया देख व्यासजी तुरन्त खड़े हो गये । उन्होंने देवताओंके द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः[१] ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान्‌के यश-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ।
देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २
जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्भुतम् ।
कृतवान् भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए वीणापाणि परम यशस्वी देवर्षि नारदने मुसकराकर अपने पास ही बैठे ब्रह्मर्षि व्यासजीसे कहा ॥ १ ॥

नारदजीने प्रश्न किया—महाभाग व्यासजी ! आपके शरीर एवं मन—दोनों ही अपने कर्म एवं चिन्तनसे सन्तुष्ट हैं न ? ॥ २ ॥ अवश्य ही आपकी जिज्ञासा तो भलीभाँति पूर्ण हो गयी है; क्योंकि आपने जो यह महाभारतकी रचना की है, वह बड़ी ही अद्भुत है । वह धर्म

जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम्।
अथापि[१] शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४

व्यास उवाच

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं
तथापि नात्मा परितुष्यते मे।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं
पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५

स वै भवान् वेद समस्तगुह्य-
मुपासितो यत्पुरुषः पुराणः।
परावरेशो मनसैव विश्वं
सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥ ६

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी-
मन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः
स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥ ७

श्रीनारद उवाच

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥ ८

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ १०

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११

आदि सभी पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण है ॥ ३ ॥ सनातन ब्रह्मतत्त्वको भी आपने खूब विचारा है और जान भी लिया है। फिर भी प्रभु ! आप अकृतार्थ पुरुषके समान अपने विषयमें शोक क्यों कर रहे हैं ? ॥ ४ ॥

व्यासजीने कहा—आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है। वैसा होनेपर भी मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। पता नहीं, इसका क्या कारण है। आपका ज्ञान अगाध है। आप साक्षात् ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। इसलिये मैं आपसे ही इसका कारण पूछता हूँ ॥ ५ ॥ नारदजी ! आप समस्त गोपनीय रहस्योंको जानते हैं; क्योंकि आपने उन पुराणपुरुषकी उपासना की है, जो प्रकृति-पुरुष दोनोंके स्वामी हैं और असङ्ग रहते हुए ही अपने सङ्कल्पमात्रसे गुणोंके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं ॥ ६ ॥ आप सूर्यकी भाँति तीनों लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं और योगबलसे प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तःकरणोंके साक्षी भी हैं। योगानुष्ठान और नियमोंके द्वारा परब्रह्म और शब्दब्रह्म दोनोंकी पूर्ण प्राप्ति कर लेनेपर भी मुझमें जो बड़ी कमी है, उसे आप कृपा करके बतलाइये ॥ ७ ॥

नारदजीने कहा—व्यासजी ! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है ॥ ८ ॥ आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वैसा निरूपण नहीं किया ॥ ९ ॥ जिस वाणीसे—चाहे वह रस-भाव-अलङ्कारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है। मानसरोवरके कमनीय कमलवनमें विहरनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते ॥ १० ॥ इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान्‌के सुयशसूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं ॥ ११ ॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥ १२

अथो महाभाग भवानमोघदृक्
शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्॥ १३

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम्॥ १४

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः॥ १५

विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभो-
रनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम्।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मन-
स्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः॥ १६

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥ १७

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥ १८

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजे-
न्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुन-
र्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः॥ १९

वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्‌की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमङ्गलरूप है, वह काम्य कर्म, और जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अहैतुक (निष्काम) कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है॥ १२॥ महाभाग व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है। आपकी कीर्ति पवित्र है। आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत हैं। इसलिये अब आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधिके द्वारा अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कीजिये॥ १३॥ जो मनुष्य भगवान्‌की लीलाके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छासे ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्करमें पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेदभावसे भर जाती है। जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगीको कहीं भी ठहरनेका ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चञ्चल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती॥ १४॥ संसारी लोग स्वभावसे ही विषयोंमें फँसे हुए हैं। धर्मके नामपर आपने उन्हें निन्दित (पशुहिंसायुक्त) सकाम कर्म करनेकी भी आज्ञा दे दी है। यह बहुत ही उलटी बात हुई; क्योंकि मूर्खलोग आपके वचनोंसे पूर्वोक्त निन्दित कर्मको ही धर्म मानकर—'यही मुख्य धर्म है' ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करनेवाले वचनोंको ठीक नहीं मानते॥ १५॥ भगवान् अनन्त हैं। कोई विचारवान् ज्ञानी पुरुष ही संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमानन्दका अनुभव कर सकता है। अतः जो लोग पारमार्थिक बुद्धिसे रहित हैं और गुणोंके द्वारा नचाये जा रहे हैं, उनके कल्याणके लिये ही आप भगवान्‌की लीलाओंका सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे वर्णन कीजिये॥ १६॥ जो मनुष्य अपने धर्मका परित्याग करके भगवान्‌के चरण-कमलोंका भजन-सेवन करता है—भजन परिपक्व हो जानेपर तो बात ही क्या है—यदि इससे पूर्व ही उसका भजन छूट जाय तो क्या कहीं भी उसका कोई अमङ्गल हो सकता है? परन्तु जो भगवान्‌का भजन नहीं करते और केवल स्वधर्मका पालन करते हैं, उन्हें कौन-सा लाभ मिलता है॥ १७॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तिनकेसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त ऊँची-नीची योनियोंमें कर्मोंके फलस्वरूप आने-जानेपर भी स्वयं प्राप्त नहीं होती। संसारके विषयसुख तो, जैसे बिना चेष्टाके दुःख मिलते हैं वैसे ही, कर्मके फलरूपमें अचिन्त्यगति समयके फेरसे सबको सर्वत्र स्वभावसे ही मिल जाते हैं॥ १८॥ व्यासजी! जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका सेवक है वह भजन न करनेवाले कर्मी मनुष्योंके समान दैवात् कभी बुरा भाव हो जानेपर भी जन्म-मृत्युमय संसारमें नहीं आता। वह भगवान्‌के

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै[१]
प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २०

त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक्
परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय त-
न्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥ २१

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः[२] ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्[३] ॥ २२

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने[४]
दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां
शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके
दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः
शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः
सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस-
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायता-
मनुग्रहीणाश्रृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः
प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः[५] ॥ २६

चरणकमलोंके आलिङ्गनका स्मरण करके फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता; उसे रसका चसका जो लग चुका है ॥ १९ ॥ जिनसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, वे भगवान् ही इस विश्वके रूपमें भी हैं। ऐसा होनेपर भी वे इससे विलक्षण हैं। इस बातको आप स्वयं जानते हैं, तथापि मैंने आपको संकेतमात्र कर दिया है ॥ २० ॥ व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है; आप इस बातको जानिये कि आप पुरुषोत्तमभगवान्के कलावतार हैं। आपने अजन्मा होकर भी जगत्के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया है। इसलिये आप विशेषरूपसे भगवान्की लीलाओंका कीर्तन कीजिये ॥ २१ ॥ विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय ॥ २२ ॥

मुने ! पिछले कल्पमें अपने पूर्वजीवनमें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका लड़का था। वे योगी वर्षा-ऋतुमें एक स्थानपर चातुर्मास्य कर रहे थे। बचपनमें ही मैं उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया था ॥ २३ ॥ मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूदसे दूर रहता था और आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था। मैं बोलता भी बहुत कम था। मेरे इस शील-स्वभावको देखकर समदर्शी मुनियोंने मुझ सेवकपर अत्यन्त अनुग्रह किया ॥ २४ ॥ उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी ॥ २५ ॥ प्यारे व्यासजी ! उस सत्सङ्गमें उन लीलागानपरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता। श्रद्धापूर्वक एक-एक पद श्रवण करते-करते प्रियकीर्ति भगवान्में मेरी रुचि हो गयी ॥ २६ ॥

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने[1]
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
र्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभि-
र्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा[2] ॥ २८

तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ।
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥ २९
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ।
अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३०

येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ।
मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ३१
एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३
एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ।
ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५
कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयासकृत् ।
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥ ३६

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ ३७
इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ।
यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८

महामुने ! जब भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी, तब उन मनोहरकीर्ति प्रभुमें मेरी बुद्धि भी निश्चल हो गयी । उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्-रूप जगत्‌को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार शरद् और वर्षा—इन दो ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशका सङ्कीर्तन किया और मैं प्रेमसे प्रत्येक बात सुनता रहा । अब चित्तके रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया ॥ २८ ॥ मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था; उन लोगोंकी सेवासे मेरे पाप नष्ट हो चुके थे । मेरे हृदयमें श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें संयम था एवं शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आज्ञाकारी था ॥ २९ ॥ उन दीनवत्सल महात्माओंने जाते समय कृपा करके मुझे उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, जिसका उपदेश स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे किया है ॥ ३० ॥ उस उपदेशसे ही जगत्‌के निर्माता भगवान् श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावको मैं जान सका, जिसके जान लेनेपर उनके परमपदकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३१ ॥

सत्यसंकल्प व्यासजी ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना ही संसारके तीनों तापोंकी एकमात्र ओषधि है, यह बात मैंने आपको बतला दी ॥ ३२ ॥ प्राणियोंको जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्साविधिके अनुसार प्रयोग करनेपर क्या उस रोगको दूर नहीं करता ?॥ ३३ ॥ इसी प्रकार यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं, तथापि जब वे भगवान्‌को समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस लोकमें जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ उस भगवदर्थ कर्मके मार्गमें भगवान्‌के आज्ञानुसार आचरण करते हुए लोग बार-बार भगवान् श्रीकृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं ॥ ३६ ॥ 'प्रभो ! आप भगवान् श्रीवासुदेवको नमस्कार है । हम आपका ध्यान करते हैं । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणको भी नमस्कार है' ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहरूपी भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृत-मूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है ॥ ३८ ॥

इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम्।
अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ॥ ३९

ब्रह्मन्! जब मैंने भगवान्‌की आज्ञाका इस प्रकार पालन किया, तब इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भावरूपा प्रेमाभक्तिका दान किया ॥ ३९ ॥

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥ ४०

व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है और कोई उपाय नहीं है ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग

सूत उवाच

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! देवर्षि नारदके जन्म और साधनाकी बात सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान् श्रीव्यासजीने उनसे फिर यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

व्यास उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव।
वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २

स्वायम्भुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः।
कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३

प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम।
न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४

श्रीव्यासजीने पूछा—नारदजी! जब आपको ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण चले गये, तब आपने क्या किया? उस समय तो आपकी अवस्था बहुत छोटी थी ॥ २ ॥ स्वायम्भुव! आपकी शेष आयु किस प्रकार व्यतीत हुई और मृत्युके समय आपने किस विधिसे अपने शरीरका परित्याग किया? ॥ ३ ॥ देवर्षे! काल तो सभी वस्तुओंको नष्ट कर देता है, उसने आपकी इस पूर्वकल्पकी स्मृतिका कैसे नाश नहीं किया? ॥ ४ ॥

नारद उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम।
वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम्[1] ॥ ५

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी।
मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥ ६

सस्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती।
ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७

श्रीनारदजीने कहा—मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण जब चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया—यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बहुत छोटी थी ॥ ५ ॥ मैं अपनी माँका इकलौता लड़का था। एक तो वह स्त्री थी, दूसरे मूढ़ और तीसरे दासी थी। मुझे भी उसके सिवा और कोई सहारा नहीं था। उसने अपनेको मेरे स्नेहपाशसे जकड़ रखा था ॥ ६ ॥ वह मेरे योगक्षेमकी चिन्ता तो बहुत करती थी, परंतु पराधीन होनेके कारण कुछ कर नहीं पाती थी। जैसे कठपुतली नचानेवालेकी इच्छाके अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है ॥ ७ ॥

अहं च तद्ब्रह्मकुले ऊषिवांस्तदपेक्षया ।
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥ ८
एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥ ९

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥ १०

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ।
खेटखर्वटवाटीश्च[1] वनान्युपवनानि च ॥ ११

चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ।
जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ १२

चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ।
न[2]लवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम्[3] ॥ १३

एक एवातियातोऽहमद्राक्षं[4] विपिनं महत् ।
घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥ १४

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ।
स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः[5] ।
आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं[6] यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १६

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य ह्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ।
अपश्यन्[7] सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९

मैं भी अपनी माँके स्नेहबन्धनमें बँधकर उस ब्राह्मण-बस्तीमें ही रहा । मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी; मुझे दिशा, देश और कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥ ८ ॥ एक दिनकी बात है, मेरी माँ गौ दुहनेके लिये रातके समय घरसे बाहर निकली । रास्तेमें उसके पैरसे साँप छू गया, उसने उस बेचारीको डस लिया । उस साँपका क्या दोष, कालकी ऐसी ही प्रेरणा थी ॥ ९ ॥ मैंने समझा, भक्तोंका मङ्गल चाहनेवाले भगवान्‌का यह भी एक अनुग्रह ही है । इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा ॥ १० ॥

उस ओर मार्गमें मुझे अनेकों धन-धान्यसे सम्पन्न देश, नगर, गाँव, अहीरोंकी चलती-फिरती बस्तियाँ, खानें, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तटवर्ती पड़ाव, वाटिकाएँ, वन-उपवन और रंग-बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े । कहीं-कहीं जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हाथियोंने तोड़ डाली थीं । शीतल जलसे भरे हुए जलाशय थे, जिनमें देवताओंके काममें आनेवाले कमल थे; उनपर पक्षी तरह-तरहकी बोली बोल रहे थे और भौंरे मँडरा रहे थे । यह सब देखता हुआ मैं आगे बढ़ा । मैं अकेला ही था । इतना लम्बा मार्ग तै करनेपर मैंने एक घोर गहन जंगल देखा । उसमें नरकट, बाँस, सेंठा, कुश, कीचक आदि खड़े थे । उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी बहुत थी और वह साँप, उल्लू, स्यार आदि भयंकर जीवोंका घर हो रहा था । देखनेमें बड़ा भयावना लगता था ॥ ११—१४ ॥ चलते-चलते मेरा शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं । मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही । वहाँ एक नदी मिली । उसके कुण्डमें मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया । इससे मेरी थकावट मिट गयी ॥ १५ ॥ उस विजन वनमें एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया । उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवत्प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंमें आँसू छलछला आये और हृदयमें धीरे-धीरे भगवान् प्रकट हो गये ॥ १७ ॥ व्यासजी ! उस समय प्रेमभावके अत्यन्त उद्रेकसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा । हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया । उस आनन्दकी बाढ़में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तुका तनिक भी भान न रहा ॥ १८ ॥ भगवान्‌का वह अनिर्वचनीय रूप समस्त शोकोंका नाश करनेवाला और मनके

---

१. प्रा० पा०—खेटान् । २. प्रा० पा०—रत्नरेणु० । ३. प्रा० पा०—कीचकमस्करि । ४. प्रा० पा०—एवाभि० । ५. प्रा० पा०—आश्रितः । ६. प्रा० पा०—आत्मनाऽऽत्मस्थमात्मानं । ७. प्राचीन प्रतिमें 'अपश्यन् सहसोत्तस्थे····' से लेकर'····दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्' यहाँतक साढ़े तीन श्लोक नहीं है ।

दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ।
वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २०

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ।
गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१

हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति ।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२

सकृद् यद् दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ।
मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥ २३

सत्सेवया दीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ।
हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥ २४

मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ।
प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५

एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्
भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।
अहं च तस्मै महतां महीयसे
शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥ २६

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्
गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः
कालं प्रतीक्षन् विमदो[1] विमत्सरः ॥ २७

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ।
कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी[2] यथा ॥ २८
प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ॥ २९

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ।
शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥ ३०

लिये अत्यन्त लुभावना था। सहसा उसे न देख मैं बहुत ही विकल हो गया और अनमना-सा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ ॥ १९ ॥

मैंने उस स्वरूपका दर्शन फिर करना चाहा; किन्तु मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका। मैं अतृप्तके समान आतुर हो उठा ॥ २० ॥ इस प्रकार निर्जन वनमें मुझे प्रयत्न करते देख स्वयं भगवान्‌ने, जो वाणीके विषय नहीं हैं, बड़ी गंभीर और मधुर वाणीसे मेरे शोकको शान्त करते हुए-से कहा ॥ २१ ॥ 'खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २२ ॥ निष्पाप बालक ! तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है ॥ २३ ॥ अल्पकालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस प्राकृतमलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे ॥ २४ ॥ मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी' ॥ २५ ॥ आकाशके समान अव्यक्त सर्वशक्तिमान् महान् परमात्मा इतना कहकर चुप हो रहे। उनकी इस कृपाका अनुभव करके मैंने उन श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठतर भगवान्‌को सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तभीसे मैं लज्जा-संकोच छोड़कर भगवान्‌के अत्यन्त रहस्यमय और मङ्गलमय मधुर नामों और लीलाओंका कीर्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २७ ॥

व्यासजी ! इस प्रकार भगवान्‌की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया, आसक्ति मिट गयी और मैं श्रीकृष्णपरायण हो गया। कुछ समय बाद, जैसे एकाएक बिजली कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु आ गयी ॥ २८ ॥ मुझे शुद्ध भगवत्पार्षद-शरीर प्राप्त होनेका अवसर आनेपर प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया ॥ २९ ॥ कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलयकालीन समुद्र) के जलमें शयन

सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ।
मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ।
अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः[१] क्वचित् ॥ ३२

देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४

एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति ॥ ३६

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥ ३७

सूत उवाच

एवं सम्भाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ।
आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं[२] शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९

करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया ॥ ३० ॥ एक सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया ॥ ३१ ॥ तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका व्रत भगवद्भजन अखण्डरूपसे चलता रहता है ॥ ३२ ॥ भगवान्‌की दी हुई इस स्वरब्रह्मसे * विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ ॥ ३३ ॥ जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं ॥ ३४ ॥ जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषय-भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन संसार-सागरसे पार जानेका जहाज है, यह मेरा अपना अनुभव है ॥ ३५ ॥ काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्णसेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम-नियम आदि योग-मार्गोंसे वैसी शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ३६ ॥ व्यासजी ! आप निष्पाप हैं । आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनाका रहस्य तथा आपकी आत्मतुष्टिका उपाय मैंने बतला दिया ॥ ३७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! देवर्षि नारदने व्यासजीसे इस प्रकार कहकर जानेकी अनुमति ली और वीणा बजाते हुए स्वच्छन्द विचरण करनेके लिये वे चल पड़े ॥ ३८ ॥ अहा ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मानमर्दन

शौनक उवाच

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः ।
श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥ १

श्रीशौनकजीने पूछा—सूतजी ! सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् व्यासभगवान्‌ने नारदजीका अभिप्राय सुन लिया । फिर उनके चले जानेपर उन्होंने क्या किया ? ॥ १ ॥

सूत उवाच

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥ २

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीषण्डमण्डिते ।
आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ।
अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥ ४

यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥ ७

स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम् ।
शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८

श्रीसूतजीने कहा—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम तटपर शम्याप्रास नामका एक आश्रम है । वहाँ ऋषियोंके यज्ञ चलते ही रहते हैं ॥ २ ॥ वहीं व्यासजीका अपना आश्रम है । उसके चारों ओर बेरका सुन्दर वन है । उस आश्रममें बैठकर उन्होंने आचमन किया और स्वयं अपने मनको समाहित किया ॥ ३ ॥ उन्होंने भक्तियोगके द्वारा अपने मनको पूर्णतया एकाग्र और निर्मल करके आदिपुरुष परमात्मा और उनके आश्रयसे रहनेवाली मायाको देखा ॥ ४ ॥ इसी मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है ॥ ५ ॥ इन अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—केवल भगवान्‌का भक्तियोग । परन्तु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते । यही समझकर उन्होंने इस परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की ॥ ६ ॥ इसके श्रवणमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीवके शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने इस भागवत-संहिताका निर्माण और पुनरावृत्ति करके इसे अपने निवृत्तिपरायण पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया ॥ ८ ॥

शौनक उवाच

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ।
कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥ ९

श्रीशौनकजीने पूछा—श्रीशुकदेवजी तो अत्यन्त निवृत्तिपरायण हैं, उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है । वे सदा आत्मामें ही रमण करते हैं । फिर उन्होंने किसलिये इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ? ॥ ९ ॥

सूत उवाच

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥ १०

श्रीसूतजीने कहा—जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं ॥ १० ॥

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥ ११

परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥ १२

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श-
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३

भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्
कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।
उपाहरद् विप्रियमेव तस्य
जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥ १४

माता शिशूनां[1] निधनं सुतानां
निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी
तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥ १५

तदा शुचस्ते प्रमृजामि[2] भद्रे
यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे
त्वाऽऽक्रम्य[3] यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः
स सान्त्वयित्वाच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्हंशित उग्रधन्वा
कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७

तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्
कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।

फिर श्रीशुकदेवजी तो भगवान्‌के भक्तोंके अत्यन्त प्रिय और स्वयं भगवान् वेदव्यासके पुत्र हैं। भगवान्‌के गुणोंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने उससे विवश होकर ही इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ॥ ११ ॥

शौनकजी ! अब मैं राजर्षि परीक्षित्‌के जन्म, कर्म और मोक्षकी तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ; क्योंकि इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों कथाओंका उदय होता है ॥ १२ ॥ जिस समय महाभारत-युद्धमें कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंके बहुत-से वीर वीरगतिको प्राप्त हो चुके थे और भीमसेनकी गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघ टूट चुकी थी, तब अश्वत्थामाने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंके सिर काटकर उसे भेंट किये, यह घटना दुर्योधनको भी अप्रिय ही लगी; क्योंकि ऐसे नीच कर्मकी सभी निन्दा करते हैं ॥ १३-१४ ॥ उन बालकोंकी माता द्रौपदी अपने पुत्रोंका निधन सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आये—वह रोने लगी। अर्जुनने उसे सान्त्वना देते हुए कहा ॥ १५ ॥ 'कल्याणि ! मैं तुम्हारे आँसू तब पोछूँगा, जब उस आततायी * ब्राह्मणाधमका सिर गाण्डीव-धनुषके बाणोंसे काटकर तुम्हें भेंट करूँगा और पुत्रोंकी अन्त्येष्टि क्रियाके बाद तुम उसपर पैर रखकर स्नान करोगी' ॥ १६ ॥ अर्जुनने इन मीठी और विचित्र बातोंसे द्रौपदीको सान्त्वना दी और अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर कवच धारणकर और अपने भयानक गाण्डीव धनुषको लेकर वे रथपर सवार हुए तथा गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े ॥ १७ ॥ बच्चोंकी हत्यासे अश्वत्थामाका भी मन उद्विग्न हो गया था। जब उसने दूरसे ही देखा कि अर्जुन मेरी ओर झपटे हुए आ रहे हैं,

परावद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां
यावद्रथं रुद्रभयाद्यथार्कः ॥ १८

यदाशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९

अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ।
अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २०

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ।
प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१

अर्जुन[1] उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो[2] भक्तानामभयंकर ।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥ २३

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ।
विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २४

तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ।
स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय[3] चासकृत् ॥ २५

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६

श्रीभगवानुवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ।
नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥ २७

न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।
जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥ २८

सूत उवाच

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ।
स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९

तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर जहाँतक भाग सकता था, रुद्रसे भयभीत सूर्यकी * भाँति भागता रहा ॥ १८ ॥ जब उसने देखा कि मेरे रथके घोड़े थक गये हैं और मैं बिलकुल अकेला हूँ, तब उसने अपनेको बचानेका एकमात्र साधन ब्रह्मास्त्र ही समझा ॥ १९ ॥ यद्यपि उसे ब्रह्मास्त्रको लौटानेकी विधि मालूम न थी, फिर भी प्राणसङ्कट देखकर उसने आचमन किया और ध्यानस्थ होकर ब्रह्मास्त्रका सन्धान किया ॥ २० ॥ उस अस्त्रसे सब दिशाओंमें एक बड़ा प्रचण्ड तेज फैल गया । अर्जुनने देखा कि अब तो मेरे प्राणोंपर ही आ बनी है, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ॥ २१ ॥

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा हो । तुम्हारी शक्ति अनन्त है । तुम्हीं भक्तोंको अभय देनेवाले हो । जो संसारकी धधकती हुई आगमें जल रहे हैं, उन जीवोंको उससे उबारनेवाले एकमात्र तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ तुम प्रकृतिसे परे रहनेवाले आदिपुरुष साक्षात् परमेश्वर हो । अपनी चित्-शक्ति (स्वरूप-शक्ति) से बहिरङ्ग एवं त्रिगुणमयी मायाको दूर भगाकर अपने अद्वितीय स्वरूपमें स्थित हो ॥ २३ ॥ वही तुम अपने प्रभावसे माया-मोहित जीवोंके लिये धर्मादिरूप कल्याणका विधान करते हो ॥ २४ ॥ तुम्हारा यह अवतार पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये और तुम्हारे अनन्य प्रेमी भक्तजनोंके निरन्तर स्मरण-ध्यान करनेके लिये है ॥ २५ ॥ स्वयम्प्रकाशस्वरूप श्रीकृष्ण ! यह भयङ्कर तेज सब ओरसे मेरी ओर आ रहा है । यह क्या है, कहाँसे, क्यों आ रहा है—इसका मुझे बिलकुल पता नहीं है ! ॥ २६ ॥

भगवान्‌ने कहा—अर्जुन ! यह अश्वत्थामाका चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है । यह बात समझ लो कि प्राणसङ्कट उपस्थित होनेसे उसने इसका प्रयोग तो कर दिया है, परन्तु वह इस अस्त्रको लौटना नहीं जानता ॥ २७ ॥ किसी भी दूसरे अस्त्रमें इसको दबा देनेकी शक्ति नहीं है । तुम शस्त्रास्त्र-विद्याको भलीभाँति जानते ही हो, ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही इस ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड आगको बुझा दो ॥ २८ ॥

सूतजी कहते हैं—अर्जुन विपक्षी वीरोंको मारनेमें बड़े प्रवीण थे । भगवान्‌की बात सुनकर उन्होंने आचमन किया और भगवान्‌की परिक्रमा करके ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिये ब्रह्मास्त्रका ही सन्धान किया ॥ २९ ॥

संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ।
आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥ ३०

दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान् प्रदहन्महत् ।
दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ।
मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥ ३२

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ।
बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३

शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना[१] बद्ध्वा रिपुं बलात् ।
प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥ ३४

मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ।
योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ।
तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ।
आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८

तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबन्धुहा ।
भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥ ३९

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ।
नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥ ४०

अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ।
न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ॥ ४१

बाणोंसे वेष्टित उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंके तेज प्रलयकालीन सूर्य एवं अग्निके समान आपसमें टकराकर सारे आकाश और दिशाओंमें फैल गये और बढ़ने लगे ॥ ३० ॥ तीनों लोकोंको जलानेवाली उन दोनों अस्त्रोंकी बढ़ी हुई लपटोंसे प्रजा जलने लगी और उसे देखकर सबने यही समझा कि यह प्रलयकालकी सांवर्तक अग्नि है ॥ ३१ ॥ उस आगसे प्रजाका और लोकोंका नाश होते देखकर भगवान्‌की अनुमतिसे अर्जुनने उन दोनोंको ही लौटा लिया ॥ ३२ ॥ अर्जुनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने झपटकर उस क्रूर अश्वत्थामाको पकड़ लिया और जैसे कोई रस्सीसे पशुको बाँध ले, वैसे ही बाँध लिया ॥ ३३ ॥ अश्वत्थामाको बलपूर्वक बाँधकर अर्जुनने जब शिविरकी ओर ले जाना चाहा, तब उनसे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा— ॥ ३४ ॥ 'अर्जुन ! इस ब्राह्मणाधमको छोड़ना ठीक नहीं है, इसको तो मार ही डालो। इसने रातमें सोये हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है ॥ ३५ ॥ धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, बालक, स्त्री, विवेकज्ञानशून्य, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारते ॥ ३६ ॥ परन्तु जो दुष्ट और क्रूर पुरुष दूसरोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका तो वध ही उसके लिये कल्याणकारी है; क्योंकि वैसी आदतको लेकर यदि वह जीता है तो और भी पाप करता है और उन पापोंके कारण नरकगामी होता है ॥ ३७ ॥ फिर मेरे सामने ही तुमने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी कि 'मानवती ! जिसने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है, उसका सिर मैं उतार लाऊँगा' ॥ ३८ ॥ इस पापी कुलाङ्गार आततायीने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है और अपने स्वामी दुर्योधनको भी दुःख पहुँचाया है। इसलिये अर्जुन ! इसे मार ही डालो ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, परन्तु अर्जुनका हृदय महान् था। यद्यपि अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंकी हत्या की थी, फिर भी अर्जुनके मनमें गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं हुई ॥ ४० ॥

इसके बाद अपने मित्र और सारथि श्रीकृष्णके साथ वे अपने युद्ध-शिविरमें पहुँचे। वहाँ अपने मृत पुत्रोंके लिये शोक करती हुई द्रौपदीको उसे सौंप दिया ॥ ४१ ॥

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध-
मवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं
वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ।
मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥ ४३

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ।
अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ।
तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५

तद् धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ।
वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६

मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः ।
तत् कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम्[1] ॥ ४८

सूत उवाच

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ।
राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥ ४९

नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनञ्जयः ।
भगवान् देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५०

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः ।
न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून् वृथा[2] ॥ ५१

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ।
आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२

श्रीकृष्ण[3] उवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः[4] ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ ५३

द्रौपदी ने देखा कि अश्वत्थामा पशुकी तरह बाँधकर लाया गया है । निन्दित कर्म करनेके कारण उसका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है । अपना अनिष्ट करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदीका कोमल हृदय कृपासे भर आया और उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ गुरुपुत्रका इस प्रकार बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदीको सहन नहीं हुआ । उसने कहा—'छोड़ दो इन्हें, छोड़ दो । ये ब्राह्मण हैं, हमलोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं ॥ ४३ ॥ जिनकी कृपासे आपने रहस्यके साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहारके साथ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्रके रूपमें आपके सामने खड़े हैं । उनकी अर्धाङ्गिनी कृपी अपने वीर पुत्रकी ममतासे ही अपने पतिका अनुगमन नहीं कर सकीं, वे अभी जीवित हैं ॥ ४४-४५ ॥ महाभाग्यवान् आर्यपुत्र ! आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं । जिस गुरुवंशकी नित्य पूजा और वन्दना करनी चाहिये, उसीको व्यथा पहुँचाना आपके योग्य कार्य नहीं है ॥ ४६ ॥ जैसे अपने बच्चोंके मर जानेसे मैं दुःखी होकर रो रही हूँ और मेरी आँखोंसे बार-बार आँसू निकल रहे हैं, वैसे ही इनकी माता पतिव्रता गौतमी न रोयें ॥ ४७ ॥ जो उच्छृङ्खल राजा अपने कुकृत्योंसे ब्राह्मणकुलको कुपित कर देते हैं, वह कुपित ब्राह्मणकुल उन राजाओंको सपरिवार शोकाग्निमें डालकर शीघ्र ही भस्म कर देता है' ॥ ४८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायके अनुकूल थी । उसमें कपट नहीं था, करुणा और समता थी । अतएव राजा युधिष्ठिरने रानीके इन हितभरे श्रेष्ठ वचनोंका अभिनन्दन किया ॥ ४९ ॥ साथ ही नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँपर उपस्थित सभी नर-नारियोंने द्रौपदीकी बातका समर्थन किया ॥ ५० ॥ उस समय क्रोधित होकर भीमसेनने कहा, 'जिसने सोते हुए बच्चोंको न अपने लिये और न अपने स्वामीके लिये, बल्कि व्यर्थ ही मार डाला, उसका तो वध ही उत्तम है' ॥ ५१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदी और भीमसेनकी बात सुनकर और अर्जुनकी ओर देखकर कुछ हँसते हुए-से कहा ॥ ५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'पतित ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये और आततायीको मार ही डालना चाहिये'—शास्त्रोंमें मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं । इसलिये मेरी दोनों आज्ञाओंका पालन करो ॥ ५३ ॥

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ।
प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥ ५४

तुमने द्रौपदीको सान्त्वना देते समय जो प्रतिज्ञा की थी उसे भी सत्य करो; साथ ही भीमसेन, द्रौपदी और मुझे जो प्रिय हो, वह भी करो ॥ ५४ ॥

सूत उवाच

अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय[1] हरेर्हार्दमथासिना ।
मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥ ५५

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ।
तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥ ५६

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ।
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८

सूतजी कहते हैं—अर्जुन भगवान्‌के हृदयकी बात तुरंत ताड़ गये और उन्होंने अपनी तलवारसे अश्वत्थामाके सिरकी मणि उसके बालोंके साथ उतार ली ॥ ५५ ॥ बालकोंकी हत्या करनेसे वह श्रीहीन तो पहले ही हो गया था, अब मणि और ब्रह्मतेजसे भी रहित हो गया । इसके बाद उन्होंने रस्सीका बन्धन खोलकर उसे शिविरसे निकाल दिया ॥ ५६ ॥ मूँड देना, धन छीन लेना और स्थानसे बाहर निकाल देना—यही ब्राह्मणाधमोंका वध है । उनके लिये इससे भिन्न शारीरिक वधका विधान नहीं है ॥ ५७ ॥ पुत्रोंकी मृत्युसे द्रौपदी और पाण्डव सभी शोकातुर हो रहे थे । अब उन्होंने अपने मरे हुए भाई बन्धुओंकी दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया की ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
द्रौणिनिग्रहो[2] नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक

सूत उवाच

अथ ते[3] सम्परेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ।
आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥ २

तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३

सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान्[4] ।
भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४

साधयित्वाजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ।
घातयित्वासतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५

सूतजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्णके साथ जलाञ्जलिके इच्छुक मरे हुए स्वजनोंका तर्पण करनेके लिये स्त्रियोंको आगे करके गङ्गातटपर गये ॥ १ ॥ वहाँ उन सबने मृत बन्धुओंको जलदान दिया और उनके गुणोंका स्मरण करके बहुत विलाप किया । तदनन्तर भगवान्‌के चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र गङ्गाजलमें पुनः स्नान किया ॥ २ ॥ वहाँ अपने भाइयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी— सब बैठकर मरे हुए स्वजनोंके लिये शोक करने लगे । भगवान् श्रीकृष्णने धौम्यादि मुनियोंके साथ उनको सान्त्वना दी और समझाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता ॥ ३-४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धूर्तोंने छलसे छीन लिया था, वापस दिलाया तथा द्रौपदीके केशोंका स्पर्श करनेसे जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका वध कराया ॥ ५ ॥

याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।
तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ।
नान्यं[1] त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ।
कामं दहतु[2] मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १०

सूत[3] उवाच

उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्सलः ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ११

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ[4] पाण्डवाः पञ्च सायकान् ।
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ।
सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥ १३

अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥ १४

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ।
वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह ॥ १५

मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।
य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ १६

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ।
प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७

साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उत्तम सामग्रियोंसे तथा पुरोहितोंसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रके यशकी तरह सब ओर फैला दिया ॥ ६ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका विचार किया। उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन लोगोंने भी भगवान्‌का बड़ा ही सम्मान किया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धवके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दौड़ी चली आ रही है ॥ ७-८ ॥

उत्तराने कहा—देवाधिदेव ! जगदीश्वर ! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक-दूसरेकी मृत्युके निमित्त बन रहे हैं ॥ ९ ॥ प्रभो ! आप सर्व-शक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहेका बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। स्वामिन् ! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भको नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामाने पाण्डवोंके वंशको निर्बीज करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है ॥ ११ ॥ शौनकजी ! उसी समय पाण्डवोंने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी ओर आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये ॥ १२ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने अनन्य प्रेमियोंपर— शरणागत भक्तोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शन-चक्रसे उन निज जनोंकी रक्षा की ॥ १३ ॥ योगेश्वर श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान आत्मा हैं। उन्होंने उत्तराके गर्भको पाण्डवोंकी वंश-परम्परा चलानेके लिये अपनी मायाके कवचसे ढक दिया ॥ १४ ॥ शौनकजी ! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारणका कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर वह शान्त हो गया ॥ १५ ॥ यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान् तो सर्वाश्चर्यमय हैं, वे ही अपनी निज शक्ति मायासे स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुक्त अपने पुत्रोंके और द्रौपदीके साथ सती कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की ॥ १७ ॥

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्[1] ॥ १८

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २०

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २२

यथा हृषीकेश खलेन देवकी
कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो
त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना-
दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो
द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ २४

विपदः सन्तु नः[2] शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ २६

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम्।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥ २८

कुन्तीने कहा—आप समस्त जीवोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियोंसे देखे नहीं जाते; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ १८ ॥ इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसकी तहमें आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही मायाके परदेसे अपनेको ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तमको भला, कैसे जान सकती हूँ ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नटको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए भी नहीं दीखते ॥ १९ ॥ आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं ॥ २० ॥ आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द गोपके लाड़ले लाल गोविन्दको हमारा बारंबार प्रणाम है ॥ २१ ॥ जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलोंकी माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलोंमें कमलका चिह्न है—श्रीकृष्ण ! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २२ ॥ हृषीकेश ! जैसे आपने दुष्ट कंसके द्वारा कैद की हुई और चिरकालसे शोकग्रस्त देवकीकी रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रोंके साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियोंसे रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण ! कहाँतक गिनाऊँ—विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंकी दृष्टिसे, दुष्टोंकी द्यूत-सभासे, वनवासकी विपत्तियोंसे और अनेक बारके युद्धोंमें अनेक महारथियोंके शस्त्रास्त्रोंसे और अभी-अभी इस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी आपने ही हमारी रक्षा की है ॥ २३-२४ ॥ जगद्गुरो ! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता ॥ २५ ॥ ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं ॥ २६ ॥ आप निर्धनोंके परम धन हैं। मायाका प्रपञ्च आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने-आपमें ही विहार करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥

मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता,

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं
तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम्।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्
द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम्॥ २९

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः।
तिर्यङ्नृषिषु[1] यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम्॥ ३०

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्[2]।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति॥ ३१

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम्॥ ३२

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम्॥ ३३

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः॥ ३४

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन[3]॥ ३५

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः[4]
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥ ३६

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित[5] प्रभो
जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्
परायणं राजसु योजितांहसाम्॥ ३७

कालरूप, परमेश्वर समझती हूँ। संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परंतु आप सबमें समानरूपसे विचर रहे हैं॥ २८॥ भगवन्! आप जब मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्धमें लोगोंकी बुद्धि ही विषम हुआ करती है॥ २९॥ आप विश्वके आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है॥ ३०॥ जब बचपनमें आपने दूधकी मटकी फोड़कर यशोदा मैयाको खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी ली थी, तब आपकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे, काजल कपोलोंपर बह चला था, नेत्र चञ्चल हो रहे थे और भयकी भावनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था! आपकी उस दशाका—लीला-छबिका ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा!॥ ३१॥ आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदुकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार ग्रहण किया है॥ ३२॥ दूसरे लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृश्निके रूपमें) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत्के कल्याण और दैत्योंके नाशके लिये उनके पुत्र बने हैं॥ ३३॥ कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी—पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्माकी प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए॥ ३४॥ कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है॥ ३५॥ भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं; वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं; जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको सदाके लिये रोक देता है॥ ३६॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हमलोगोंको छोड़कर जाना चाहते हैं? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त हमें और किसीका सहारा नहीं

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः॥ ३८

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः॥ ३९

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः[1]॥ ४०

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु॥ ४१

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।
रतिमुद्वहतादद्धा[2] गङ्गेवौघमुदन्वति॥ ४२

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते॥ ४३

सूत उवाच

पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः।
मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया॥ ४४

तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम्।
स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन् प्रेम्णा राज्ञा निवारितः॥ ४५

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः[3]॥ ४६

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन् सुहृदां वधम्।
प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः॥ ४७

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः।
पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः॥ ४८

है। पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं॥ ३७॥ जैसे जीवके बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियोंके और हमारे पुत्र पाण्डवोंके नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है॥ ३८॥ गदाधर! आपके विलक्षण चरणचिह्नोंसे चिह्नित यह कुरुजाङ्गल-देशकी भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी॥ ३९॥ आपकी दृष्टिके प्रभावसे ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टिसे ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं॥ ४०॥ आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनोंके साथ जोड़े हुए इस स्नेहकी दृढ़ फाँसीको काट दीजिये॥ ४१॥ श्रीकृष्ण! जैसे गङ्गाकी अखण्ड धारा समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे॥ ४२॥ श्रीकृष्ण! अर्जुनके प्यारे सखा यदुवंशशिरोमणे! आप पृथ्वीके भाररूप राजवेशधारी दैत्योंको जलानेके लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दुःख मिटानेके लिये ही है। योगेश्वर! चराचरके गुरु भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ॥ ४३॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कुन्तीने बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्‌की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मायासे उसे मोहित करते हुए-से मन्द-मन्द मुसकराने लगे॥ ४४॥ उन्होंने कुन्तीसे कह दिया—'अच्छा ठीक है' और रथके स्थानसे वे हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ कुन्ती और सुभद्रा आदि देवियोंसे विदा लेकर जब वे जाने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया॥ ४५॥ राजा युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था। भगवान्‌की लीलाका मर्म जाननेवाले व्यास आदि महर्षियोंने और स्वयं अद्भुत चरित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझानेकी बहुत चेष्टा की; परंतु उन्हें सान्त्वना न मिली, उनका शोक न मिटा॥ ४६॥ शौनकादि ऋषियो! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने स्वजनोंके वधसे बड़ी चिन्ता हुई। वे अविवेकयुक्त चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्माके हृदयमें बद्धमूल हुए इस अज्ञानको तो देखो; मैंने सियार-कुत्तोंके आहार इस अनात्मा शरीरके लिये अनेक अक्षौहिणी* सेनाका नाश कर डाला॥ ४७-४८॥

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।
न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।
इति मे न तु बोधाय कल्पते[1] शासनं वचः ॥५०

स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।
कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१

यथा पङ्केन पङ्काम्भः[2] सुरया वा सुराकृतम् ।
भूतहत्यां तथैवैकां[3] न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२

मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा-ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनोंसे द्रोह किया है। करोड़ों बरसोंसे भी नरकसे मेरा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ ४९ ॥ यद्यपि शास्त्रका वचन है कि राजा यदि प्रजाका पालन करनेके लिये धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारे तो उसे पाप नहीं लगता, फिर भी इससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ ५० ॥ स्त्रियोंके पति और भाई-बन्धुओंको मारनेसे उनका मेरे द्वारा यहाँ जो अपराध हुआ है। उसका मैं गृहस्थोचित यज्ञ-यागादिकोंके द्वारा मार्जन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ ५१ ॥ जैसे कीचड़से गँदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मदिरासे मदिराकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतिर्युधिष्ठिरानुतापो[4] नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना

सूत उवाच

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ।
ततो विनशनं प्रागाद् यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ।
अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २

भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः ।
स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ।
प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥ ४

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ।
राजर्षयश्च तत्रासन् द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥ ५

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान् बादरायणः ।
बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥ ६

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजाद्रोहसे भयभीत हो गये। फिर सब धर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने कुरुक्षेत्रकी यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे ॥ १ ॥ शौनकादि ऋषियो ! उस समय उन सब भाइयोंने स्वर्णजटित रथोंपर, जिनमें अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हुए थे, सवार होकर अपने भाई युधिष्ठिरका अनुगमन किया। उनके साथ व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे ॥ २ ॥ शौनकजी ! अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथपर चढ़कर चले। उन सब भाइयोंके साथ महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हुई, मानो यक्षोंसे घिरे हुए स्वयं कुबेर ही जा रहे हों ॥ ३ ॥ अपने अनुचरों और भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ जाकर पाण्डवोंने देखा कि भीष्मपितामह स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। उन लोगोंने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४ ॥ शौनकजी ! उसी समय भरतवंशियोंके गौरवरूप भीष्मपितामहको देखनेके लिये सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये ॥ ५ ॥ पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुरामजी,

वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ।
कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७

अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ।
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ ८

तान् समेतान् महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ।
पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥ ९

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ।
हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥१०

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्[1] ।
अभ्याचष्टानुरागास्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥११

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ।
जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं[2] विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२

संस्थितेऽतिरथे[3] पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ।
युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥१३

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ।
सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ।
कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन् पुमान् वेद विधित्सितम् ।
यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥१६

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ।
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो[4] ॥१७

एष वै भगवान् साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥१८

वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और भी शुकदेव आदि शुद्ध-हृदय महात्मागण एवं शिष्योंके सहित कश्यप, अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण भी वहाँ पधारे ॥ ६—८ ॥ भीष्मपितामह धर्मको और देश-कालके विभागको—कहाँ किस समय क्या करना चाहिये, इस बातको जानते थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियोंको सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया ॥ ९ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की ॥ १० ॥

पाण्डव बड़े विनय और प्रेमके साथ भीष्मपितामहके पास बैठ गये। उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर गयीं। उन्होंने उनसे कहा— ॥ ११ ॥ 'धर्मपुत्रो ! हाय ! हाय ! यह बड़े कष्ट और अन्यायकी बात है कि तुमलोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान्‌के आश्रित रहनेपर भी इतने कष्टके साथ जीना पड़ा, जिसके तुम कदापि योग्य नहीं थे ॥ १२ ॥ अतिरथी पाण्डुकी मृत्युके समय तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी थी। उन दिनों तुमलोगोंके लिये कुन्तीरानीको और साथ-साथ तुम्हें भी बार-बार बहुत-से कष्ट झेलने पड़े ॥ १३ ॥ जिस प्रकार बादल वायुके वशमें रहते हैं, वैसे ही लोकपालोंके सहित सारा संसार कालभगवान्‌के अधीन है। मैं समझता हूँ कि तुमलोगोंके जीवनमें ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हींकी लीला हैं ॥ १४ ॥ नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, गदाधारी भीमसेन और धनुर्धारी अर्जुन रक्षाका काम कर रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण सुहृद् हों—भला, वहाँ भी विपत्तिकी सम्भावना है ? ॥ १५ ॥ ये कालरूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बातको कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसे जाननेकी इच्छा करके मोहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर ! संसारकी ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छाके अधीन हैं। उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो; क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदि कारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं ॥ १८ ॥

अस्यानुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।
देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृप[1] ॥ १९

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ।
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २०

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहङ्कृतेः ।
तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम्[2] ।
यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥ २२

भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन् ।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः[3] ॥ २३

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस-
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ।
अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणां चानुशृण्वताम् ॥ २५

पुरुषस्वभावविहितान् यथावर्णं यथाश्रमम् ।
वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः ।
स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ॥ २७

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान् यथा मुने[4] ।
नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ।
यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९

इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर ! उसे भगवान् शङ्कर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं ॥ १९ ॥ जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं ॥ २० ॥ इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्काररहित और निष्पाप परमात्मामें उन ऊँचे-नीचे कार्योंके कारण कभी किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर ! इस प्रकार सर्वत्र सम होनेपर भी, देखो तो सही, वे अपने अनन्यप्रेमी भक्तोंपर कितनी कृपा करते हैं। यही कारण है कि ऐसे समयमें जबकि मैं अपने प्राणोंका त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है ॥ २२ ॥ भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओंसे तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ २३ ॥ वे ही देवदेव भगवान् अपने प्रसन्न हास्य और रक्तकमलके समान अरुण नेत्रोंसे उल्लसित मुखवाले चतुर्भुजरूपसे, जिसका और लोगोंको केवल ध्यानमें दर्शन होता है, तबतक यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जबतक मैं इस शरीरका त्याग न कर दूँ ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुनकर शर-शय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे बहुत-से ऋषियोंके सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों रहस्य पूछे ॥ २५ ॥ तब तत्त्ववेत्ता भीष्मपितामहने वर्ण और आश्रमके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म और वैराग्य तथा रागके कारण विभिन्नरूपसे बतलाये हुए निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया। शौनकजी ! इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपाख्यान और इतिहास सुनाते हुए विभागशः वर्णन किया ॥ २६—२८ ॥ भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं ॥ २९ ॥

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणी-
र्विमुक्तसङ्गं[१] मन आदिपूरुषे ।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे
पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३०

विशुद्धया धारणया हताशुभ-[२]
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम-
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥ ३१

श्रीभीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु[३] मेऽनवद्या ॥ ३३

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य[४] ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु[५] ॥ ३५

व्यवहितपृतनामुखं[६] निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या[७] ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य[८] मेऽस्तु ॥ ३६

उस समय हजारों रथियोंके नेता भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं ॥ ३० ॥ उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही तुरंत दूर हो गयी तथा भगवान्‌की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति-विलासको रोक दिया और बड़े प्रेमसे भगवान्‌की स्तुति की ॥ ३१ ॥

भीष्मजीने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंश-शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी—लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि-परम्परा चलती है ॥ ३२ ॥ जिनका शरीर त्रिभुवन-सुन्दर एवं श्याम तमालके समान साँवला है, जिसपर सूर्य-रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश मुखपर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो ॥ ३३ ॥ मुझे युद्धके समयकी उनकी वह विलक्षण छबि याद आती है। उनके मुखपर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ोंकी टापकी धूलसे मटमैले हो गये थे और पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणोंसे उनकी त्वचाको बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और आत्मा समर्पित हो जायँ ॥ ३४ ॥ अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेनाके बीचमें अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही शत्रुपक्षके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो ॥ ३५ ॥ अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हमलोगोंको देखा, तब पाप समझकर वह अपने स्वजनोंके वधसे विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे ॥ ३६ ॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥ ३८

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥ ३९

ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४०

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः-
सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥ ४१

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि[1] धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव[2] नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२

सूत उवाच

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः[3] ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥ ४३

सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ।
सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये[4] ॥ ४४

मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी ॥ ३७ ॥ मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिससे सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमात्र गति हों—आश्रय हों ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छबि बन गयी थी, तथा महाभारतयुद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो ॥ ३९ ॥ जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भावयुक्त चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमोन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो ॥ ४० ॥ जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं ॥ ४१ ॥ जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूप-से जान पड़ते हैं; वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ ॥ ४२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार भीष्मपितामहने मन, वाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें अपने आपको लीन कर दिया। उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये ॥ ४३ ॥ उन्हें अनन्त ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो गये, जैसे दिनके बीत जानेपर पक्षियोंका कलरव शान्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः[1] ।
शशंसुः साधवो राज्ञां[2] खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५

तस्य निर्हरणादीनि सम्परेतस्य भार्गव ।
युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ।
ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान् प्रययुः पुनः ॥ ४७

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ।
पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ।
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९

उस समय देवता और मनुष्य नगारे बजाने लगे। साधुस्वभावके राजा उनकी प्रशंसा करने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ४५ ॥ शौनकजी ! युधिष्ठिरने उनके मृत शरीरकी अन्त्येष्टि क्रिया करायी और कुछ समयके लिये वे शोकमग्न हो गये ॥ ४६ ॥ उस समय मुनियोंने बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी उनके रहस्यमय नाम ले-लेकर स्तुति की। इसके पश्चात् अपने हृदयोंको श्रीकृष्णमय बनाकर वे अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने वहाँ अपने चाचा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीको ढाढस बँधाया ॥ ४८ ॥ फिर धृतराष्ट्रकी आज्ञा और भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने वंशपरम्परागत साम्राज्यका धर्मपूर्वक शासन करने लगे ॥ ४९ ॥

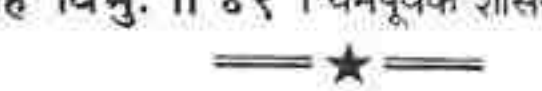

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका द्वारका-गमन

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः
कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १

सूत उवाच

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं[3]
संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।
निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो
युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं
प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः
परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३

शौनकजीने पूछा—धार्मिकशिरोमणि महाराज युधिष्ठिरने अपनी पैतृक सम्पत्तिको हड़प जानेके इच्छुक आततायियोंका नाश करके अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारसे राज्य-शासन किया और कौन-कौन-से काम किये, क्योंकि भोगोंमें तो उनकी प्रवृत्ति थी ही नहीं ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—सम्पूर्ण सृष्टिको उज्जीवित करनेवाले भगवान् श्रीहरि परस्परकी कलहाग्निसे दग्ध कुरुवंशको पुनः अंकुरितकर और युधिष्ठिरको उनके राज्यसिंहासनपर बैठाकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ भीष्मपितामह और भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंके श्रवणसे उनके अन्तःकरणमें विज्ञानका उदय हुआ और भ्रान्ति मिट गयी। भगवान्‌के आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्रके समान शासन करने लगे। भीमसेन आदि उनके भाई पूर्णरूपसे उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे ॥ ३ ॥

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।
सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ।
फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु[1] तस्य वै ॥ ५

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः[2] ।
अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः ।
सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥ ७

आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम्[3] ।
आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ।
गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥ ९

वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।
न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १०

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो[4] हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।
दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः[5] ॥ १२

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ।
वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३

न्यरुन्धन्नु द्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ।
निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति[6] स्याद्बान्धवस्त्रियः[3] ॥ १४

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ।
धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५

युधिष्ठिरके राज्यमें आवश्यकतानुसार यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वीमें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ पैदा होती थीं, बड़े-बड़े थनोंवाली बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर गोशालाओंको दूधसे सींचती रहती थीं ॥ ४ ॥ नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लताएँ और ओषधियाँ प्रत्येक ऋतुमें यथेष्टरूपसे अपनी-अपनी वस्तुएँ राजाको देती थीं ॥ ५ ॥ अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरके राज्यमें किसी प्राणीको कभी भी आधि-व्याधि अथवा दैविक, भौतिक और आत्मिक क्लेश नहीं होते थे ॥ ६ ॥

अपने बन्धुओंका शोक मिटानेके लिये और अपनी बहिन सुभद्राकी प्रसन्नताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कई महीनोंतक हस्तिनापुरमें ही रहे ॥ ७ ॥ फिर जब उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी, तब राजाने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर स्वीकृति दे दी। भगवान् उनको प्रणाम करके रथपर सवार हुए। कुछ लोगों (समान उम्रवालों) ने उनका आलिङ्गन किया और कुछ (छोटी उम्रवालों) ने प्रणाम ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य और सत्यवती आदि सब मूर्च्छित-से हो गये। वे शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णका विरह नहीं सह सके ॥ ९-१० ॥ भगवद्भक्त सत्पुरुषोंके सङ्गसे जिसका दुःसङ्ग छूट गया है, वह विचारशील पुरुष भगवान्‌के मधुर-मनोहर सुयशको एक बार भी सुन लेनेपर फिर उसे छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करता। उन्हीं भगवान्‌के दर्शन तथा स्पर्शसे, उनके साथ आलाप करनेसे तथा साथ-ही-साथ सोने, उठने-बैठने और भोजन करनेसे जिनका सम्पूर्ण हृदय उन्हें समर्पित हो चुका था, वे पाण्डव भला, उनका विरह कैसे सह सकते थे ॥ ११-१२ ॥ उनका चित्त द्रवित हो रहा था, वे सब निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌को देखते हुए स्नेह-बन्धनसे बँधकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके घरसे चलते समय उनके बन्धुओंकी स्त्रियोंके नेत्र उत्कण्ठावश उमड़ते हुए आँसुओंसे भर आये; परंतु इस भयसे कि कहीं यात्राके समय अशकुन न हो जाय, उन्होंने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोक लिया ॥ १४ ॥

भगवान्‌के प्रस्थानके समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी,

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ।
ववृषुः[१] कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।
रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ।
विकीर्यमाणः[२] कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ।
नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ।
कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २०

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३

वीणा, ढोल, नरसिंगे, धुन्धुरी, नगारे, घंटे और दुन्दुभियाँ आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे कुरुवंशकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ गयीं और प्रेम, लज्जा एवं मुसकानसे युक्त चितवनसे भगवान्‌को देखती हुई उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ उस समय भगवान्‌के प्रिय सखा घुँघराले बालोंवाले अर्जुनने अपने प्रियतम श्रीकृष्णका वह श्वेत छत्र, जिसमें मोतियोंकी झालर लटक रही थी और जिसका डंडा रत्नोंका बना हुआ था, अपने हाथमें ले लिया ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकि बड़े विचित्र चँवर डुलाने लगे। मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। बड़ी ही मधुर झाँकी थी ॥ १८ ॥ जहाँ-तहाँ ब्राह्मणोंके दिये हुए सत्य आशीर्वाद सुनायी पड़ रहे थे। वे सगुण भगवान्‌के तो अनुरूप ही थे; क्योंकि उनमें सब कुछ है, परन्तु निर्गुणके अनुरूप नहीं थे, क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं है ॥ १९ ॥ हस्तिनापुरकी कुलीन रमणियाँ, जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें रम गया था, आपसमें ऐसी बातें कर रही थीं, जो सबके कान और मनको आकृष्ट कर रही थीं ॥ २० ॥

वे आपसमें कह रही थीं—'सखियो ! ये वे ही सनातन परम पुरुष हैं, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं। उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं रहते। जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो जाते हैं और महत्तत्त्वादि समस्त शक्तियाँ अपने कारण अव्यक्तमें सो जाती हैं ॥ २१ ॥ उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नामरूपके निर्माणकी इच्छा की तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की ॥ २२ ॥ इस जगत्‌में जिसके स्वरूपका साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणोंको वशमें करके भक्तिसे प्रफुल्लित निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं। वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं ॥ २३ ॥

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ २४

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः[1] किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥ २५

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना[2] चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं[3]
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं[4] मुहु-
र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे
प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः[5] ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा[6]
याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं
निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति-
र्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३०

सखी ! वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है—जो एक अद्वितीय ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं, परन्तु उनमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पालने लगते हैं तब ये ही सत्त्वगुणको स्वीकारकर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अहो ! यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है; क्योंकि लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है। वह पवित्र मधुवन (व्रजमण्डल) भी अत्यन्त धन्य है, जिसे इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरावस्थामें घूम-फिरकर सुशोभित किया है ॥ २६ ॥ बड़े हर्षकी बात है कि द्वारकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ाया है। क्यों न हो, वहाँकी प्रजा अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको, जो बड़े प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए उन्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती हैं ॥ २७ ॥ सखी ! जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवन आदिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी; क्योंकि वे बार-बार इनकी उस अधर-सुधाका पान करती हैं, जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजबालाएँ आनन्दसे मूर्च्छित हो जाया करती थीं ॥ २८ ॥ ये स्वयंवरमें शिशुपाल आदि मतवाले राजाओंका मान मर्दन करके जिनको अपने बाहुबलसे हर लाये थे तथा जिनके पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, आम्ब आदि हैं, वे रुक्मिणी आदि आठों पटरानियाँ और भौमासुरको मारकर लायी हुई जो इनकी हजारों अन्य पत्नियाँ हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं। क्योंकि इन सभीने स्वतन्त्रता और पवित्रतासे रहित स्त्रीजीवनको पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है। इनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करे। इनके स्वामी साक्षात् कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं तथा पारिजातादि प्रिय वस्तुओंकी भेंटसे इनके हृदयमें प्रेम एवं आनन्दकी अभिवृद्धि करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते ॥ २९-३० ॥

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम्।
निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः।
परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥३२

अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान्[1]।
संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३

कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान्।
ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ ॥३४

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्।
आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥३५

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः।
सायं भेजे दिशं पश्चाद्रविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६

हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर ही रही थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण मन्द मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे विदा हो गये॥ ३१॥ अजातशत्रु युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना उनके साथ कर दी; उन्हें स्नेहवश यह शङ्का हो आयी थी कि कहीं रास्तेमें शत्रु इनपर आक्रमण न कर दें॥ ३२॥ सुदृढ़ प्रेमके कारण कुरुवंशी पाण्डव भगवान्‌के साथ बहुत दूरतक चले गये। वे लोग उस समय भावी विरहसे व्याकुल हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें बहुत आग्रह करके विदा किया और सात्यकि, उद्धव आदि प्रेमी मित्रोंके साथ द्वारकाकी यात्रा की॥ ३३॥ शौनकजी! वे कुरुजाङ्गल, पाञ्चाल, शूरसेन, यमुनाके तटवर्ती प्रदेश ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत और मरुधन्व देशको पार करके सौवीर और आभीर देशके पश्चिम आनर्त्त देशमें आये। उस समय अधिक चलनेके कारण भगवान्‌के रथके घोड़े कुछ थक-से गये थे॥ ३४-३५॥ मार्गमें स्थान-स्थानपर लोग उपहारादिके द्वारा भगवान्‌का सम्मान करते, सायङ्काल होनेपर वे रथपरसे भूमिपर उतर आते और जलाशयपर जाकर सन्ध्या-वन्दन करते। यह उनकी नित्यचर्या थी॥ ३६॥

इति[2] श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने श्रीकृष्णद्वारकागमनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत

सूत उवाच

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान् स्वकान्।
दध्मौ दरवरं[3] तेषां विषादं शमयन्निव ॥१

स[4] उच्चकाशे धवलोदरो दरो-
ऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे
यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम्।
प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥३

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णने अपने समृद्ध आनर्त्त देशमें पहुँचकर वहाँके लोगोंकी विरह-वेदना बहुत कुछ शान्त करते हुए अपना श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया॥ १॥ भगवान्‌के होठोंकी लालीसे लाल हुआ वह श्वेत वर्णका शङ्ख बजते समय उनके कर-कमलोंमें ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे लाल रंगके कमलोंपर बैठकर कोई राजहंस उच्चस्वरसे मधुर गान कर रहा हो॥ २॥ भगवान्‌के शङ्खकी वह ध्वनि संसारके भयको भयभीत करनेवाली है। उसे सुनकर सारी प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे नगरके बाहर निकल आयी॥ ३॥

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ।
आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४

प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ।
पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः[१] ॥ ५

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं
न यत्र कालः प्रभवेत् परः[२] प्रभुः ॥ ६

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव माताथ[३] सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं
पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्
रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत[४] ॥ ९

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत्पुरीम्[५] ॥ १०

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ।
आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ।
उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, वे अपने आत्मलाभसे ही सदा-सर्वदा पूर्णकाम हैं, फिर भी जैसे लोग बड़े आदरसे भगवान् सूर्यको भी दीपदान करते हैं, वैसे ही अनेक प्रकारकी भेंटोंसे प्रजाने श्रीकृष्णका स्वागत किया ॥ ४ ॥ सबके मुख-कमल प्रेमसे खिल उठे। वे हर्षगद्गद वाणीसे सबके सुहृद् और संरक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी ठीक वैसे ही स्तुति करने लगे, जैसे बालक अपने पितासे अपनी तोतली बोलीमें बातें करते हैं ॥ ५ ॥ 'स्वामिन्! हम आपके उन चरण-कमलोंको सदा-सर्वदा प्रणाम करते हैं, जिनकी वन्दना ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्रतक करते हैं, जो इस संसारमें परम कल्याण चाहनेवालोंके लिये सर्वोत्तम आश्रय हैं, जिनकी शरण ले लेनेपर परम समर्थ काल भी एक बालतक बाँका नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ विश्वभावन! आप ही हमारे माता, सुहृद्, स्वामी और पिता हैं; आप ही हमारे सद्गुरु और परम आराध्यदेव हैं। आपके चरणोंकी सेवासे हम कृतार्थ हो रहे हैं। आप ही हमारा कल्याण करें ॥ ७ ॥ अहा! हम आपको पाकर सनाथ हो गये; क्योंकि आपके सर्वसौन्दर्यसार अनुपम रूपका हम दर्शन करते रहते हैं। कितना सुन्दर मुख है। प्रेमपूर्ण मुसकानसे स्निग्ध चितवन! यह दर्शन तो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ कमलनयन श्रीकृष्ण! जब आप अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलनेके लिये हस्तिनापुर अथवा मथुरा (व्रजमण्डल) चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षोंके समान लम्बा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसी हो जाती है, जैसे सूर्यके बिना आँखोंकी ॥ ९ ॥ भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रजाके मुखसे ऐसे वचन सुनते हुए और अपनी कृपामयी दृष्टिसे उनपर अनुग्रहकी वृष्टि करते हुए द्वारकामें प्रविष्ट हुए ॥ १० ॥

जैसे नाग अपनी नगरी भोगवती (पातालपुरी) की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान्‌की वह द्वारकापुरी भी मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंसे, जिनके पराक्रमकी तुलना और किसीसे भी नहीं की जा सकती, सुरक्षित थी ॥ ११ ॥ वह पुरी समस्त ऋतुओंके सम्पूर्ण वैभवसे सम्पन्न एवं पवित्र वृक्षों एवं लताओंके कुञ्जोंसे युक्त थी। स्थान-स्थानपर फलोंसे पूर्ण उद्यान, पुष्पवाटिकाएँ एवं क्रीडावन थे। बीच-बीचमें कमलयुक्त सरोवर नगरकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १२ ॥

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम्।
चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम्॥ १३

सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम्।
सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः॥ १४

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः।
अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः[1]॥ १५

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः।
अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः॥ १६

प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो[2] जाम्बवतीसुतः।
प्रहर्षवेगोच्छ्वशितशयनासनभोजनाः॥ १७

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः[3] ससुमङ्गलैः।
शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः।
प्रत्युज्जग्मू[4] रथैर्हृष्टाः[5] प्रणयागतसाध्वसाः॥ १८

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः।
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः[6]॥ १९

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः।
गायन्ति[7] चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च॥ २०

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम्।
यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे॥ २१

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः[8]।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः॥ २२

स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम्[9]॥ २३

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः[10] कुलस्त्रियः।
हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः॥ २४

नगरके फाटकों, महलके दरवाजों और सड़कोंपर भगवान्‌के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनसे उन स्थानोंपर घामका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था॥ १३॥ उसके राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें, बाजार और चौक झाड़-बुहारकर सुगन्धित जलसे सींच दिये गये थे। और भगवान्‌के स्वागतके लिये बरसाये हुए फल-फूल, अक्षत-अङ्कुर चारों ओर बिखरे हुए थे॥ १४॥ घरोंके प्रत्येक द्वारपर दही, अक्षत, फल, ईख, जलसे भरे हुए कलश, उपहारकी वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजा दिये गये थे॥ १५॥

उदारशिरोमणि वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत पराक्रमी बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीनन्दन साम्बने जब यह सुना कि हमारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तब उनके मनमें इतना आनन्द उमड़ा कि उन लोगोंने अपने सभी आवश्यक कार्य—सोना, बैठना और भोजन आदि छोड़ दिये। प्रेमके आवेगसे उनका हृदय उछलने लगा। वे मङ्गलशकुनके लिये एक गजराजको आगे करके स्वस्त्ययन-पाठ करते हुए और माङ्गलिक सामग्रियोंसे सुसज्जित ब्राह्मणोंको साथ लेकर चले। शङ्ख और तुरही आदि बाजे बजने लगे और वेदध्वनि होने लगी। वे सब हर्षित होकर रथोंपर सवार हुए और बड़ी आदरबुद्धिसे भगवान्‌की अगवानी करने चले॥ १६—१८॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक सैकड़ों श्रेष्ठ वारांगनाएँ, जिनके मुख कपोलोंपर चमचमाते हुए कुण्डलोंकी कान्ति पड़नेसे बड़े सुन्दर दीखते थे, पालकियोंपर चढ़कर भगवान्‌की अगवानीके लिये चलीं॥ १९॥ बहुत-से नट, नाचनेवाले, गानेवाले, विरद बखाननेवाले सूत, मागध और वंदीजन भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्रोंका गायन करते हुए चले॥ २०॥

भगवान् श्रीकृष्णने बन्धु-बान्धवों, नागरिकों और सेवकोंसे उनकी योग्यताके अनुसार अलग-अलग मिलकर सबका सम्मान किया॥ २१॥ किसीको सिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अभिवादन किया, किसीको हृदयसे लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर मुसकरा भर दिया और किसीको केवल प्रेमभरी दृष्टिसे देख लिया। जिसकी जो इच्छा थी, उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबको संतुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और वृद्धोंका तथा दूसरे लोगोंका भी आशीर्वाद ग्रहण करते एवं वंदीजनोंसे विरुदावली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया॥ २२-२३॥

शौनकजी! जिस समय भगवान् राजमार्गसे जा रहे थे, उस समय द्वारकाकी कुल-कामिनियाँ भगवान्‌के दर्शनको ही

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम्।
नैव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियोधामाङ्गमच्युतम्॥ २५

श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम्।
बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम्॥ २६

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः
प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि।
पिशङ्गवासा वनमालया बभौ
घनो यथार्कोडुपचापवैद्युतैः॥ २७

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः[१] परिष्वक्तः[२] स्वमातृभिः।
ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा॥ २८

ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः।
हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः॥ २९

अथाविशत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम्।
प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश॥ ३०

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं
विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः।
उत्तस्थुरारात् सहसाऽऽसनाशयात्[३]
साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः॥ ३१

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम्।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो-
र्विलज्जतीनां[४] भृगुवर्य वैक्लवात्॥ ३२

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत-
स्तथापि[५] तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम्।
पदे पदे का विरमेत तत्पदा-
च्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित्॥ ३३

परमानन्द मानकर अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़ गयीं॥ २४॥ भगवान्‌का वक्षःस्थल मूर्तिमान् सौन्दर्यलक्ष्मीका निवासस्थान है। उनका मुखारविन्द नेत्रोंके द्वारा पान करनेके लिये सौन्दर्य-सुधासे भरा हुआ पात्र है। उनकी भुजाएँ लोकपालोंको भी शक्ति देनेवाली हैं। उनके चरणकमल भक्त परमहंसोंके आश्रय हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग शोभाके धाम हैं। भगवान्‌की इस छविको द्वारकावासी नित्य-निरन्तर निहारते रहते हैं, फिर भी उनकी आँखें एक क्षणके लिये भी तृप्त नहीं होतीं॥ २५-२६॥ द्वारकाके राजपथपर भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र तना हुआ था, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, वे पीताम्बर और वनमाला धारण किये हुए थे। इस समय वे ऐसे शोभायमान हुए, मानो श्याम मेघ एक ही साथ सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और बिजलीसे शोभायमान हो॥ २७॥

भगवान् सबसे पहले अपने माता-पिताके महलमें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आनन्दसे देवकी आदि सातों माताओंको चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और माताओंने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर गोदमें बैठा लिया। स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी, उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो गया और वे आनन्दके आँसुओंसे उनका अभिषेक करने लगीं॥ २८-२९॥ माताओंसे आज्ञा लेकर वे अपने समस्त भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ भवनमें गये। उसमें सोलह हजार पत्नियोंके अलग-अलग महल थे॥ ३०॥ अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिन बाहर रहनेके बाद घर आया देखकर रानियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें अपने निकट देखकर वे एकाएक ध्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं; उन्होंने केवल आसनको ही नहीं, बल्कि उन नियमोंको* भी त्याग दिया, जिन्हें उन्होंने पतिके प्रवासी होनेपर ग्रहण किया था। उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छा गयी॥ ३१॥ भगवान्‌के प्रति उनका भाव बड़ा ही गम्भीर था। उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके बहाने शरीरसे उनका आलिङ्गन किया। शौनकजी! उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें सङ्कोचवश उन्होंने बहुत रोका। फिर भी विवशताके कारण वे ढलक ही गये॥ ३२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते थे, तथापि उनके चरण-कमल उन्हें पद-पदपर नये-नये जान पड़ते। भला, स्वभावसे ही चञ्चल लक्ष्मी जिन्हें एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़तीं, उनकी संनिधिसे किस स्त्रीकी तृप्ति हो सकती है॥ ३३॥

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-
मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम्[१]।
विधाय वैरं श्वसनो यथानलं
मिथो वधेनोपरतो[२] निरायुधः ॥ ३४

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया।
रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥ ३५

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-
व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम्।
सम्मुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६

तमयं[३] मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम्।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं[४] यतोऽबुधः ॥ ३७

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः।
न युज्यते सदाऽऽत्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः।
अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥ ३९

जैसे वायु बाँसोंके संघर्षसे दावानल पैदा करके उन्हें जला देता है, वैसे ही पृथ्वीके भारभूत और शक्तिशाली राजाओंमें परस्पर फूट डालकर बिना शस्त्र ग्रहण किये ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अक्षौहिणी सेनासहित एक-दूसरेसे मरवा डाला और उसके बाद आप भी उपराम हो गये ॥ ३४ ॥ साक्षात् परमेश्वर ही अपनी लीलासे इस मनुष्य-लोकमें अवतीर्ण हुए थे और सहस्रों रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यकी तरह क्रीडा की ॥ ३५ ॥ जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सूचित करनेवाली थी, जिनकी लजीली चितवनकी चोटसे बेसुध होकर विश्वविजयी कामदेवने भी अपने धनुषका परित्याग कर दिया था—वे कमनीय कामिनियाँ अपने काम-विलासोंसे जिनके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं, उन असङ्ग भगवान् श्रीकृष्णको संसारके लोग अपने ही समान कर्म करते देखकर आसक्त मनुष्य समझते हैं—यह उनकी मूर्खता है ॥ ३६-३७ ॥ यही तो भगवान्‌की भगवत्ता है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंसे कभी लिप्त नहीं होते, जैसे भगवान्‌की शरणागत बुद्धि अपनेमें रहनेवाले प्राकृत गुणोंसे लिप्त नहीं होती ॥ ३८ ॥ वे मूढ़ स्त्रियाँ भी श्रीकृष्णको अपना एकान्तसेवी, स्त्रीपरायण भक्त ही समझ बैठी थीं; क्योंकि वे अपने स्वामीके ऐश्वर्यको नहीं जानती थीं—ठीक वैसे ही जैसे अहंकारकी वृत्तियाँ ईश्वरको अपने धर्मसे युक्त मानती हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने कृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

परीक्षित्‌का जन्म

शौनक उवाच

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन[५] ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा।
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥ १

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः।
निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान् यथा ॥ २

शौनकजीने कहा—अश्वत्थामाने जो अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मास्त्र चलाया था, उससे उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था; परंतु भगवान्‌ने उसे पुनः जीवित कर दिया ॥ १ ॥ उस गर्भसे पैदा हुए महाज्ञानी महात्मा परीक्षित्‌के, जिन्हें शुकदेवजीने ज्ञानोपदेश दिया था, जन्म, कर्म, मृत्यु और उसके बाद जो गति उन्हें प्राप्त

तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं[१] यदि मन्यसे ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥ ३

सूत उवाच

अपीपलद्धर्मराजः[२] पितृवद् रञ्जयन् प्रजाः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया[३] ॥ ४

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ।
जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥ ५

किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः[४] ।
अधिजह्युर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा[५] भृगुनन्दन ।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा[६] ॥ ७

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम्[७] ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८

श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ।
क्षतजाक्षं[८] तदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ।
परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥ ९

अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ।
विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १०

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब् विभुः ।
मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ११

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ।
जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥ १२

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः[९] ।
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३

हुई, वह सब यदि आप ठीक समझें तो कहें; हमलोग बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं ॥ २-३ ॥

सूतजीने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर अपनी प्रजाको प्रसन्न रखते हुए पिताके समान उसका पालन करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके सेवनसे वे समस्त भोगोंसे निःस्पृह हो गये थे ॥ ४ ॥

शौनकादि ऋषियो ! उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे तथा उनके फलस्वरूप श्रेष्ठ लोकोंका अधिकार प्राप्त किया था। उनकी रानियाँ और भाई अनुकूल थे, सारी पृथ्वी उनकी थी, वे जम्बूद्वीपके स्वामी थे और उनकी कीर्ति स्वर्गतक फैली हुई थी ॥ ५ ॥ उनके पास भोगकी ऐसी सामग्री थी, जिसके लिये देवतालोग भी लालायित रहते हैं। परन्तु जैसे भूखे मनुष्यको भोजनके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ नहीं सुहाते, वैसे ही उन्हें भगवान्‌के सिवा दूसरी कोई वस्तु सुख नहीं देती थी ॥ ६ ॥

शौनकजी ! उत्तराके गर्भमें स्थित वह वीर शिशु परीक्षित् जब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे जलने लगा, तब उसने देखा कि उसकी आँखोंके सामने एक ज्योतिर्मय पुरुष है ॥ ७ ॥ वह देखनेमें तो अँगूठेभरका है, परन्तु उसका स्वरूप बहुत ही निर्मल है। अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, बिजलीके समान चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए है, सिरपर सोनेका मुकुट झिलमिला रहा है। उस निर्विकार पुरुषके बड़ी ही सुन्दर लम्बी-लम्बी चार भुजाएँ हैं। कानोंमें तपाये हुए स्वर्णके सुन्दर कुण्डल हैं, आँखोंमें लालिमा है, हाथमें लूकेके समान जलती हुई गदा लेकर उसे बार-बार घुमाता जा रहा है और स्वयं शिशुके चारों ओर घूम रहा है ॥ ८-९ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको भगा देते हैं, वैसे ही वह उस गदाके द्वारा ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करता जा रहा था। उस पुरुषको अपने समीप देखकर वह गर्भस्थ शिशु सोचने लगा कि यह कौन है ॥ १० ॥ इस प्रकार उस दस मासके गर्भस्थ शिशुके सामने ही धर्मरक्षक अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करके वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥

तदनन्तर अनुकूल ग्रहोंके उदयसे युक्त समस्त सद्गुणोंको विकसित करनेवाले शुभ समयमें पाण्डुके वंशधर परीक्षित्‌का जन्म हुआ। जन्मके समय ही वह बालक इतना तेजस्वी दीख पड़ता था, मानो स्वयं पाण्डुने ही फिरसे जन्म लिया हो ॥ १२ ॥ पौत्रके जन्मकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर मनमें बहुत प्रसन्न हुए।

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान्[1] ।
प्रादात्स्वन्नं[2] च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ।
एष ह्यस्मिन् प्रजातन्तौ पुरूणां पौरवर्षभ[3] ॥ १५

दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ।
रातो वोऽनुग्रहार्थाय[4] विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६

तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ।
भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १७

युधिष्ठिर[5] *उवाच*

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन्[6] पुण्यश्लोकान् महात्मनः ।
अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८

ब्राह्मणा ऊचुः

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ।
ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥ १९

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ।
यशो वितनिता[7] स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥ २०

धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ।
हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ २१

मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ।
तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २२

पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ।
आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥ २३

सर्वसद्गुणमाहात्म्ये[8] एष कृष्णमनुव्रतः ।
रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥ २४

उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मङ्गलवाचन और जातकर्म-संस्कार करवाये ॥ १३ ॥ महाराज युधिष्ठिर दानके योग्य समयको जानते थे। उन्होंने प्रजातीर्थ * नामक कालमें अर्थात् नाल काटनेके पहले ही ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गौएँ, पृथ्वी, गाँव, उत्तम जातिके हाथी-घोड़े और उत्तम अन्नका दान दिया ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनयी युधिष्ठिरसे कहा—'पुरुवंश-शिरोमणे ! कालकी दुर्निवार गतिसे यह पवित्र पुरुवंश मिटना ही चाहता था, परन्तु तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये भगवान् विष्णुने यह बालक देकर इसकी रक्षा कर दी ॥ १५-१६ ॥ इसीलिये इसका नाम विष्णुरात होगा। निस्सन्देह यह बालक संसारमें बड़ा यशस्वी, भगवान्का परम भक्त और महापुरुष होगा' ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—महात्माओ ! यह बालक क्या अपने उज्ज्वल यशसे हमारे वंशके पवित्रकीर्ति महात्मा राजर्षियोंका अनुसरण करेगा ? ॥ १८ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—धर्मराज ! यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करेगा तथा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ होगा ॥ १९ ॥ यह उशीनर-नरेश शिबिके समान दाता और शरणागतवत्सल होगा तथा याज्ञिकोंमें दुष्यन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलायेगा ॥ २० ॥ धनुर्धरोंमें यह सहस्रबाहु अर्जुन और अपने दादा पार्थके समान अग्रगण्य होगा। यह अग्निके समान दुर्धर्ष और समुद्रके समान दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ यह सिंहके समान पराक्रमी, हिमाचलकी तरह आश्रय लेनेयोग्य, पृथ्वीके सदृश तितिक्षु और माता-पिताके समान सहनशील होगा ॥ २२ ॥ इसमें पितामह ब्रह्माके समान समता रहेगी, भगवान् शंकरकी तरह यह कृपालु होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेमें यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समान होगा ॥ २३ ॥ यह समस्त सद्गुणोंकी महिमा धारण करनेमें श्रीकृष्णका अनुयायी होगा, रन्तिदेवके समान उदार होगा और ययातिके समान धार्मिक होगा ॥ २४ ॥

धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः[1]।
आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः॥ २५

राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम्।
निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात्॥ २६

तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात्।
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः॥ २७

जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ।
हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाकुतो भयम्॥ २८

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः।
लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान्॥ २९

स एष लोके विख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः।
गर्भे[2] दृष्टमनुध्यायन् परीक्षेत नरेष्विह॥ ३०

स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः।
आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम्॥ ३१

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया।
राजालब्धधनो[3] दध्यावन्यत्र[4] करदण्डयोः॥ ३२

तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः।
धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि[5] भूरिशः॥ ३३

तेन सम्भृतसम्भारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो[6] यज्ञैः समयजद्धरिम्॥ ३४

आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम्।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया॥ ३५

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णाया सह बन्धुभिः।
ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्जुनो यदुभिर्वृतः[7]॥ ३६

धैर्यमें बलिके समान और भगवान् श्रीकृष्णके प्रति दृढ़ निष्ठामें यह प्रह्लादके समान होगा। यह बहुत-से अश्वमेध-यज्ञोंका करनेवाला और वृद्धोंका सेवक होगा॥ २५॥ इसके पुत्र राजर्षि होंगे। मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको यह दण्ड देगा। यह पृथ्वीमाता और धर्मकी रक्षाके लिये कलियुगका भी दमन करेगा॥ २६॥ ब्राह्मणकुमारके शापसे तक्षकके द्वारा अपनी मृत्यु सुनकर यह सबकी आसक्ति छोड़ देगा और भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेगा॥ २७॥ राजन्! व्यासनन्दन शुकदेवजीसे यह आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करेगा और अन्तमें गङ्गातटपर अपने शरीरको त्यागकर निश्चय ही अभयपद प्राप्त करेगा॥ २८॥

ज्यौतिषशास्त्रके विशेषज्ञ ब्राह्मण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार बालकके जन्मलग्नका फल बतलाकर और भेंट-पूजा लेकर अपने-अपने घर चले गये॥ २९॥ वही यह बालक संसारमें परीक्षित्‌के नामसे प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि वह समर्थ बालक गर्भमें जिस पुरुषका दर्शन पा चुका था, उसका स्मरण करता हुआ लोगोंमें उसीकी परीक्षा करता रहता था कि देखें इनमेंसे कौन-सा वह है॥ ३०॥ जैसे शुक्ल-पक्षमें दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा अपनी कलाओंसे पूर्ण होता हुआ बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके लालन-पालनसे क्रमशः अनुदिन बढ़ता हुआ शीघ्र ही सयाना हो गया॥ ३१॥

इसी समय स्वजनोंके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना करनेका विचार किया, परन्तु प्रजासे वसूल किये हुए कर और दण्ड (जुर्माने) की रकमके अतिरिक्त और धन न होनेके कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये॥ ३२॥ उनका अभिप्राय समझकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे उनके भाई उत्तर दिशामें राजा मरुत्त और ब्राह्मणोंद्वारा छोड़ा हुआ * बहुत-सा धन ले आये॥ ३३॥ उससे यज्ञकी सामग्री एकत्र करके धर्मभीरु महाराज युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध-यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा की॥ ३४॥ युधिष्ठिरके निमन्त्रणसे पधारे हुए भगवान् ब्राह्मणोंद्वारा उनका यज्ञ सम्पन्न कराकर अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रसन्नताके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे॥ ३५॥ शौनकजी! इसके बाद भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीसे अनुमति लेकर अर्जुनके साथ यदुवंशियोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाके लिये प्रस्थान किया॥ ३६॥

——::x::——

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना

सूत उवाच

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम्।
ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥ १

यावतः[१] कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः।
जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २

तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः[२]।
धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३

गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा चोत्तरा कृपी।
अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४

प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम्।
अभिसंगम्य विधिवत् परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥ ५

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः।
राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥ ६

तं[३]भुक्तवन्तं विश्रान्तमासीनं सुखमासने।
प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां[४] च शृण्वताम् ॥ ७

युधिष्ठिर[५] *उवाच*

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान्।
विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८

कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम्।
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो[६]।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन[७] गदाभृता ॥ १०

सूतजी कहते हैं—विदुरजी तीर्थयात्रामें महर्षि मैत्रेयसे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आये। उन्हें जो कुछ जाननेकी इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी थी ॥ १ ॥ विदुरजीने मैत्रेय ऋषिसे जितने प्रश्न किये थे, उनका उत्तर सुननेके पहले ही श्रीकृष्णमें अनन्य भक्ति हो जानेके कारण वे उत्तर सुननेसे उपराम हो गये ॥ २ ॥ शौनकजी ! अपने चाचा विदुरजीको आया देख धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी तथा पाण्डव-परिवारके अन्य सभी नर-नारी और अपने पुत्रोंसहित दूसरी स्त्रियाँ—सब-के-सब बड़ी प्रसन्नतासे, मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो—ऐसा अनुभव करते हुए उनकी अगवानीके लिये सामने गये। यथायोग्य आलिङ्गन और प्रणामादिके द्वारा सब उनसे मिले और विरहजनित उत्कण्ठासे कातर होकर सबने प्रेमके आँसू बहाये। युधिष्ठिरने आसनपर बैठाकर उनका यथोचित सत्कार किया ॥ ३—६ ॥ जब वे भोजन एवं विश्राम करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे थे तब युधिष्ठिरने विनयसे झुककर सबके सामने ही उनसे कहा ॥ ७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—चाचाजी ! जैसे पक्षी अपने अंडोंको पंखोंकी छायाके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते हैं, वैसे ही आपने अत्यन्त वात्सल्यसे अपने कर-कमलोंकी छत्रछायामें हमलोगोंको पाला-पोसा है। बार-बार आपने हमें और हमारी माताको विषदान और लाक्षागृहके दाह आदि विपत्तियोंसे बचाया है। क्या आप कभी हम लोगोंकी भी याद करते रहे हैं ? ॥ ८ ॥ आपने पृथ्वीपर विचरण करते समय किस वृत्तिसे जीवन-निर्वाह किया ? आपने पृथ्वीतलपर किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रोंका सेवन किया ? ॥ ९ ॥ प्रभो ! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्‌के द्वारा तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं ॥ १० ॥

अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः ।
दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ ११

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् ।
यथानुभूतं क्रमशो[1] विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२

नन्वप्रियं दुर्विषहं[2] नृणां स्वयमुपस्थितम् ।
नावेदयत्[3] सकरुणो दुःखितान् द्रष्टुमक्षमः ॥ १३

कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम्[4] ।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४

अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ।
यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥ १५

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम्[5] ।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ।
अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १७

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८

प्रतिक्रिया[6] न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ।
स एव भगवान् कालः सर्वेषां नः[7] समागतः ॥ १९

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ।
जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २०

पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥ २१

चाचाजी ! आप तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका भी अवश्य ही गये होंगे। वहाँ हमारे सुहृद् एवं भाई-बन्धु यादवलोग, जिनके एकमात्र आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं, अपनी नगरीमें सुखसे तो हैं न ? आपने यदि जाकर देखा नहीं होगा तो सुना तो अवश्य ही होगा ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर विदुरजीने तीर्थों और यदुवंशियोंके सम्बन्धमें जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया था, सब क्रमसे बतला दिया, केवल यदुवंशके विनाशकी बात नहीं कही ॥ १२ ॥ करुणहृदय विदुरजी पाण्डवोंको दुःखी नहीं देख सकते थे। इसलिये उन्होंने यह अप्रिय एवं असह्य घटना पाण्डवोंको नहीं सुनायी; क्योंकि वह तो स्वयं ही प्रकट होनेवाली थी ॥ १३ ॥

पाण्डव विदुरजीका देवताके समान सेवा-सत्कार करते थे। वे कुछ दिनोंतक अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको कल्याण-कामनासे सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक हस्तिनापुरमें ही रहे ॥ १४ ॥ विदुरजी तो साक्षात् धर्मराज थे, माण्डव्य ऋषिके शापसे ये सौ वर्षके लिये शूद्र बन गये थे* । इतने दिनोंतक यमराजके पदपर अर्यमा थे और वही पापियों-को उचित दण्ड देते थे ॥ १५ ॥ राज्य प्राप्त हो जानेपर अपने लोकपालों-सरीखे भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिर वंशधर परीक्षित्को देखकर अपनी अतुल सम्पत्तिसे आनन्दित रहने लगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम-धंधोंमें रम गये और उन्हींके पीछे एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि अनजानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है; अब देखते-देखते उनके सामने वह समय आ पहुँचा जिसे कोई टाल नहीं सकता ॥ १७ ॥

परन्तु विदुरजीने कालकी गति जानकर अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज ! देखिये, अब बड़ा भयंकर समय आ गया है, झटपट यहाँसे निकल चलिये ॥ १८ ॥ हम सब लोगोंके सिरपर वह सर्वसमर्थ काल मँडराने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है ॥ १९ ॥ कालके वशीभूत होकर जीवका अपने प्रियतम प्राणोंसे भी बात-की-बातमें वियोग हो जाता है; फिर धन, जन आदि दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ॥ २० ॥ आपके चाचा, ताऊ, भाई, सगे-सम्बन्धी और पुत्र—सभी मारे गये, आपकी उम्र भी ढल चुकी, शरीर बुढ़ापेका शिकार हो गया, आप पराये

---

१. प्रा० पा०—भ्रमतो । २. प्रा० पा०—दुर्विषह्यं । ३. प्रा० पा०—न्यवेदयत् । ४. प्रा० पा०—स्वकैः । ५. प्रा० पा०— कुलोद्वहम् । ६. प्रा० पा०—प्रतिक्रियां न पश्येऽहं कुतश्चित् । ७. प्रा० पा०—वः ।

* एक समय किसी राजाके अनुचरोंने कुछ चोरोंको माण्डव्य ऋषिके आश्रमपर पकड़ा। उन्होंने समझा कि ऋषि भी चोरोंमें शामिल होंगे। अतः वे भी पकड़ लिये गये और राजाज्ञासे सबके साथ उनको भी शूलीपर चढ़ा दिया गया। राजाको यह पता लगते ही कि ये महात्मा हैं—ऋषिको शूलीसे उतरवा दिया और हाथ जोड़कर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया। माण्डव्यजीने यमराजके पास जाकर पूछा—'मुझे किस पापके फलस्वरूप यह दण्ड मिला? यमराजने बताया कि 'आपने लड़कपनमें एक टिड्डीको कुशकी नोकसे छेद

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान्।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत्॥ २२

अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः।
हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत्॥ २३

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः।
परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव॥ २४

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः।
अविज्ञातगतिर्जह्यात्[1] स वै धीर उदाहृतः॥ २५

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स[2] नरोत्तमः॥ २६

अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान्।
इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः॥ २७

एवं राजा विदुरेणानुजेन
प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो
निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा॥ २८

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री
पतिव्रता चानुजगाम साध्वी।
हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं
मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः[3]॥ २९

अजातशत्रुः कृतमैत्रो[4] हुताग्नि-
र्विप्रान् नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः[5]।
गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय
न[6] चापश्यत्पितरौ सौबलीं च॥ ३०

तत्र सञ्जयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः।
गावल्गणे क्व नस्तातो[7] वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः॥ ३१

घरमें पड़े हुए हैं॥ २१॥ ओह! इस प्राणीको जीवित रहनेकी कितनी प्रबल इच्छा होती है! इसीके कारण तो आप भीमका दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन बिता रहे हैं॥ २२॥ जिनको आपने आगमें जलानेकी चेष्टाकी, विष देकर मार डालना चाहा, भरी सभामें जिनकी विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि और धन छीन लिये, उन्हींके अन्नसे पले हुए प्राणोंको रखनेमें क्या गौरव है॥ २३॥ आपके अज्ञानकी हद हो गयी कि अब भी आप जीना चाहते हैं! परन्तु आपके चाहनेसे क्या होगा; पुराने वस्त्रकी तरह बुढ़ापेसे गला हुआ आपका शरीर आपके न चाहनेपर भी क्षीण हुआ जा रहा है॥ २४॥ अब इस शरीरसे आपका कोई स्वार्थ सधनेवाला नहीं है; इसमें फँसिये मत, इसकी ममताका बन्धन काट डालिये। जो संसारके सम्बन्धियोंसे अलग रहकर उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करता है, वही धीर कहा गया है॥ २५॥ चाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके समझानेसे—जो इस संसारको दुःखरूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरणको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌को धारणकर संन्यासके लिये घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है॥ २६॥ इसके आगे जो समय आनेवाला है, वह प्रायः मनुष्योंके गुणोंको घटानेवाला होगा; इसलिये आप अपने कुटुम्बियोंसे छिपकर उत्तराखण्डमें चले जाइये'॥ २७॥

जब छोटे भाई विदुरने अंधे राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार समझाया, तब उनकी प्रज्ञाके नेत्र खुल गये; वे भाई-बन्धुओंके सुदृढ़ स्नेह-पाशोंको काटकर अपने छोटे भाई विदुरके दिखलाये हुए मार्गसे निकल पड़े॥ २८॥ जब परम पतिव्रता सुबलनन्दिनी गान्धारीने देखा कि मेरे पतिदेव तो उस हिमालयकी यात्रा कर रहे हैं, जो संन्यासियोंको वैसा ही सुख देता है, जैसा वीर पुरुषोंको लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके द्वारा किये हुए न्यायोचित प्रहारसे होता है, तब वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं॥ २९॥

अजातशत्रु युधिष्ठिरने प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और उन्हें तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान दिया। इसके बाद जब वे गुरुजनोंकी चरणवन्दनाके लिये राजमहलमें गये, तब उन्हें धृतराष्ट्र, विदुर तथा गान्धारीके दर्शन नहीं हुए॥ ३०॥ युधिष्ठिरने उद्विग्नचित्त होकर वहीं बैठे हुए सञ्जयसे पूछा—'सञ्जय! मेरे वे वृद्ध और नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहाँ हैं?॥ ३१॥

दिया था, इसीलिये ऐसा हुआ।' इसपर मुनिने कहा—'मैंने अज्ञानवश ऐसा किया होगा, उस छोटेसे अपराधके लिये तुमने मुझे बड़ा कठोर दण्ड दिया। इसलिये तुम सौ वर्षतक शूद्रयोनिमें रहोगे।' माण्डव्यजीके इस शापसे ही यमराजने विदुरके रूपमें अवतार लिया था।

१. प्रा० पा०—मतिं०। २. प्रा० पा०—सम्यक् प्रव्र०। ३. प्रा० पा०—सम्प्रसारम्। ४. प्रा० पा०—कृतमैत्रसत्क्रियो विप्रान्। ५. प्रा० पा०—वसु। ६. प्रा० पा०—परं न पश्यत् पितरौ सौबलीं च। ७. प्रा० पा०—यातोऽसौ।

अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत्[1]।
अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया।
आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत्॥ ३२

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून्।
अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गताविताः॥ ३३

सूत उवाच

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः।
आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः॥ ३४

विमृज्याश्रूणि[2] पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना।
अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन्॥ ३५

सञ्जय[3] उवाच

नाहं[4] वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन।
गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः॥ ३६

अथाजगाम भगवान् नारदः सहतुम्बुरुः।
प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव॥ ३७

युधिष्ठिर उवाच

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गताविताः।
अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी॥ ३८

कर्णधार इवापारे भगवान् पारदर्शकः।
अथाबभाषे भगवान् नारदो मुनिसत्तमः॥ ३९

मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत्।
लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः।
स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च॥ ४०

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः।
वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः॥ ४१

पुत्रशोकसे पीड़ित दुखिया माता गान्धारी और मेरे परम हितैषी चाचा विदुरजी कहाँ चले गये ? ताऊजी अपने पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखी थे। मैं बड़ा मन्दबुद्धि हूँ— कहीं मुझसे किसी अपराधकी आशङ्का करके वे माता गान्धारीसहित गङ्गाजीमें तो नहीं कूद पड़े॥ ३२॥ जब हमारे पिता पाण्डुकी मृत्यु हो गयी थी और हमलोग नन्हे-नन्हे बच्चे थे, तब इन्हीं दोनों चाचाओंने बड़े-बड़े दुःखोंसे हमें बचाया था। वे हमपर बड़ा ही प्रेम रखते थे। हाय ! वे यहाँसे कहाँ चले गये ?'॥ ३३॥

सूतजी कहते हैं—सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्रको न पाकर कृपा और स्नेहकी विकलतासे अत्यन्त पीड़ित और विरहातुर हो रहे थे। वे युधिष्ठिरको कुछ उत्तर न दे सके॥ ३४॥ फिर धीरे-धीरे बुद्धिके द्वारा उन्होंने अपने चित्तको स्थिर किया, हाथोंसे आँखोंके आँसू पोंछे और अपने स्वामी धृतराष्ट्रके चरणोंका स्मरण करते हुए युधिष्ठिरसे कहा॥ ३५॥

सञ्जय बोले—कुलनन्दन ! मुझे आपके दोनों चाचा और गान्धारीके सङ्कल्पका कुछ भी पता नहीं है। महाबाहो ! मुझे तो उन महात्माओंने ठग लिया॥ ३६॥ सञ्जय इस प्रकार कह ही रहे थे कि तुम्बुरुके साथ देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका सम्मान करते हुए बोले—॥ ३७॥

युधिष्ठिरने कहा—'भगवन् ! मुझे अपने दोनों चाचाओंका पता नहीं लग रहा है; न जाने वे दोनों और पुत्र-शोकसे व्याकुल तपस्विनी माता गान्धारी यहाँसे कहाँ चले गये॥ ३८॥ भगवन् ! अपार समुद्रमें कर्णधारके समान आप ही हमारे पारदर्शक हैं।' तब भगवान्‌के परमभक्त भगवन्मय देवर्षि नारदने कहा—॥ ३९॥ 'धर्मराज ! तुम किसीके लिये शोक मत करो क्योंकि यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है॥ ४०॥ जैसे बैल बड़ी रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नथे रहकर अपने स्वामीका भार ढोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी वर्णाश्रमादि अनेक प्रकारके नामोंसे वेदरूप रस्सीमें बँधकर ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं॥ ४१॥

---

१. प्रा० पा०—सुकृत्। २. प्रा० पा०—विमृज्य पाणिनाश्रूणि विष्ट०। ३. प्राचीन प्रतिमें 'सञ्जय उवाच' पाठ नहीं है। ४. प्राचीन प्रतिमें 'नाहं वेद'····'से लेकर'····'वहन्ति बलिमीशितुः॥' यहाँतक पाँच श्लोक इस प्रकार मिलते हैं—

'अहं व्यवसितं रात्रौ पित्रोस्ते कुलनन्दन। न वेद साध्व्या गान्धार्या मुषितोऽस्मि महात्मभिः॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र नारदः प्रत्यदृश्यत। वीणां वितन्वँ ध्वनयन् भगवान् सहतुम्बुरुः॥
राजा नत्वोपनीतार्घ्यः प्रत्युत्थायाभिवन्दितम्। परमासन आसीनं पौरवेन्द्रोऽभ्यभाषत॥
नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गताविति। कर्णधार इवापारे सीदतां पारदर्शकः॥
नारद उवाच—
'मा कञ्चन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत्। लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः॥

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४२

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ।
सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४३

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ।
कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥ ४४

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४५

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४६

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ।
अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४७

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः ।
कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥ ४८

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ।
तावद् यूयमवेक्षध्वं भवेद् यावदिहेश्वरः ॥ ४९

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया[1] ।
दक्षिणेन[2] हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५०

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात्[3] ।
सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः[4] प्रचक्षते ॥ ५१

स्नात्वानुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ।
अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥ ५२

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ।
हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥ ५३

जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्‌की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना-बिछुड़ना होता है ॥ ४२ ॥ तुम लोगोंको जीवरूपसे नित्य मानो या देहरूपसे अनित्य अथवा जडरूपसे अनित्य और चेतन- रूपसे नित्य अथवा शुद्धब्रह्मरूपमें नित्य-अनित्य कुछ भी न मानो—किसी भी अवस्थामें मोहजन्य आसक्तिके अतिरिक्त वे शोक करने योग्य नहीं हैं ॥ ४३ ॥ इसलिये धर्मराज ! वे दीन-दुःखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य मनकी विकलताको छोड़ दो ॥ ४४ ॥ यह पाञ्चभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। अजगरके मुँहमें पड़े हुए पुरुषके समान यह पराधीन शरीर दूसरोंकी रक्षा ही क्या कर सकता है ॥ ४५ ॥ हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और उनमें भी बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है ॥ ४६ ॥ इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयंप्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं। तुम केवल उन्हींको देखो ॥ ४७ ॥ महाराज ! समस्त प्राणियोंको जीवनदान देनेवाले वे ही भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४८ ॥ अब वे देवताओंका कार्य पूरा कर चुके हैं। थोड़ा-सा काम और शेष है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे प्रभु यहाँ हैं, तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो ॥ ४९ ॥

धर्मराज ! हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजीने अलग-अलग सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं ॥ ५०-५१ ॥ वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको विषयोंसे लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं ॥ ५३ ॥

विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ।
ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥ ५४

ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ।
निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।
तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ ५५

स वा अद्यतनाद् राजन् परतः पञ्चमेऽहनि ।
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥ ५६

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ।
बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनु वेक्ष्यति ॥ ५७

विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ।
हर्षशोकयुतस्तस्माद् गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८

इत्युक्त्वाथारुहत्[1] स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ।
युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥ ५९

उन्होंने अहङ्कारको बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ आत्मामें लीन करके उसे भी महाकाशमें घटाकाशके समान सर्वाधिष्ठान ब्रह्ममें एक कर दिया है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं, अतः तुम उनके मार्गमें विघ्नरूप मत बनना* ॥ ५४-५५ ॥ धर्मराज ! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा ॥ ५६ ॥ गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके मृतदेहको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी पतिका अनुगमन करती हुई उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी ॥ ५७ ॥ धर्मराज ! विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे ॥ ५८ ॥ देवर्षि नारद यों कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने उनके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके शोकको त्याग दिया ॥ ५९ ॥

—★—

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
नैमिषीयोपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः[2] ॥ १३ ॥

—★—

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शङ्का करना और अर्जुनका द्वारकासे लौटना

सूत उवाच

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं[3] च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १

व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः[4] ।
ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः[5] ॥ २

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः[6] ।
पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३

सूतजी कहते हैं—स्वजनोंसे मिलने और पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण अब क्या करना चाहते हैं—यह जाननेके लिये अर्जुन द्वारका गये हुए थे ॥ १ ॥ कई महीने बीत जानेपर भी अर्जुन वहाँसे लौटकर नहीं आये। धर्मराज युधिष्ठिरको बड़े भयङ्कर अपशकुन दीखने लगे ॥ २ ॥ उन्होंने देखा, कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उलटी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं ॥ ३ ॥

---

१. प्रा० पा०—इत्युक्त्वा चारुहत्। २. प्रा० पा०—प्राचीन प्रतिमें इसके पहले 'पारिक्षिते' इतना अधिक पाठ है। ३. प्रा० पा०—ज्ञातुं मायामनुष्यस्य वासुदेवस्य चेष्टितम्। ४. प्रा० पा०—पाण्डुसुतो नृपः। ५. प्रा० पा०—भृगूद्वह। ६. प्रा० पा०—धर्मणः।

* देवर्षि नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। वे धृतराष्ट्रके भविष्य-जीवनको वर्तमानकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हुए उसी रूपमें वर्णन कर रहे हैं। धृतराष्ट्र पिछली रातको ही हस्तिनापुरसे गये हैं, अतः यह वर्णन भविष्यका ही समझना चाहिये।

जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम्॥ ४

निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम्।
लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

सम्प्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया।
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्॥ ६

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा॥ ७

अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः।
यदाऽऽत्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति॥ ८

यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः।
आसन् सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात्॥ ९

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान्।
दारुणान्[1] शंसतोऽदूराद्भयं नो[2] बुद्धिमोहनम्॥ १०

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः।
वेपथुश्चापि हृदये आराद्धास्यन्ति विप्रियम्॥ ११

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलाननाः[3]।
मामङ्ग[4] सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत्[5]॥ १२

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे।
वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम॥ १३

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः।
प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रो[6] शून्यमिच्छतः॥ १४

धूम्रा दिशः[7] परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः।
निर्घातश्च[8] महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः॥ १५

सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता-माता, सगे सम्बन्धी, भाई और पति-पत्नीमें भी झगड़ा-टंटा रहने लगा है॥ ४॥ कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं, यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसेनसे कहा॥ ५॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन! अर्जुनको हमने द्वारका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर, पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं—इसका पता लगा आये और सम्बन्धियोंसे मिल भी आये॥ ६॥ तबसे सात महीने बीत गये; किन्तु तुम्हारे छोटे भाई अबतक नहीं लौट रहे हैं। मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है॥ ७॥ कहीं देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय तो नहीं आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं?॥ ८॥ उन्हीं भगवान्‌की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, संतान, शत्रुओंपर विजय और स्वर्गादि लोकोंका अधिकार प्राप्त हुआ है॥ ९॥ भीमसेन! तुम तो मनुष्योंमें व्याघ्रके समान बलवान् हो; देखो तो सही—आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने भयंकर अपशकुन हो रहे हैं। इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है॥ १०॥ प्यारे भीमसेन! मेरी बायीं जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है॥ ११॥ देखो, यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है! यह कुत्ता बिलकुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर चिल्ला रहा है॥ १२॥ भीमसेन! गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बायें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं॥ १३॥ यह मृत्युका दूत पेडुखी, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्ण-कठोर शब्दोंसे मेरे मनको कँपाते हुए विश्वको सूना कर देना चाहते हैं॥ १४॥ दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़ोंके साथ काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे

---

१. प्रा० पा०—घोरमाशंसतो। २. प्रा० पा०—मे। ३. प्रा० पा०—मरुणमभि०। ४. प्रा० पा०—ममाग्रे। ५. प्रा० पा०—भीत०। ६. प्रा० पा०—कुहानो रौद्रोऽसौ शून्यमिच्छति। ७. प्रा० पा०—दीप्ताः। ८. प्रा० पा०—तः सुमहां०।

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।
असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।
न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।
रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥ १९

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ।
इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ।
भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥ २०

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ।
अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ २१

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ।
राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ।
अधोवदनमब्बिन्दून् सृजन्तं नयनाब्जयोः ॥ २३

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ।
पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४

युधिष्ठिर उवाच

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ।
मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः[1] ॥ २५

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाथ मारिषः ।
मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥ २६

सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ।
आसते सस्नुषः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७

गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है ॥ १५ ॥ शरीरको छेदनेवाली एवं धूलिवर्षासे अंधकार फैलानेवाली आँधी चलने लगी है। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं ॥ १६ ॥ देखो ! सूर्यकी प्रभा मन्द पड़ गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी घनी भीड़में पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है ॥ १७ ॥ नदी, नद, तालाब और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयङ्कर काल न जाने क्या करेगा ॥ १८ ॥ बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं, गोशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर रो रही हैं। बैल भी उदास हो रहे हैं ॥ १९ ॥ देवताओंकी मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पसीना चूने लगता है और वे हिलती-डोलती भी हैं। भाई ! ये देश, गाँव, शहर, बगीचे, खानें और आश्रम श्रीहीन और आनन्दरहित हो गये हैं। पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी सूचना दे रहे हैं ॥ २० ॥ इन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि निश्चय ही यह भाग्यहीना भूमि भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे, जिनका सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वज्र अंकुशादि-विलक्षण चिह्न और किसीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी है ॥ २१ ॥ शौनकजी ! राजा युधिष्ठिर इन भयङ्कर उत्पातोंको देखकर मन-ही-मन चिन्तित हो रहे थे कि द्वारकासे लौटकर अर्जुन आये ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरने देखा, अर्जुन इतने आतुर हो रहे हैं जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे। मुँह लटका हुआ है, कमल-सरीखे नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं और शरीरमें बिलकुल कान्ति नहीं है। उनको इस रूपमें अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर घबरा गये। देवर्षि नारदकी बातें याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने ही अर्जुनसे पूछा ॥ २३-२४ ॥

युधिष्ठिरने कहा—'भाई ! द्वारकापुरीमें हमारे स्वजन-सम्बन्धी मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णिवंशी यादव कुशलसे तो हैं ? ॥ २५ ॥ हमारे माननीय नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं ? अपने छोटे भाईसहित मामा वसुदेवजी तो कुशलपूर्वक हैं ? ॥ २६ ॥ उनकी पत्नियाँ हमारी मामी देवकी आदि सातों बहिनें अपने पुत्रों और बहुओंके साथ आनन्दसे तो हैं ? ॥ २७ ॥

कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ।
हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥ २८

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ।
कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥ २९

प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ।
गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥ ३०

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥ ३१

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ।
सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२

अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ।
अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥ ३३

भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।
कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥ ३४

मङ्गलाय च[1] लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।
आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥ ३५

यद्बाहुदण्डगुप्तायां[2] स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः[3] ।
क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥ ३६

यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्य संख्ये त्रिदशास्तदाशिषो
हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥ ३७

यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो
यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्
सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८

जिनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वे राजा उग्रसेन अपने छोटे भाई देवकके साथ जीवित तो हैं न? हृदीक, उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित् आदि यादव-वीर सकुशल हैं न? यादवोंके प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं? ॥ २८-२९ ॥ वृष्णिवंशके सर्वश्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं? युद्धमें बड़ी फुर्ती दिखलानेवाले भगवान् अनिरुद्ध आनन्दसे हैं न? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीनन्दन साम्ब और अपने पुत्रोंके सहित ऋषभ आदि भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न? ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उद्धव आदि और दूसरे सुनन्द-नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, सब-के-सब सकुशल हैं न? हमसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले वे लोग कभी हमारा कुशल-मङ्गल भी पूछते हैं? ॥ ३२-३३ ॥

भक्तवत्सल ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके साथ द्वारकाकी सुधर्मा-सभामें सुखपूर्वक विराजते हैं न? ॥ ३४ ॥ वे आदिपुरुष बलरामजीके साथ संसारके परम मङ्गल, परम कल्याण और उन्नतिके लिये यदुवंशरूप क्षीरसागरमें विराजमान हैं। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णुभगवान्के पार्षदोंके समान विहार कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥ सत्यभामा आदि सोलह हजार रानियाँ प्रधानरूपसे उनके चरणकमलोंकी सेवामें ही रत रहकर उनके द्वारा युद्धमें इन्द्रादि देवताओंको भी हराकर इन्द्राणीके भोगयोग्य तथा उन्हींकी अभीष्ट पारिजातादि वस्तुओंका उपभोग करती हैं ॥ ३७ ॥ यदुवंशी वीर श्रीकृष्णके बाहुदण्डके प्रभावसे सुरक्षित रहकर निर्भय रहते हैं और बलपूर्वक लायी हुई बड़े-बड़े देवताओंके बैठने योग्य सुधर्मा सभाको अपने चरणोंसे आक्रान्त करते हैं ॥ ३८ ॥

कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ।
अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।
न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४०

कच्चित्त्वं[1] ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।
शरणोपसृतं[2] सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वासत्कृतां स्त्रियम् ।
पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥ ४२

अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं सम्भोज्यान् वृद्धबालकान्[3] ।
जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न[4] यदक्षमम् ॥ ४३

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४

भाई अर्जुन ! यह भी बताओ कि तुम स्वयं तो कुशलसे हो न ? मुझे तुम श्रीहीन-से दीख रहे हो; वहाँ बहुत दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई ? किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया ? ॥ ३९ ॥ कहीं किसीने दुर्भावपूर्ण अमङ्गल शब्द आदिके द्वारा तुम्हारा चित्त तो नहीं दुखाया ? अथवा किसी आशासे तुम्हारे पास आये हुए याचकोंको उनकी माँगी हुई वस्तु अथवा अपनी ओरसे कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके भी तुम नहीं दे सके ? ॥ ४० ॥ तुम सदा शरणागतोंकी रक्षा करते आये हो; कहीं किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े, रोगी, अबला अथवा अन्य किसी प्राणीका, जो तुम्हारी शरणमें आया हो, तुमने त्याग तो नहीं कर दिया ? ॥ ४१ ॥ कहीं तुमने अगम्या स्त्रीसे समागम तो नहीं किया ? अथवा गमन करनेयोग्य स्त्रीके साथ असत्कारपूर्वक समागम तो नहीं किया ? कहीं मार्गमें अपनेसे छोटे अथवा बराबरीवालोंसे हार तो नहीं गये ? ॥ ४२ ॥ अथवा भोजन करानेयोग्य बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुमने अकेले ही तो भोजन नहीं कर लिया ? मेरा विश्वास है कि तुमने ऐसा कोई निन्दित काम तो नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो ॥ ४३ ॥ हो-न-हो अपने परम प्रियतम अभिन्न-हृदय परम सुहृद् भगवान् श्रीकृष्णसे तुम रहित हो गये हो । इसीसे अपनेको शून्य मान रहे हो । इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुमको इतनी मानसिक पीड़ा हो ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
[5]युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कृष्णविरहव्यथित पाण्डवोंका परीक्षित्‌को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना

सूत उवाच

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ।
नानाशङ्कास्पदं[6] रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ।
विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ।
परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः[7] ॥ ३

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा अर्जुन एक तो पहले ही श्रीकृष्णके विरहसे कृश हो रहे थे, उसपर राजा युधिष्ठिरने उनकी विषादग्रस्त मुद्रा देखकर उसके विषयमें कई प्रकारकी आशङ्काएँ करते हुए प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी ॥ १ ॥ शोकसे अर्जुनका मुख और हृदय-कमल सूख गया था, चेहरा फीका पड़ गया था । वे उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें ऐसे डूब रहे थे कि बड़े भाईके प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर न दे सके ॥ २ ॥ श्रीकृष्णकी आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण वे बढ़ी हुई प्रेमजनित उत्कण्ठाके परवश हो रहे थे । रथ हाँकने, टहलने आदिके समय भगवान्‌ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्नहृदयता और प्रेमसे भरे हुए व्यवहार किये थे,

---

१. प्रा० पा०—रुदन्तं । २. प्रा० पा०—शरण्यो० । ३. प्रा० पा०—प्राचीन प्रतिमें बालवृद्धकान् । इसके बाद यह श्लोकार्ध अधिक है—'उपेक्ष्यातिथिभृत्यांश्च गर्भिण्यातुरकन्यकाः ।' ४. प्रा० पा०—कृतं वा यद् । ५. प्रा० पा०—पारीक्षितोपाख्याने युधिष्ठिरारिष्टदर्शनं चतु० । ६. प्रा० पा०—न शशाकास्य गदितुम् । ७. प्रा० पा०—सुसंनद्ध० ।

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन्।
नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा॥ ४

अर्जुन[१] *उवाच*

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा।
येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत्॥ ५

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः।
उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा॥ ६

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां
राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम्।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः
सज्जीकृतेन धनुषाधिगता[२] च कृष्णा॥ ७

यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदा-
मिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य।
लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया
दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते॥ ८

यत्तेजसा[३] नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे
आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः।
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा
यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते॥ ९

पत्न्यास्तवाधिमखकृत्प्रमहाभिषेक-
श्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम्।
स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या
यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः॥ १०

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्
दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग् यः।
शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं
तृप्तामंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः[४]॥ ११

उनकी याद-पर-याद आ रही थी; बड़े कष्टसे उन्होंने अपने शोकका वेग रोका, हाथसे नेत्रोंके आँसू पोंछे और फिर रुँधे हुए गलेसे अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे कहा॥ ३-४॥

अर्जुन बोले—महाराज! मेरे ममेरे भाई अथवा अत्यन्त घनिष्ठ मित्रका रूप धारणकर श्रीकृष्णने मुझे ठग लिया। मेरे जिस प्रबल पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्यमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया॥ ५॥ जैसे यह शरीर प्राणसे रहित होनेपर मृतक कहलाता है, वैसे ही उनके क्षणभरके वियोगसे यह संसार अप्रिय दीखने लगता है॥ ६॥ उनके आश्रयसे द्रौपदी-स्वयंवरमें राजा द्रुपदके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, धनुषपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था॥ ७॥ उनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवको उनकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका दान कर दिया और मय दानवकी निर्माण की हुई, अलौकिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी सभा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं॥ ८॥ दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमसेनने उन्हींकी शक्तिसे राजाओंके सिरपर पैर रखनेवाले अभिमानी जरासन्धका वध किया था; तदनन्तर उन्हीं भगवान्‌ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने महाभैरव-यज्ञमें बलि चढ़ानेके लिये बंदी बना रखा था। उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों प्रकारके उपहार दिये थे॥ ९॥ महारानी द्रौपदी राजसूय यज्ञके महान् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन सुन्दर केशोंको, जिन्हें दुष्टोंने भरी सभामें छूनेका साहस किया था, बिखेरकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन धूर्तोंकी स्त्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विधवा हो गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों खोल देने पड़े॥ १०॥ वनवासके समय हमारे वैरी दुर्योधनके षड्यन्त्रसे दस हजार शिष्योंको साथ बिठाकर भोजन करनेवाले महर्षि दुर्वासाने हमें दुस्तर संकटमें डाल दिया था। उस समय उन्होंने द्रौपदीके पात्रमें बची हुई शाककी एक पत्तीका ही भोग लगाकर हमारी रक्षा की। उनके ऐसा करते ही नदीमें स्नान करती हुई मुनिमण्डलीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी तो बात ही क्या, सारी त्रिलोकी ही तृप्त हो गयी है * ॥ ११॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें नहीं है। २. प्रा० पा०—धनुषा विजिता। ३. प्राचीन प्रतिमें 'यत्तेजसा' से लेकर 'बलिमध्वरे ते' तक एक श्लोक नहीं है। ४. प्रा० पा०—गात्रः।

* एक बार राजा दुर्योधनने महर्षि दुर्वासाकी बड़ी सेवा की। उससे प्रसन्न होकर मुनिने दुर्योधनसे वर माँगनेको कहा। दुर्योधनने यह सोचकर कि ऋषिके शापसे पाण्डवोंको नष्ट करनेका अच्छा अवसर है, मुनिसे कहा—"ब्रह्मन्! हमारे कुलमें युधिष्ठिर प्रधान हैं, आप अपने दस सहस्र शिष्योंसहित उनका आतिथ्य स्वीकार करें। किंतु आप उनके यहाँ उस समय जायँ जबकि द्रौपदी भोजन कर चुकी हो, जिससे उसे भूखका कष्ट न

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणि-
र्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं[1] मे ।
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण
प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ॥ १२

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं
गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।
सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ
तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥ १३

यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपार-
मेको रथेन ततरेऽहमतार्यसत्त्वम् ।
प्रत्याहृतं बहु[2] धनं च मया परेषां
तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्र[3]-
राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।
अग्रेचरो मम विभो रथयूथपाना-
मायुर्मनांसि च दृशा सह ओज[4] आर्च्छत् ॥ १५

यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्ण-
नप्तृत्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि
नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥ १६

उनके प्रतापसे मैंने युद्धमें पार्वतीसहित भगवान् शङ्करको आश्चर्यमें डाल दिया तथा उन्होंने मुझको अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया; साथ ही दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। और तो क्या, उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमें गया और देवराज इन्द्रकी सभामें उनके बराबर आधे आसनपर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया ॥ १२ ॥ उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनोंतक रह गया, तब इन्द्रके साथ समस्त देवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव धारण करनेवाली भुजाओंका निवातकवच आदि दैत्योंको मारनेके लिये आश्रय लिया। महाराज ! यह सब जिनकी महती कृपाका फल था, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आज ठग लिया ? ॥ १३ ॥

महाराज ! कौरवोंकी सेना भीष्म-द्रोण आदि अजेय महामत्स्योंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान दुस्तर थी, परंतु उनका आश्रय ग्रहण करके अकेले ही रथपर सवार हो मैं उसे पार कर गया। उन्हींकी सहायतासे, आपको याद होगा, मैंने शत्रुओंसे राजा विराटका सारा गोधन तो वापिस ले ही लिया, साथ ही उनके सिरोंपरसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अङ्गोंके अलङ्कारतक छीन लिये थे ॥ १४ ॥ भाईजी ! कौरवोंकी सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टिसे ही उन महारथी यूथपतियोंकी आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे ॥ १५ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाह्लीक आदि वीरोंने मुझपर अपने कभी न चूकनेवाले अस्त्र चलाये थे; परंतु जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके अस्त्र-शस्त्र भगवद्भक्त प्रह्लादका स्पर्श नहीं करते थे, वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझे छूतक नहीं सके। यह श्रीकृष्णके भुजदण्डोंकी छत्रछायामें रहनेका ही प्रभाव था ॥ १६ ॥

उठाना पड़े।" द्रौपदीके पास सूर्यकी दी हुई एक ऐसी बटलोई थी, जिसमें सिद्ध किया हुआ अन्न द्रौपदीके भोजन कर लेनेसे पूर्व शेष नहीं होता था; किन्तु उसके भोजन करनेके बाद वह समाप्त हो जाता था। दुर्वासाजी दुर्योधनके कथनानुसार उसके भोजन कर चुकनेपर मध्याह्नमें अपनी शिष्यमण्डलीसहित पहुँचे और धर्मराजसे बोले—"हम नदीपर स्नान करने जाते हैं, तुम हमारे लिये भोजन तैयार रखना।" इससे द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई और उसने अति आर्त होकर आर्तबन्धु भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। भगवान् तुरंत ही अपना विलासभवन छोड़कर द्रौपदीकी झोंपड़ीपर आये और उससे बोले—"कृष्णे ! आज बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।" द्रौपदी भगवान्‌की इस अनुपम दयासे गद्गद हो गयी और बोली, "प्रभो ! मेरा बड़ा भाग्य है, जो आज विश्वम्भरने मुझसे भोजन माँगा; परन्तु क्या करूँ ? अब तो कुटीमें कुछ भी नहीं है।" भगवान्‌ने कहा—"अच्छा, वह पात्र तो लाओ; उसमें कुछ होगा ही।" द्रौपदी बटलोई ले आयी; उसमें कहीं शाकका एक कण लगा था। विश्वात्मा हरिने उसीको भोग लगाकर त्रिलोकीको तृप्त कर दिया और भीमसेनसे कहा कि मुनिमण्डलीको भोजनके लिये बुला लाओ। किन्तु मुनिगण तो पहले ही तृप्त होकर भाग गये थे।

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं
न प्राहरन् यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७

नर्माण्युदारुचिरस्मितशोभितानि[1]
हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादि-
ष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं
सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २०

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं
भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ।
विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २३

प्रायेणैतद् भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ।
मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥ २४

श्रेष्ठ पुरुष संसारसे मुक्त होनेके लिये जिनके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, अपने-आपतकको दे डालनेवाले उन भगवान्‌को मुझ दुर्बुद्धिने सारथितक बना डाला। अहा ! जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और मैं रथसे उतरकर पृथ्वीपर खड़ा था, उस समय बड़े-बड़े महारथी शत्रु भी मुझपर प्रहार न कर सके; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी ॥ १७ ॥ महाराज ! माधवके उन्मुक्त और मधुर मुसकानसे युक्त, विनोदभरे एवं हृदयस्पर्शी वचन और उनका मुझे 'पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन' आदि कहकर पुकारना, मुझे याद आनेपर मेरे हृदयमें उथल-पुथल मचा देते हैं ॥ १८ ॥ सोने, बैठने, टहलने और अपने सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आदि करनेमें हम प्रायः एक साथ रहा करते थे। किसी-किसी दिन मैं व्यंग्यसे उन्हें कह बैठता, 'मित्र ! तुम तो बड़े सत्यवादी हो !' उस समय भी वे महापुरुष अपनी महानुभावताके कारण, जैसे मित्र अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, मुझ दुर्बुद्धिके अपराधोंको सह लिया करते थे ॥ १९ ॥ महाराज ! जो मेरे सखा, प्रिय मित्र—नहीं-नहीं मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्‌से मैं रहित हो गया हूँ। भगवान्‌की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परंतु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका ॥ २० ॥ वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, जिसके सामने बड़े-बड़े राजालोग सिर झुकाया करते थे। श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सारशून्य हो गये—ठीक उसी तरह, जैसे भस्ममें डाली हुई आहुति, कपटभरी सेवा और ऊसरमें बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है ॥ २१ ॥

राजन् ! आपने द्वारकावासी अपने जिन सुहृद्-सम्बन्धियोंकी बात पूछी है, वे ब्राह्मणोंके शापवश मोहग्रस्त हो गये और वारुणी मदिराके पानसे मदोन्मत्त होकर अपरिचितोंकी भाँति आपसमें ही एक-दूसरेसे भिड़ गये और घूँसोंसे मार-पीट करके सब-के-सब नष्ट हो गये। उनमेंसे केवल चार-पाँच ही बचे हैं ॥ २२-२३ ॥ वास्तवमें यह सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की ही लीला है कि संसारके प्राणी परस्पर एक-दूसरेका पालन-पोषण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं ॥ २४ ॥

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।
दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५

एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः ।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ॥ २६

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ।
हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥ २७

सूत उवाच

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।
सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥ २८

वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ।
भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९

गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् सङ्ग्राममूर्धनि ।
कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद् विभुः ॥ ३०

विशोको ब्रह्मसम्पत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ।
लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसम्भवः ॥ ३१

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ।
स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२

पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं
नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे
निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३

ययाहरद्[1] भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ।
कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४

यथा मत्स्यादिरूपाणी धत्ते जह्याद् यथा नटः ।
भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥ ३५

राजन् ! जिस प्रकार जलचरोंमें बड़े जन्तु छोटोंको, बलवान् दुर्बलोंको एवं बड़े और बलवान् भी परस्पर एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार अतिशय बली और बड़े यदुवंशियोंके द्वारा भगवान्‌ने दूसरे राजाओंका संहार कराया। तत्पश्चात् यदुवंशियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे यदुवंशीका नाश कराके पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतार दिया ॥ २५-२६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थीं; स्मरण आते ही वे हमारे चित्तका हरण कर लेती हैं ॥ २७ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करते-करते अर्जुनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशान्त हो गयी ॥ २८ ॥ उनकी प्रेममयी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके अहर्निश चिन्तनसे अत्यन्त बढ़ गयी। भक्तिके वेगने उनके हृदयको मथकर उसमेंसे सारे विकारोंको बाहर निकाल दिया ॥ २९ ॥ उन्हें युद्धके प्रारम्भमें भगवान्‌के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुनः स्मरण हो आया, जिसको कालके व्यवधान और कर्मोंके विस्तारके कारण प्रमादवश कुछ दिनोंके लिये विस्मृति हो गयी थी ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिसे मायाका आवरण भङ्ग होकर गुणातीत अवस्था प्राप्त हो गयी। द्वैतका संशय निवृत्त हो गया। सूक्ष्मशरीर भङ्ग हुआ। वे शोक एवं जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वथा मुक्त हो गये ॥ ३१ ॥

भगवान्‌के स्वधाम-गमन और यदुवंशके संहारका वृत्तान्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया ॥ ३२ ॥ कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंके नाश और भगवान्‌के स्वधाम-गमनकी बात सुनकर अनन्य भक्तिसे अपने हृदयको भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और सदाके लिये इस जन्म-मृत्युरूप संसारसे अपना मुँह मोड़ लिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने लोक-दृष्टिमें जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार उतारा था, उसका वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई काँटेसे काँटा निकालकर फिर दोनोंको फेंक दे। भगवान्‌की दृष्टिमें दोनों ही समान थे ॥ ३४ ॥ जैसे वे नटके समान मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और फिर उनका त्याग कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार दूर किया था, उसे त्याग भी दिया ॥ ३५ ॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें 'ययाहरद्भुवो भारं' से लेकर 'जहौ तच्च कलेवरम् ॥' तक दो श्लोक नहीं हैं; विजयध्वजने भी इन दोनों श्लोकोंको तथा इनके पूर्ववर्ती श्लोकको भी नहीं माना है। भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य चिन्मय स्वरूपभूत शरीरका त्याग सम्भव नहीं, अतएव इन दो श्लोकोंको भक्तोंने नहीं माना है। प्राचीन प्रतिमें न होनेसे भी यही सिद्ध होता है।

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं
जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसा-
मधर्महेतुः[1] कलिरन्ववर्तत ॥३६

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः[2]
पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथाऽऽत्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसना-
द्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः[3] सुसमं गुणैः ।
तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९

विसृज्य तत्र तत् सर्वं दुकूलवलयादिकम् ।
निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ।
मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ।
सर्वमात्मन्यजुहवीद् ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः ।
दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥४३

अनपेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ।
उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ।
हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥४४

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः[4] कृतनिश्चयाः ।
कलिनाधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५

जिनकी मधुर लीलाएँ श्रवण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णने जब अपने मनुष्यके-से शरीरसे इस पृथ्वीका परित्याग कर दिया, उसी दिन विचारहीन लोगोंको अधर्ममें फँसानेवाला कलियुग आ धमका ॥ ३६ ॥ महाराज युधिष्ठिरसे कलियुगका फैलना छिपा न रहा । उन्होंने देखा—देशमें, नगरमें, घरोंमें और प्राणियोंमें लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मोंकी बढ़ती हो गयी है। तब उन्होंने महाप्रस्थानका निश्चय किया ॥ ३७ ॥ उन्होंने अपने विनयी पौत्र परीक्षित्को, जो गुणोंमें उन्हींके समान थे, समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीके सम्राट् पदपर हस्तिनापुरमें अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने मथुरामें शूरसेनाधिपतिके रूपमें अनिरुद्धके पुत्र वज्रका अभिषेक किया । इसके बाद समर्थ युधिष्ठिरने प्राजापत्य यज्ञ करके आहवनीय आदि अग्नियोंको अपनेमें लीन कर दिया अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मसे मुक्त होकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिरने अपने सब वस्त्राभूषण आदि वहीं छोड़ दिये एवं ममता और अहंकारसे रहित होकर समस्त बन्धन काट डाले ॥ ४० ॥ उन्होंने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें और अपानको उसकी क्रियाके साथ मृत्युमें तथा मृत्युको पञ्चभूतमय शरीरमें लीन कर लिया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार शरीरको मृत्युरूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिला दिया, त्रिगुणको मूल प्रकृतिमें, सर्वकारणरूपा प्रकृतिको आत्मामें और आत्माको अविनाशी ब्रह्ममें विलीन कर दिया । उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप है ॥ ४२ ॥ इसके पश्चात् उन्होंने शरीरपर चीर-वस्त्र धारण कर लिया, अन्न-जलका त्याग कर दिया, मौन ले लिया और केश खोलकर बिखेर लिये । वे अपने रूपको ऐसा दिखाने लगे जैसे कोई जड, उन्मत्त या पिशाच हो ॥ ४३ ॥ फिर वे बिना किसीकी बाट देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसीकी बात सुने, घरसे निकल पड़े । हृदयमें उस परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जिसको प्राप्त करके फिर लौटना नहीं होता, उन्होंने उत्तर दिशाकी यात्रा की, जिस ओर पहले बड़े-बड़े महात्माजन जा चुके हैं ॥ ४४ ॥

भीमसेन, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी देखा कि अब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सहायक कलियुगने प्रभावित कर डाला है; इसलिये वे भी श्रीकृष्ण-चरणोंकी प्राप्तिका दृढ़ निश्चय करके अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ४५ ॥

---

१. प्रा० पा०—अभद्रहेतुः । २. प्रा० पा०—बुधो गृहे सराष्ट्रे च पुरे तद० । ३. प्रा० पा०—विनियतमात्मनः । ४. प्रा० पा०—ग्मुस्त्वरिताः ।

ते साधुकृतसर्वार्था[1] ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ।
मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥ ४६

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ।
तस्मिन् नारायणपदे एकान्तमतयो[2] गतिम् ॥ ४७

अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ।
विधूतकल्मषास्थाने विरजेनात्मनैव हि ॥ ४८

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान्[3] ।
कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ।
वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥ ५०

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५१

उन्होंने जीवनके सभी लाभ भलीभाँति प्राप्त कर लिये थे; इसलिये यह निश्चय करके कि भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमल ही हमारे परम पुरुषार्थ हैं, उन्होंने उन्हें हृदयमें धारण किया ॥ ४६ ॥ पाण्डवोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके ध्यानसे भक्ति-भाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णके उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपमें अनन्य भावसे स्थिर हो गयी; जिसमें निष्पाप पुरुष ही स्थिर हो पाते हैं। फलतः उन्होंने अपने विशुद्ध अन्तःकरणसे स्वयं ही वह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी प्राप्त नहीं हो सकती ॥ ४७-४८ ॥ संयमी एवं श्रीकृष्णके प्रेमावेशमें मुग्ध भगवन्मय विदुरजीने भी अपने शरीरको प्रभास-क्षेत्रमें त्याग दिया। उस समय उन्हें लेनेके लिये आये हुए पितरोंके साथ वे अपने लोक (यमलोक) को चले गये ॥ ४९ ॥ द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवलोग निरपेक्ष हो गये हैं; तब वे अनन्य प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णका ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं ॥ ५० ॥

भगवान्‌के प्यारे भक्त पाण्डवोंके महाप्रयाणकी इस परम पवित्र और मङ्गलमयी कथाको जो पुरुष श्रद्धासे सुनता है, वह निश्चय ही भगवान्‌की भक्ति और मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

परीक्षित्‌की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका संवाद

सूत उवाच

ततः परीक्षिद् द्विजवर्यशिक्षया
महीं महाभागवतः शशास ह ।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः
समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ।
जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान् ॥ २

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।
शारद्वतं[4] गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥ ३

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! पाण्डवोंके महाप्रयाणके पश्चात् भगवान्‌के परम भक्त राजा परीक्षित् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका शासन करने लगे। उनके जन्मके समय ज्योतिषियोंने उनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वास्तवमें वे सभी महान् गुण उनमें विद्यमान थे ॥ १ ॥ उन्होंने उत्तरकी पुत्री इरावतीसे विवाह किया। उससे उन्होंने जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ तथा कृपाचार्यको आचार्य बनाकर उन्होंने गङ्गाके तटपर तीन अश्वमेध-यज्ञ किये, जिनमें ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा दी गयी। उन यज्ञोंमें देवताओंने प्रत्यक्ष-रूपमें प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया था ॥ ३ ॥

१. प्रा० पा०—सत्त्वार्थाः । २. प्रा० पा०—गतयो । ३. प्रा० पा०—देहमात्मनः । ४. प्राचीन प्रतिमें 'शारद्वतं' से लेकर 'यत्राक्षिगोचराः' तक नहीं है ।

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित्।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४

शौनक उवाच

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः।
नृदेवचिह्नधृक् शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत्।
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्[1] ॥ ५

अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ ६

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम्।
इहोपहूतो भगवान् मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ७

न कश्चिन्म्रियते तावद् यावदास्त इहान्तकः।
एतदर्थं हि भगवानाहूतः[2] परमर्षिभिः।
अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ ८

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै।
निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ ९

सूत उवाच

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽवसत्
कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः
शरासनं संयुगशौण्डिराददे[3] ॥ १०

स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं
रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात्।
वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया।
स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ ११

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून्।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १२

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम्।
प्रगीयमाणं[4] च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम्[5] ॥ १३

एक बार दिग्विजय करते समय उन्होंने देखा कि शूद्रके रूपमें कलियुग राजाका वेष धारण करके एक गाय और बैलके जोड़ेको ठोकरोंसे मार रहा है। तब उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ॥ ४ ॥

शौनकजीने पूछा—महाभाग्यवान् सूतजी! दिग्विजयके समय महाराज परीक्षित्‌ने कलियुगको दण्ड देकर ही क्यों छोड़ दिया—मार क्यों नही डाला? क्योंकि राजाका वेष धारण करनेपर भी था तो वह अधम शूद्र ही, जिसने गायको लातसे मारा था? यदि यह प्रसङ्ग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे अथवा उनके चरणकमलोंके मकरन्द-रसका पान करनेवाले रसिक महानुभावोंसे सम्बन्ध रखता हो तो अवश्य कहिये। दूसरी व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ। उनमें तो आयु व्यर्थ नष्ट होती है ॥ ५-६ ॥ प्यारे सूतजी! जो लोग चाहते तो हैं मोक्ष परन्तु अल्पायु होनेके कारण मृत्युसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके कल्याणके लिये भगवान् यमका आवाहन करके उन्हें यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर दिया गया है ॥ ७ ॥ जबतक यमराज यहाँ इस कर्ममें नियुक्त हैं, तबतक किसीकी मृत्यु नहीं होगी। मृत्युसे ग्रस्त मनुष्यलोकके जीव भी भगवान्‌की सुधातुल्य लीला-कथाका पान कर सकें, इसीलिये महर्षियोंने भगवान् यमको यहाँ बुलाया है ॥ ८ ॥ एक तो थोड़ी आयु और दूसरे कम समझ। ऐसी अवस्थामें संसारके मन्दभाग्य विषयी पुरुषोंकी आयु व्यर्थ ही बीती जा रही है—नींदमें रात और व्यर्थके कामोंमें दिन ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय राजा परीक्षित् कुरुजाङ्गल देशमें सम्राट्‌के रूपमें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने सुना कि मेरी सेनाद्वारा सुरक्षित साम्राज्यमें कलियुगका प्रवेश हो गया है। इस समाचारसे उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ; परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करनेका अवसर हाथ लगा, वे उतने दुःखी नहीं हुए। इसके बाद युद्धवीर परीक्षित्‌ने धनुष हाथमें ले लिया ॥ १० ॥ वे श्यामवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए, सिंहकी ध्वजावाले, सुसज्जित रथपर सवार होकर दिग्विजय करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़े। उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना उनके साथ-साथ चल रही थी ॥ ११ ॥ उन्होंने भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि सभी वर्षोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे भेंट ली ॥ १२ ॥ उन्हें उन देशोंमें सर्वत्र अपने पूर्वज महात्माओंका सुयश सुननेको मिला। उस यशोगानसे पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा प्रकट होती थी ॥ १३ ॥

आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ।
स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १४

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ।
महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥ १५

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य-
वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् ।
स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च[1] विष्णो-
र्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥ १६

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ।
नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे ॥ १७

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।
पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १८

धर्म[2] *उवाच*

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते
विच्छायासि म्लायतेवन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तराधिं
दूरे बन्धुं शोचसि कञ्जनाभ ॥ १९

पादैर्न्यूनं[3] शोचसि मैकपाद-
मात्मानं[4] वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्
प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥२०

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान्
शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्म-
ण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २१

इसके साथ ही उन्हें यह भी सुननेको मिलता था कि भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे किस प्रकार उनकी रक्षा की थी, यदुवंशी और पाण्डवोंमें परस्पर कितना प्रेम था तथा पाण्डवोंकी भगवान् श्रीकृष्णमें कितनी भक्ति थी ॥ १४ ॥ जो लोग उन्हें ये चरित्र सुनाते, उनपर महामना राजा परीक्षित् बहुत प्रसन्न होते; उनके नेत्र प्रेमसे खिल उठते । वे बड़ी उदारतासे उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मणियोंके हार उपहाररूपमें देते ॥ १५ ॥ वे सुनते कि भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमपरवश होकर पाण्डवोंके सारथिका काम किया, उनके सभासद् बने— यहाँतक कि उनके मनके अनुसार काम करके उनकी सेवा भी की । उनके सखा तो थे ही, दूत भी बने । वे रातको शस्त्र ग्रहण करके वीरासनसे बैठ जाते और शिविरका पहरा देते, उनके पीछे-पीछे चलते, स्तुति करते तथा प्रणाम करते; इतना ही नहीं, अपने प्रेमी पाण्डवोंके चरणोंमें उन्होंने सारे जगतको झुका दिया । तब परीक्षित्की भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें और भी बढ़ जाती ॥ १६ ॥ इस प्रकार वे दिन-दिन पाण्डवोंके आचरणका अनुसरण करते हुए दिग्विजय कर रहे थे । उन्हीं दिनों उनके शिविरसे थोड़ी ही दूरपर एक आश्चर्यजनक घटना घटी । वह मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १७ ॥ धर्म बैलका रूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा था । एक स्थानपर उसे गायके रूपमें पृथ्वी मिली । पुत्रकी मृत्युसे दुःखिनी माताके समान उसके नेत्रोंसे आँसुओंके झरने झर रहे थे । उसका शरीर श्रीहीन हो गया था । धर्म पृथ्वीसे पूछने लगा ॥ १८ ॥

धर्मने कहा—कल्याणि ! कुशलसे तो हो न ? तुम्हारा मुख कुछ-कुछ मलिन हो रहा है । तुम श्रीहीन हो रही हो, मालूम होता है तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य है । क्या तुम्हारा कोई सम्बन्धी दूर देशमें चला गया है, जिसके लिये तुम इतनी चिन्ता कर रही हो ? ॥ १९ ॥ कहीं तुम मेरी तो चिन्ता नहीं कर रही हो कि अब इसके तीन पैर टूट गये, एक ही पैर रह गया है ? सम्भव है, तुम अपने लिये शोक कर रही हो कि अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे । तुम्हें इन देवताओंके लिये भी खेद हो सकता है, जिन्हें अब यज्ञोंमें आहुति नहीं दी जाती, अथवा उस प्रजाके लिये भी, जो वर्षा न होनेके कारण अकाल एवं दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है ॥ २० ॥ देवि ! क्या तुम राक्षस-सरीखे मनुष्योंके द्वारा सतायी हुई अरक्षित स्त्रियों एवं आर्तबालकोंके लिये शोक कर रही हो ? सम्भव है, विद्या अब कुकर्मी ब्राह्मणोंके चंगुलमें पड़ गयी है और ब्राह्मण विप्रद्रोही राजाओंकी सेवा करने लगे हैं, और इसीका तुम्हें दुःख हो ॥ २१ ॥

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान्
राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः-[1]
स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २२

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार-
कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।
अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा
कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥ २३

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं
वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा
सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥ २४

धरण्युवाच[2]

भवान्[3] हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ।
चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २५

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः[4] सन्तोष आर्जवम् ।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥ २६

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं[5] स्मृतिः ।
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं[6] मार्दवमेव च ॥ २७

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।
गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ २८

एते[7] चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ।
प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ २९

तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ।
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३०

आजके नाममात्रके राजा तो सोलहों आने कलियुगी हो गये हैं, उन्होंने बड़े-बड़े देशोंको भी उजाड़ डाला है। क्या तुम उन राजाओं या देशोंके लिये शोक कर रही हो ? आजकी जनता खान-पान, वस्त्र, स्नान और स्त्री-सहवास आदिमें शास्त्रीय नियमोंका पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है; क्या इसके लिये तुम दुःखी हो ? ॥ २२ ॥ मा पृथ्वी ! अब समझमें आया, हो-न-हो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णकी याद आ रही होगी; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारनेके लिये ही अवतार लिया था और ऐसी लीलाएँ की थीं, जो मोक्षका भी अवलम्बन हैं। अब उनके लीला-संवरण कर लेनेपर उनके परित्यागसे तुम दुःखी हो रही हो ॥ २३ ॥ देवि ! तुम तो धन-रत्नोंकी खान हो। तुम अपने क्लेशका कारण, जिससे तुम इतनी दुर्बल हो गयी हो, मुझे बतलाओ। मालूम होता है, बड़े-बड़े बलवानोंको भी हरा देनेवाले कालने देवताओंके द्वारा वन्दनीय तुम्हारे सौभाग्यको छीन लिया है ॥ २४ ॥

पृथ्वीने कहा—धर्म ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब स्वयं जानते हो। जिन भगवान्‌के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे, जिनमें सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, वीरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और निरहङ्कारता—ये उनतालीस अप्राकृत गुण तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषोंके द्वारा वाञ्छनीय (शरणागतवत्सलता आदि) और भी बहुत-से महान् गुण उनकी सेवा करनेके लिये नित्य-निरन्तर निवास करते हैं, एक क्षणके लिये भी उनसे अलग नहीं होते—उन्हीं समस्त गुणोंके आश्रय, सौन्दर्यधाम भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीला संवरण कर ली और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया। यही देखकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है ॥ २५—३० ॥

---

१. प्रा० पा०—वासना उत व्यवा० । २. प्रा० पा०—धरोवाच । ३. प्रा० पा०—भवानेव हि तद्वेद यन्मां । ४. प्रा० पा०—दानं त्यागः । ५. प्रा० पा०—धृतिः । ६. प्रा० पा०—कान्तिः सौभाग्यं मार्दवं क्षमा । ७. प्रा० पा०—इमे ।

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।
देवान् पितॄनृषीन् साधून्
सर्वान् वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३१

ब्रह्मादयो बहुतिथं[1] यदपाङ्गमोक्ष-
कामास्तपः[2] समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३२

तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः
श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्घ्री ।
त्रीनत्यरोच उपलभ्य[3] ततो विभूतिं
लोकान् स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥ ३३

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञा-
मक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण
सम्पादयन् यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥ ३४

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः ॥ ३५

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६

अपने लिये, देवताओंमें श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवता, पितर, ऋषि, साधु और समस्त वर्णों तथा आश्रमोंके मनुष्योंके लिये मैं शोकग्रस्त हो रही हूँ ॥ ३१ ॥ जिनका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता भगवान्‌के शरणागत होकर बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, वही लक्ष्मीजी अपने निवासस्थान कमलवनका परित्याग करके बड़े प्रेमसे जिनके चरणकमलोंकी सुभग छत्रछायाका सेवन करती हैं, उन्हीं भगवान्‌के कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा आदि चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणोंसे विभूषित होनेके कारण मुझे महान् वैभव प्राप्त हुआ था और मेरी तीनों लोकोंसे बढ़कर शोभा हुई थी; परन्तु मेरे सौभाग्यका अब अन्त हो गया ! भगवान्‌ने मुझ अभागिनीको छोड़ दिया ! मालूम होता है मुझे अपने सौभाग्यपर गर्व हो गया था, इसीलिये उन्होंने मुझे यह दण्ड दिया है ॥ ३२-३३ ॥

तुम अपने तीन चरणोंके कम हो जानेसे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे; अतः अपने पुरुषार्थसे तुम्हें अपने ही अन्दर पुनः सब अङ्गोंसे पूर्ण एवं स्वस्थ कर देनेके लिये वे अत्यन्त रमणीय श्यामसुन्दर विग्रहसे यदुवंशमें प्रकट हुए और मेरे बड़े भारी भारको, जो असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणियोंके रूपमें था, नष्ट कर डाला । क्योंकि वे परम स्वतन्त्र थे ॥ ३४ ॥ जिन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवन, मनोहर मुसकान और मीठी-मीठी बातोंसे सत्यभामा आदि मधुमयी मानिनियोंके मानके साथ धीरजको भी छीन लिया था और जिनके चरण-कमलोंके स्पर्शसे मैं निरन्तर आनन्दसे पुलकित रहती थी, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका विरह भला कौन सह सकती है ॥ ३५ ॥

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार आपसमें बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वतीके तटपर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसंवादो[4]
नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन

सूत उवाच

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।
दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥ १

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! वहाँ पहुँचकर राजा परीक्षित्‌ने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय-बैलके एक जोड़ेको इस तरह

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ।
वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम्[1] ॥ २

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।
विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां[2] यवसमिच्छतीम् ॥ ३

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ।
मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ।
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ॥ ५

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ।
शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि ॥ ६

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ।
वृषरूपेण किं कश्चिद् देवो नः परिखेदयन् ॥ ७

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ।
भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।
मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते[3] साध्व्यसाधुभिः ।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १०

एष राज्ञां[4] परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ।
अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११

कोऽवृश्चत् तव पादांस्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद[5] ।
मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥ १२

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ १३

जनेऽनागस्यघं युञ्जन् सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ।
साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥ १४

पीटता जा रहा है, जैसे उनका कोई स्वामी ही न हो ॥ १ ॥ वह कमल-तन्तुके समान श्वेत रंगका बैल एक पैरसे खड़ा काँप रहा था तथा शूद्रकी ताड़नासे पीड़ित और भयभीत होकर मूत्र-त्याग कर रहा था ॥ २ ॥ धर्मोपयोगी दूध, घी आदि हविष्य पदार्थोंको देनेवाली वह गाय भी बार-बार शूद्रके पैरोंकी ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी । एक तो वह स्वयं ही दुबली-पतली थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था । उसे भूख लगी हुई थी और उसकी आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे ॥ ३ ॥ स्वर्णजटित रथपर चढ़े हुए राजा परीक्षित्ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उसको ललकारा ॥ ४ ॥ अरे ! तू कौन है, जो बलवान् होकर भी मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको बलपूर्वक मार रहा है ? तूने नटकी भाँति वेष तो राजाका-सा बना रखा है, परन्तु कर्मसे तू शूद्र जान पड़ता है ॥ ५ ॥ हमारे दादा अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंपर प्रहार करनेवाला तू अपराधी है, अतः वधके योग्य है ॥ ६ ॥

उन्होंने धर्मसे पूछा—कमल-नालके समान आपका श्वेतवर्ण है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक ही पैरसे चलते-फिरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। बतलाइये, आप क्या बैलके रूपमें कोई देवता हैं ? ॥ ७ ॥ अभी यह भूमण्डल कुरुवंशी नरपतियोंके बाहुबलसे सुरक्षित है। इसमें आपके सिवा और किसी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे ॥ ८ ॥ धेनुपुत्र ! अब आप शोक न करें । इस शूद्रसे निर्भय हो जायँ । गोमाता ! मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रोयें नहीं । आपका कल्याण हो ॥ ९ ॥ देवि ! जिस राजाके राज्यमें दुष्टोंके उपद्रवसे सारी प्रजा त्रस्त रहती है, उस मतवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुःखियोंका दुःख दूर करें । यह महादुष्ट और प्राणियोंको पीड़ित करनेवाला है । अतः मैं अभी इसे मार डालूँगा ॥ ११ ॥ सुरभिनन्दन ! आप तो चार पैरवाले जीव हैं । आपके तीन पैर किसने काट डाले ? श्रीकृष्णके अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी कोई भी आपकी तरह दुःखी न हो ॥ १२ ॥ वृषभ ! आपका कल्याण हो । बताइये, आप-जैसे निरपराध साधुओंका अङ्ग-भङ्ग करके किस दुष्टने पाण्डवोंकी कीर्तिमें कलङ्क लगाया है ? ॥ १३ ॥ जो किसी निरपराध प्राणीको सताता है, उसे चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा भय अवश्य होगा । दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका कल्याण ही होता है ॥ १४ ॥

अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।
आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥ १५

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ।
शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १६

धर्म उवाच

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ।
येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥ १७

न वयं क्लेशबीजानि यतः[१] स्युः पुरुषर्षभ ।
पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १८

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः[२] ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम्[३] ॥ १९

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ।
अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥ २०

सूत उवाच

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम[४] ।
समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट[५] तम् ॥ २१

राजोवाच[६]

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।
यदधर्मकृतः[७] स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २२

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।
चेतसो[८] वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २३

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥ २४

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।
तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २५

जो उद्दण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसकी बाजूबंदसे विभूषित भुजाको काट डालूँगा ॥ १५ ॥ बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देते हुए अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना राजाओंका परम धर्म है ॥ १६ ॥

धर्मने कहा—राजन् ! आप महाराज पाण्डुके वंशज हैं। आपका इस प्रकार दुःखियोंको आश्वासन देना आपके योग्य ही है; क्योंकि आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंने भगवान् श्रीकृष्णको उनका सारथि और दूत आदि बना दिया था ॥ १७ ॥ नरेन्द्र ! शास्त्रोंके विभिन्न वचनोंसे मोहित होनेके कारण हम उस पुरुषको नहीं जानते, जिससे क्लेशोंके कारण उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ जो लोग किसी भी प्रकारके द्वैतको स्वीकार नहीं करते, वे अपने-आपको ही अपने दुःखका कारण बतलाते हैं। कोई प्रारब्धको कारण बतलाते हैं, तो कोई कर्मको। कुछ लोग स्वभावको,तो कुछ लोग ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं ॥ १९ ॥ किन्हीं- किन्हींका ऐसा भी निश्चय है कि दुःखका कारण न तो तर्कके द्वारा जाना जा सकता है और न वाणीके द्वारा बतलाया जा सकता है। राजर्षे ! अब इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिश्रेष्ठ शौनकजी ! धर्मका यह प्रवचन सुनकर सम्राट् परीक्षित् बहुत प्रसन्न हुए, उनका खेद मिट गया। उन्होंने शान्तचित्त होकर उनसे कहा ॥ २१ ॥

परीक्षित्ने कहा—धर्मका तत्त्व जाननेवाले वृषभदेव ! आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभके रूपमें स्वयं धर्म हैं। (आपने अपनेको दुःख देनेवालेका नाम इसलिये नहीं बताया है कि) अधर्म करनेवालेको जो नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करनेवालेको भी मिलते हैं ॥ २२ ॥ अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और वाणीसे परमेश्वरकी मायाके स्वरूपका निरूपण नहीं किया जा सकता ॥ २३ ॥ धर्मदेव ! सत्ययुगमें आपके चार-चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण नष्ट हो चुके हैं ॥ २४ ॥ अब आपका चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है। उसीके बलपर आप जी रहे हैं। असत्यसे पुष्ट हुआ यह अधर्मरूप कलियुग उसे भी ग्रास कर लेना चाहता है ॥ २५ ॥

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।
श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २६

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ।
अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥ २७

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।
निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २८

तं जिघांसुमभिप्रेत्य[1] विहाय नृपलाञ्छनम् ।
तत्पादमूलं शिरसा समगाद् भयविह्वलः ॥ २९

पतितं पादयोर्वीरः कृपया दीनवत्सलः ।
शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ ३०

राजोवाच

न ते गुडाकेशयशोधराणां
बद्धाञ्जलेर्वै[2] भयमस्ति किंचित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथंचन
क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३१

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहे-
ष्वनु प्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥ ३२

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो
धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
ब्रह्मावर्तं यत्र यजन्ति यज्ञै-
र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३

यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान
इज्यामूर्तिर्यजतां[3] शं तनोति ।
कामानमोघान् स्थिरजङ्गमाना-
मन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३४

सूत[4] उवाच

परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ।
तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५

ये गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं। भगवान्‌ने इनका भारी बोझ उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरणचिह्नोंसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं ॥ २६ ॥ अब ये उनसे बिछुड़ गयी हैं। वे साध्वी अभागिनीके समान नेत्रोंमें जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजाका स्वाँग बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ॥ २७ ॥

महारथी परीक्षित्‌ने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी। फिर उन्होंने अधर्मके कारणरूप कलियुगको मारनेके लिये तीक्ष्ण तलवार उठायी ॥ २८ ॥ कलियुग ताड़ गया कि ये तो अब मुझे मार ही डालना चाहते हैं; अतः झटपट उसने अपने राजचिह्न उतार डाले और भयविह्वल होकर उनके चरणोंमें अपना सिर रख दिया ॥ २९ ॥ परीक्षित् बड़े यशस्वी, दीनवत्सल और शरणागतरक्षक थे। उन्होंने जब कलियुगको अपने पैरोंपर पड़े देखा तो कृपा करके उसको मारा नहीं, अपितु हँसते हुए-से उससे कहा ॥ ३० ॥

परीक्षित् बोले—जब तू हाथ जोड़कर शरण आ गया, तब अर्जुनके यशस्वी वंशमें उत्पन्न हुए किसी भी वीरसे तुझे कोई भय नहीं है। परन्तु तू अधर्मका सहायक है, इसलिये तुझे मेरे राज्यमें बिलकुल नहीं रहना चाहिये ॥ ३१ ॥ तेरे राजाओंके शरीरमें रहनेसे ही लोभ, झूठ, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है ॥ ३२ ॥ अतः अधर्मके साथी ! इस ब्रह्मावर्तमें तू एक क्षणके लिये भी न ठहरना; क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवासस्थान है। इस क्षेत्रमें यज्ञविधिके जाननेवाले महात्मा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुषभगवान्‌की आराधना करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं। वे सर्वात्मा भगवान् वायुकी भाँति समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३४ ॥

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनकर कलियुग सिहर उठा। यमराजके समान मारनेके लिये उद्यत, हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित्‌से वह बोला ॥ ३५ ॥

कलिरुवाच

यत्र क्वचन[1] वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ।
लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३६
तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ।
यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३७

कलिने कहा—सार्वभौम ! आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं ॥ ३६ ॥ धार्मिक-शिरोमणे ! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३७ ॥

सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं[2] कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥ ३९

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ।
औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत् ॥ ४०

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ।
विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४१

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति ।
प्रतिसंदध आश्वास्य[3] महीं च समवर्धयत् ॥ ४२

स एष एतर्ह्यध्यास्त[4] आसनं पार्थिवोचितम् ।
पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥ ४३

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ।
गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।
यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और स्थान—'सुवर्ण' (धन)—दिया। इस प्रकार कलियुगके पाँच स्थान हो गये—झूठ, मद, काम, वैर और रजोगुण ॥ ३९ ॥ परीक्षित्‌के दिये हुए इन्हीं पाँच स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करने लगा ॥ ४० ॥ इसलिये आत्मकल्याणकामी पुरुषको इन पाँचों स्थानोंका सेवन कभी नहीं करना चाहिये। धार्मिक राजा, प्रजावर्गके लौकिक नेता और धर्मोपदेष्टा गुरुओंको तो बड़ी सावधानीसे इनका त्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥ राजा परीक्षित्‌ने इसके बाद वृषभरूप धर्मके तीनों चरण— तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और आश्वासन देकर पृथ्वीका संवर्धन किया ॥ ४२ ॥ वे ही महाराजा परीक्षित् इस समय अपने राजसिंहासनपर, जिसे उनके पितामह महाराज युधिष्ठिरने वनमें जाते समय उन्हें दिया था, विराजमान हैं। ॥ ४३ ॥ वे परम यशस्वी सौभाग्यभाजन चक्रवर्ती सम्राट् राजर्षि परीक्षित् इस समय हस्तिनापुरमें कौरव-कुलकी राज्यलक्ष्मीसे शोभायमान हैं ॥ ४४ ॥ अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित् वास्तवमें ऐसे ही प्रभावशाली हैं, जिनके शासनकालमें आप लोग इस दीर्घकालीन यज्ञके लिये दीक्षित हुए हैं* ॥ ४५ ॥

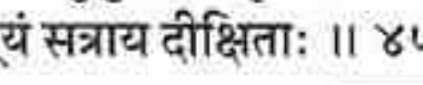

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे[5]
कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१. प्रा० पा०—क्व चाथ। २. प्रा० पा०—मदः कामो। ३. प्रा० पा०—आस्थाय— ४. प्रा० पा०—एतदध्यास्त। ५. प्रा० पा०—'पारिक्षिते पर्वणि' इतना अधिक है।

* ४३से ४५ तकके श्लोकोंमें महाराज परीक्षित्‌का वर्तमानके समान वर्णन किया गया है। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' (पा० सू०३। ३। १३१) इस पाणिनि-सूत्रके अनुसार वर्तमानके निकटवर्ती भूत और भविष्यके लिये भी वर्तमानका प्रयोग किया जा सकता है। जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि परीक्षित्‌की मृत्यु हो गयी थी, फिर भी उनकी कीर्ति और प्रभाव वर्तमानके समान ही विद्यमान थे। उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनकी दूरी यहाँ मिटा दी गयी है। उन्हें भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त हो गया था, इसलिये भी सूतजीको वे अपने सम्मुख ही दीख रहे हैं। न केवल उन्हींको, बल्कि सबको इस बातकी प्रतीति हो रही है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस श्रुतिके अनुसार जनमेजयके रूपमें भी वही राजसिंहासनपर बैठे हुए हैं। इन सब कारणोंसे वर्तमानके रूपमें उनका वर्णन भी कथाके रसको पुष्ट ही करता है।

अथाष्टादशोऽध्यायः

राजा परीक्षित्‌को शृङ्गी ऋषिका शाप

सूत उवाच

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ।
अनुग्रहाद् भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १

ब्रह्मकोपोत्थिताद् यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ।
न सम्मुमोहोरुभयाद् भगवत्यर्पिताशयः ॥ २

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ।
वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥ ३

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां[1] तत्कथामृतम् ।
स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ।
यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ।
तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ६

नानुद्वेष्टि[2] कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्यासु सिद्ध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको[3] नृषु वर्तते ॥ ८

उपवर्णितमेतद् वः[4] पुण्यं पारीक्षितं मया ।
वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ।
गुणकर्माश्रयाः पुम्भिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १०

ऋषय ऊचुः

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ।
यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११

सूतजी कहते हैं—अद्भुत कर्मा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे राजा परीक्षित् अपनी माताकी कोखमें अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल जानेपर भी मरे नहीं ॥ १ ॥ जिस समय ब्राह्मणके शापसे उन्हें डसनेके लिये तक्षक आया, उस समय वे प्राणनाशके महान् भयसे भी भयभीत नहीं हुए; क्योंकि उन्होंने अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रखा था ॥ २ ॥ उन्होंने सबकी आसक्ति छोड़ दी, गङ्गातटपर जाकर श्रीशुकदेवजीसे उपदेश ग्रहण किया और इस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपको जानकर अपने शरीरको त्याग दिया ॥ ३ ॥ जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथा कहते रहते हैं, उस कथामृतका पान करते रहते हैं और इन दोनों ही साधनोंके द्वारा उनके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं, उन्हें अन्तकालमें भी मोह नहीं होता ॥ ४ ॥ जबतक पृथ्वीपर अभिमन्युनन्दन महाराज परीक्षित् सम्राट् रहे, तबतक चारों ओर व्याप्त हो जानेपर भी कलियुगका कुछ भी प्रभाव नहीं था ॥ ५ ॥ वैसे तो जिस दिन, जिस क्षण श्रीकृष्णने पृथ्वीका परित्याग किया, उसी समय पृथ्वीमें अधर्मका मूलकारण कलियुग आ गया था ॥ ६ ॥ भ्रमरके समान सारग्राही सम्राट् परीक्षित् कलियुगसे कोई द्वेष नहीं रखते थे; क्योंकि इसमें यह एक बहुत बड़ा गुण है कि पुण्यकर्म तो सङ्कल्पमात्रसे ही फलीभूत हो जाते हैं, परन्तु पापकर्मका फल शरीरसे करनेपर ही मिलता है; सङ्कल्पमात्रसे नहीं ॥ ७ ॥ यह भेड़ियेके समान बालकोंके प्रति शूरवीर और धीर वीर पुरुषोंके लिये बड़ा भीरु है। यह प्रमादी मनुष्योंको अपने वशमें करनेके लिये ही सदा सावधान रहता है ॥ ८ ॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोगोंको मैंने भगवान्‌की कथासे युक्त राजा परीक्षित्‌का पवित्र चरित्र सुनाया। आपलोगोंने यही पूछा था ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण कीर्तन करनेयोग्य बहुत-सी लीलाएँ करते हैं। इसलिये उनके गुण और लीलाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी कथाएँ हैं, कल्याणकामी पुरुषोंको उन सबका सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥

ऋषियोंने कहा—सौम्यस्वभाव सूतजी ! आप युग-युग जीयें; क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंको आप भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी उज्ज्वल कीर्तिका श्रवण कराते हैं ॥ ११ ॥

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥ १२

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३

को नाम तृप्येद् रसवित्कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्यमुख्याः ॥ १४

तन्नो[1] भवान् वै भगवत्प्रधानो
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
हरेस्उदारं चरितं विशुद्धं
शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन्[2] ॥ १५

स वै महाभागवतः परीक्षिद्
येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन
भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥ १६

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थ-
माख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं
पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥ १७

सूत उवाच

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म
वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं
महत्तमानामभिधानयोगः ॥ १८

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो
महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः ॥ १९

यज्ञ करते-करते उसके धूएँसे हमलोगोंका शरीर धूमिल हो गया है। फिर भी इस कर्मका कोई विश्वास नहीं है। इधर आप तो वर्तमानमें ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंका मादक और मधुर मधु पिलाकर हमें तृप्त कर रहे हैं॥ १२ ॥ भगवत्-प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सत्सङ्गसे स्वर्ग एवं मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती; फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ १३ ॥ ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महापुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वस्व श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय ? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके ॥ १४ ॥ विद्वन् ! आप भगवान्‌को ही अपने जीवनका ध्रुवतारा मानते हैं। इसलिये आप सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌के उदार और विशुद्ध चरित्रोंका हम श्रद्धालु श्रोताओंके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ भगवान्‌के परम प्रेमी महाबुद्धि परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीके उपदेश किये हुए जिस ज्ञानसे मोक्षस्वरूप भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त किया, आप कृपा करके उसी ज्ञान और परीक्षित्‌के परम पवित्र उपाख्यानका वर्णन कीजिये; क्योंकि उसमें कोई बात छिपाकर नहीं कही गयी होगी और भगवत्प्रेमकी अद्भुत योगनिष्ठाका निरूपण किया गया होगा। उसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन हुआ होगा। भगवान्‌के प्यारे भक्तोंको वैसा प्रसङ्ग सुननेमें बड़ा रस मिलता है ॥ १६-१७ ॥

सूतजी कहते हैं—अहो ! विलोम * जातिमें उत्पन्न होनेपर भी महात्माओंकी सेवा करनेके कारण आज हमारा जन्म सफल हो गया। क्योंकि महापुरुषोंके साथ बातचीत करनेमात्रसे ही नीच कुलमें उत्पन्न होनेकी मनोव्यथा शीघ्र ही मिट जाती है ॥ १८ ॥ फिर उन लोगोंकी तो बात ही क्या है, जो सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌का नाम लेते हैं ! भगवान्‌की शक्ति अनन्त है, वे स्वयं अनन्त हैं। वास्तवमें उनके गुणोंकी अनन्तताके कारण ही उन्हें अनन्त कहा गया है ॥ १९ ॥

---

१. प्रा० पा०—ततो। २. प्रा० पा०—विद्वान्।

* उच्च वर्णकी माता और निम्न वर्णके पितासे उत्पन्न संतानको 'विलोमज' कहते हैं।

एतावतालं ननु[1] सूचितेन
गुणैरसाम्यानतिशायनस्य[2] ।
हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूति-
र्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥ २०

अथापि यत्पादनखावसृष्टं
जगद्विरिञ्चोपहतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा
व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं[3]
यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भि-
राचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिण-
स्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने ।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४

जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ।
ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥ २५

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ।
स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ।
विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७

अलब्धतृणभूम्यादिरसम्प्राप्तार्घ्यसूनृतः ।
अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८

भगवान्‌के गुणोंकी समता भी जब कोई नहीं कर सकता, तब उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है। उनके गुणोंकी यह विशेषता समझानेके लिये इतना कह देना ही पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी अपनेको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको छोड़कर भगवान्‌के न चाहनेपर भी उनके चरणकमलोंकी रजका ही सेवन करती हैं ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने भगवान्‌के चरणोंका प्रक्षालन करनेके लिये जो जल समर्पित किया था, वही उनके चरणनखोंसे निकलकर गङ्गाजीके रूपमें प्रवाहित हुआ। यह जल महादेवजीसहित सारे जगत्‌को पवित्र करता है। ऐसी अवस्थामें त्रिभुवनमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त 'भगवान्' शब्दका दूसरा और क्या अर्थ हो सकता है ॥ २१ ॥ जिनके प्रेमको प्राप्त करके धीर पुरुष बिना किसी हिचकके देह-गेह आदिकी दृढ़ आसक्तिको छोड़ देते हैं और उस अन्तिम परमहंस-आश्रमको स्वीकार करते हैं, जिसमें किसीको कष्ट न पहुँचाना और सब ओरसे उपशान्त हो जाना ही स्वधर्म होता है ॥ २२ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान महात्माओ ! आपलोगोंने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह मैं अपनी समझके अनुसार सुनाता हूँ। जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही विद्वान्‌लोग भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन करते हैं ॥ २३ ॥

एक दिन राजा परीक्षित् धनुष लेकर वनमें शिकार खेलने गये हुए थे। हरिणोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गये और उन्हें बड़े जोरकी भूख और प्यास लगी ॥ २४ ॥ जब कहीं उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला, तब वे पासके ही एक ऋषिके आश्रममें घुस गये। उन्होंने देखा कि वहाँ आँखें बंद करके शान्तभावसे एक मुनि आसनपर बैठे हुए हैं ॥ २५ ॥ इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धिके निरुद्ध हो जानेसे वे संसारसे ऊपर उठ गये थे। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय पदमें वे स्थित थे ॥ २६ ॥ उनका शरीर बिखरी हुई जटाओंसे और कृष्ण मृगचर्मसे ढका हुआ था। राजा परीक्षित्‌ने ऐसी ही अवस्थामें उनसे जल माँगा, क्योंकि प्याससे उनका गला सूखा जा रहा था ॥ २७ ॥ जब राजाको वहाँ बैठनेके लिये तिनकेका आसन भी न मिला, किसीने उन्हें भूमिपर भी बैठनेको न कहा—अर्घ्य और आदरभरी मीठी बातें तो कहाँसे मिलतीं— तब अपनेको अपमानित-सा मानकर वे क्रोधके वश हो गये ॥ २८ ॥

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ।
ब्राह्मणं प्रत्यभूद् ब्रह्मन् मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९

स[1] तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ।
विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत्[2] ॥ ३०

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ।
मृषा समाधिराहोस्वित्किं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन् बालकोऽर्भकैः ।
राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२

अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघं यद् दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो[3] निरूपितः ।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति[4] ॥ ३४

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ।
तद्धिन्नसेतूनद्याहं[5] शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकः ।
कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६

इति[6] लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्[7] ॥ ३७

ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ।
पितरं वीक्ष्य[8] दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥ ३८

स वा[9] आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् ।
उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे[10] मृतोरगम् ॥ ३९

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ।
केन वा तेऽपकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४०

शौनकजी ! वे भूख-प्याससे छटपटा रहे थे, इसलिये एकाएक उन्हें ब्राह्मणके प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया। उनके जीवनमें इस प्रकारका यह पहला ही अवसर था ॥ २९ ॥ वहाँसे लौटते समय उन्होंने क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ३० ॥ उनके मनमें यह बात आयी कि इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रखे हैं, सो क्या वास्तवमें इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियवृत्तियोंका निरोध कर लिया है अथवा इन राजाओंसे हमारा क्या प्रयोजन है, यों सोचकर इन्होंने झूठ-मूठ समाधिका ढोंग रच रखा है ॥ ३१ ॥

उन शमीक मुनिका पुत्र बड़ा तेजस्वी था। वह दूसरे ऋषिकुमारोंके साथ पास ही खेल रहा था। जब उस बालकने सुना कि राजाने मेरे पिताके साथ दुर्व्यवहार किया है, तब वह इस प्रकार कहने लगा— ॥ ३२ ॥ 'ये नरपति कहलानेवाले लोग उच्छिष्टभोजी कौओंके समान संड-मुसंड होकर कितना अन्याय करने लगे हैं ! ब्राह्मणोंके दास होकर भी ये दरवाजेपर पहरा देनेवाले कुत्तेके समान अपने स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है। उन्हें द्वारपर रहकर रक्षा करनी चाहिये, घरमें घुसकर स्वामीके बर्तनोंमें खानेका उसे अधिकार नहीं है ॥ ३४ ॥ अतएव उन्मार्गगामियोंके शासक भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इन मर्यादा तोड़नेवालोंको आज मैं दण्ड देता हूँ। मेरा तपोबल देखो' ॥ ३५ ॥ अपने साथी बालकोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल-लाल आँखोंवाले उस ऋषिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन करके अपने वाणीरूपी वज्रका प्रयोग किया ॥ ३६ ॥ 'कुलाङ्गार परीक्षित्ने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डस लेगा' ॥ ३७ ॥

इसके बाद वह बालक अपने आश्रमपर आया और अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ तथा वह दहाड़ मारकर रोने लगा ॥ ३८ ॥ विप्रवर शौनकजी ! शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-चिल्लाना सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गलेमें एक मरा साँप पड़ा है ॥ ३९ ॥ उसे फेंककर उन्होंने अपने पुत्रसे पूछा—'बेटा ! तुम क्यों रो रहे हो ? किसने तुम्हारा अपकार किया है ?' उनके इस प्रकार पूछनेपर बालकने सारा हाल कह दिया ॥ ४० ॥

---

१. प्रा० पा०—तस्य ब्रह्मर्षेरं से। २. प्रा० पा०—मागतः। ३. प्रा० पा०—गृहपालो। ४. प्रा० पा०—भङ्क्तु। ५. प्रा० पा०—सेतुमद्या०। ६. प्रा० पा०—अतो। ७. प्रा० पा०—पितृद्रुहम्। ८. प्रा० पा०—प्रेक्ष्य। ९. प्रा० पा०—स वैवाङ्गिरसो। १०. प्रा० पा०—चांसे।

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं
स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत्।
अहो बतांहो महदज्ञ ते कृत-
मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१
न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं
सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे[1]।
यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता
विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२
अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि
रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः।
तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्य-
त्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्[2] क्षणात् ॥ ४३
तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं
यन्नष्टनाथस्य[3] वसोर्विलुम्पकात्।
परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते
पशून स्त्रियोऽर्थान् पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४
तदाऽऽर्यधर्मश्च[4] विलीयते नृणां
वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः।
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ४५
धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः।
साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट्।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥ ४६
अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना।
पापं कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥ ४७
तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि।
नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८
इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः।
स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥ ४९
प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः।
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५०

ब्रह्मर्षि शमीकने राजाके शापकी बात सुनकर अपने पुत्रका अभिनन्दन नहीं किया। उनकी दृष्टिमें परीक्षित् शापके योग्य नहीं थे। उन्होंने कहा—'ओह, मूर्ख बालक! तूने बड़ा पाप किया! खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलतीके लिये तूने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ तेरी बुद्धि अभी कच्ची है। तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये; क्योंकि राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है ॥ ४२ ॥ जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं दिखायी देंगे, उस समय चोर बढ़ जायँगे और अरक्षित भेड़ोंके समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा ॥ ४३ ॥ राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोर जो पाप करेंगे, उसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध न होनेपर भी वह हमपर भी लागू होगा। क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बंदरोंके समान वर्णसङ्कर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। उन्होंने बहुत-से अश्वमेध यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हैं; वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे, वे शापके योग्य कदापि नहीं हैं ॥ ४६ ॥ इस नासमझ बालकने हमारे निष्पाप सेवक राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें ॥ ४७ ॥ भगवान्‌के भक्तोंमें भी बदला लेनेकी शक्ति होती है, परंतु वे दूसरोंके द्वारा किये हुए अपमान, धोखेबाजी, गाली-गलौज, आक्षेप और मार-पीट-का कोई बदला नहीं लेते ॥ ४८ ॥ महामुनि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया ॥ ४९ ॥ महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत्‌में जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे[5]
विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

परीक्षित्‌का अनशनव्रत और शुकदेवजीका आगमन

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्
दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।
तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय[1] मे
यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा[2] ॥ २

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं[3]
प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्[4]
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद्[5] यथा
मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
स साधु मेने नचिरेण तक्षका-[6]
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४

अथो विहायेमममुं च लोकं
विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-
कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्
कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः
प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।
दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो
मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—'मैंने निरपराध एवं अपना तेज छिपाये हुए ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया। यह बड़े खेदकी बात है ॥ १ ॥ अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ; क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका दुःसाहस नहीं करूँगा ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंकी क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे—जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो ॥ ३ ॥ वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ—ऋषिकुमारके शापसे तक्षक मुझे डसेगा। उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया ॥ ४ ॥ वे इस लोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे। अब उनका स्वरूपतः त्याग करके भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशन-व्रत लेकर वे गङ्गातटपर बैठ गये ॥ ५ ॥ गङ्गाजीका जल भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका वह पराग लेकर प्रवाहित होता है, जो श्रीमती तुलसीकी गन्धसे मिश्रित है। यही कारण है कि वे लोकपालोंके सहित ऊपर-नीचेके समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। कौन ऐसा मरणासन्न पुरुष होगा, जो उनका सेवन न करेगा ? ॥ ६ ॥

इस प्रकार गङ्गाजीके तटपर आमरण अनशनका निश्चय करके उन्होंने समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर दिया और वे मुनियोंका व्रत स्वीकार करके अनन्यभावसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥

---

१. प्रा० पा०—ह्यघ । २. प्रा० पा०—पुनरेव सद्यः । ३. प्रा० पा०—बलमूर्ज० । ४. प्रा० पा०—मेऽस्तु । ५. प्रा० पा०—चिन्तयन्निष्टमथा० । ६. प्रा० पा०—तक्षकादलं ।

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना
महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः
स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ ८

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ[1] ॥ ९

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः[2] कुम्भयोनि-
र्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १०

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या[3]
राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान्[4] समेता-
नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः
कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत्[5] ।
विज्ञापयामास विविक्तचेता
उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२

राजोवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां
महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्[6]
दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो
व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।
निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो
यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४

उस समय त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले
महानुभाव ऋषि-मुनि अपने शिष्योंके साथ वह
संतजन प्रायः तीर्थयात्राके बहाने स्वयं उन तीर्थ
ही पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ उस समय वहाँप
वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु,
पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य,
इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण,
गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष,
भगवान् व्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त
कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा अरुणादि राजर्
शुभागमन हुआ। इस प्रकार विभिन्न
मुख्य-मुख्य ऋषियोंको एकत्र देखकर राजाने
यथायोग्य सत्कार किया और उनके चरणों
रखकर वन्दना की ॥ ९—११ ॥ जब सब
आरामसे अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये
महाराज परीक्षित्‌ने उन्हें फिरसे प्रणाम किया और
सामने खड़े होकर शुद्ध हृदयसे अञ्जलि बाँधकर
कुछ करना चाहते थे, उसे सुनाने लगे ॥ १२

राजा परीक्षित्‌ने कहा—अहो !
राजाओंमें हम धन्य हैं। धन्यतम हैं। क्योंकि
शील-स्वभावके कारण हम आप महापुरुषोंके
बन गये हैं। राजवंशके लोग प्रायः निन्दित कर्म
कारण ब्राह्मणोंके चरण-धोवनसे दूर पड़ जाते हैं
कितने खेदकी बात है ॥ १३ ॥ मैं भी राजा
निरन्तर देह-गेहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी
ही हो गया हूँ। इसीसे स्वयं भगवान् ही ब्र
शापके रूपमें मुझपर कृपा करनेके लिये पधारे
शाप वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है। क्योंकि इस
शापसे संसारासक्त पुरुष भयभीत होकर विरक्त हो
करते हैं ॥ १४ ॥ ब्राह्मणो ! अब मैंने अपने

---

१. प्रा० पा०—इन्द्रप्रमतिः सुवाहुः । २. प्रा० पा०—कवयः । ३. प्रा० पा०—देवर्षिमहर्षि । ४. प्रा० पा०—नानार्षेयान् पुरतः । ५. प्रा० पा०—महत् । ६. प्रा० पा०—शौचादाद्विसृष्टं ।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते
रतिः[1] प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।
महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं
मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः
प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।
उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते
समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७

एवं च[2] तस्मिन्नरदेवदेवे
प्रायोपविष्टे दिवि देवसङ्घाः ।
प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनै-
र्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८

महर्षयो[3] वै समुपागता ये
प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।
ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा
यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम्[4] ॥ १९

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं
भवत्सु[5] कृष्णं समनुव्रतेषु ।
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २०

भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया है। आपलोग और मा गङ्गाजी शरणागत जानकर मुझपर अनुग्रह करें, ब्राह्मणकुमारके शापसे प्रेरित कोई दूसरा कपटसे तक्षकका रूप धरकर मुझे डस ले अथवा स्वयं तक्षक आकर डस ले; इसकी मुझे तनिक भी परवा नहीं है। आपलोग कृपा करके भगवान्‌की रसमयी लीलाओंका गायन करें ॥ १५ ॥ मैं आप ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम करके पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कर्मवश चाहे जिस योनिमें जन्म लेना पड़े, भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग हो, उनके चरणाश्रित महात्माओंसे विशेष प्रीति हो और जगत्‌के समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी एक-सी मैत्री रहे। ऐसा आप आशीर्वाद दीजिये ॥ १६ ॥

महाराज परीक्षित् परम धीर थे। वे ऐसा दृढ़ निश्चय करके गङ्गाजीके दक्षिण तटपर पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर उत्तरमुख होकर बैठ गये। राज-काजका भार तो उन्होंने पहले ही अपने पुत्र जनमेजयको सौंप दिया था ॥ १७ ॥ पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् परीक्षित् जब इस प्रकार आमरण अनशनका निश्चय करके बैठ गये, तब आकाशमें स्थित देवतालोग बड़े आनन्दसे उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँ पृथ्वीपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नगारे बार-बार बजने लगे ॥ १८ ॥ सभी उपस्थित महर्षियोंने परीक्षित्‌के निश्चयकी प्रशंसा की और 'साधु-साधु' कहकर उनका अनुमोदन किया। ऋषिलोग तो स्वभावसे ही लोगोंपर अनुग्रहकी वर्षा करते रहते हैं; यही नहीं, उनकी सारी शक्ति लोकपर कृपा करनेके लिये ही होती है। उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे प्रभावित परीक्षित्‌के प्रति उनके अनुरूप वचन कहे ॥ १९ ॥ 'राजर्षिशिरोमणे ! भगवान् श्रीकृष्णके सेवक और अनुयायी आप पाण्डुवंशियोंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपलोगोंने भगवान्‌की सन्निधि प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे उस राजसिंहासनका एक क्षणमें ही परित्याग कर दिया, जिसकी सेवा बड़े-बड़े राजा अपने मुकुटोंसे करते थे ॥ २० ॥

---

१. प्रा० पा०—रतिप्रसङ्गश्च । २. प्रा० पा०—तु । ३. प्रा० पा०—महर्षयस्ते । ४. प्रा० पा०—गुणानुरूपम् । ५. प्रा० पा०—भवेद् ध्रुवं कृष्णमनुव्रतेषु ।

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य[1]
कलेवरं यावदसौ विहाय ।
लोकं परं विरजस्कं विशोकं
यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१

आश्रुत्य तदृषिगणवचः[2] परीक्षित्
समं मधुच्युद् गुरु चाव्यलीकम् ।
आभाषतैनानभिनन्द्य[3] युक्ताञ्[4]
शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२

समागताः सर्वत एव सर्वे
वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे[5] ।
नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे
विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं
शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥ २५

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपाद-
करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्ण[6]
सुभ्रवाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥ २६

निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षस-
मावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं
प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७

हम सब तबतक यहीं रहेंगे, जबतक ये भगवान्‌के परम भक्त परीक्षित् अपने नश्वर शरीरको छोड़कर मायादोष एवं शोकसे रहित भगवद्धाममें नहीं चले जाते' ॥ २१ ॥

ऋषियोंके ये वचन बड़े ही मधुर, गम्भीर, सत्य और समतासे युक्त थे। उन्हें सुनकर राजा परीक्षित्‌ने उन योगयुक्त मुनियोंका अभिनन्दन किया और भगवान्‌के मनोहर चरित्र सुननेकी इच्छासे ऋषियोंसे प्रार्थना की ॥ २२ ॥ 'महात्माओ ! आप सभी सब ओरसे यहाँ पधारे हैं। आप सत्यलोकमें रहनेवाले मूर्तिमान् वेदोंके समान हैं। आपलोगोंका दूसरोंपर अनुग्रह करनेके अतिरिक्त, जो आपका सहज स्वभाव ही है, इस लोक या परलोकमें और कोई स्वार्थ नहीं है ॥ २३ ॥ विप्रवरो ! आपलोगोंपर पूर्ण विश्वास करके मैं अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें यह पूछने योग्य प्रश्न करता हूँ। आप सभी विद्वान् परस्पर विचार करके बतलाइये कि सबके लिये सब अवस्थाओंमें और विशेष करके थोड़े ही समयमें मरनेवाले पुरुषोंके लिये अन्तःकरण और शरीरसे करनेयोग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है* ॥ २४ ॥

उसी समय पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरण करते हुए, किसीकी कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। वे वर्ण अथवा आश्रमके बाह्य चिह्नोंसे रहित एवं आत्मानुभूतिमें सन्तुष्ट थे। बच्चों और स्त्रियोंने उन्हें घेर रखा था। उनका वेष अवधूतका था ॥ २५ ॥ सोलह वर्षकी अवस्था थी। चरण, हाथ, जङ्घा, भुजाएँ, कंधे, कपोल और अन्य सब अङ्ग अत्यन्त सुकुमार थे। नेत्र बड़े-बड़े और मनोहर थे। नासिका कुछ ऊँची थी। कान बराबर थे। सुन्दर भौंहें थीं, इनसे मुख बड़ा ही शोभायमान हो रहा था। गला तो मानो सुन्दर शङ्ख ही था ॥ २६ ॥ हँसली ढकी हुई, छाती चौड़ी और उभरी हुई, नाभि भँवरके समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर, त्रिवलीसे युक्त था। लंबी-लंबी भुजाएँ थीं, मुखपर घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। इस दिगम्बर वेषमें वे श्रेष्ठ देवताके समान तेजस्वी जान पड़ते थे ॥ २७ ॥

श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या[1]
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन[2] ।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्य-
स्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८

स विष्णुरातोऽतिथय[3] आगताय
तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका
महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९

स संवृतस्तत्र महान् महीयसां
ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसङ्घैः ।
व्यरोचतालं भगवान् यथेन्दु-
र्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३०

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलि-
र्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ॥ ३१

श्याम रंग था। चित्तको चुरानेवाली भरी जवानी थी। वे शरीरकी छटा और मधुर मुसकानसे स्त्रियोंको सदा ही मनोहर जान पड़ते थे। यद्यपि उन्होंने अपने तेजको छिपा रखा था, फिर भी उनके लक्षण जाननेवाले मुनियोंने उन्हें पहचान लिया और वे सब-के-सब अपने-अपने आसन छोड़कर उनके सम्मानके लिये उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥

राजा परीक्षित्‌ने अतिथिरूपसे पधारे हुए श्रीशुकदेवजीको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी पूजा की। उनके स्वरूपको न जाननेवाले बच्चे और स्त्रियाँ उनकी यह महिमा देखकर वहाँसे लौट गये; सबके द्वारा सम्मानित होकर श्रीशुकदेवजी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए ॥ २९ ॥ ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके समूहसे आवृत श्रीशुकदेवजी अत्यन्त शोभायमान हुए। वास्तवमें वे महात्माओंके भी आदरणीय थे ॥ ३० ॥ जब प्रखरबुद्धि श्रीशुकदेवजी शान्तभावसे बैठ गये, तब भगवान्‌के परम भक्त परीक्षित्‌ने उनके समीप आकर और चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके पश्चात् बड़ी मधुर वाणीसे उनसे यह पूछा ॥ ३१ ॥

परीक्षिदुवाच

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।
कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२

येषां संस्मरणात् पुंसां[4] सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ ३३

सांनिध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ।
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ।
पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तल्लिङ्गस्यात्तबान्धवः ॥ ३५

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।
नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः[5] ॥ ३६

परीक्षित्‌ने कहा—ब्रह्मस्वरूप भगवन्! आज हम बड़भागी हुए; क्योंकि अपराधी क्षत्रिय होनेपर भी हमें संत-समागमका अधिकारी समझा गया। आज कृपापूर्वक अतिथिरूपसे पधारकर आपने हमें तीर्थके तुल्य पवित्र बना दिया ॥ ३२ ॥ आप-जैसे महात्माओंके स्मरणमात्रसे ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं; फिर दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन और आसन दानादिका सुअवसर मिलनेपर तो कहना ही क्या है ॥ ३३ ॥ महायोगिन्! जैसे भगवान् विष्णुके सामने दैत्यलोग नहीं ठहरते, वैसे ही आपकी सन्निधिसे बड़े-बड़े पाप भी तुरंत नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ अवश्य ही पाण्डवोंके सुहृद् भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं; उन्होंने अपने फुफेरे भाइयोंकी प्रसन्नताके लिये उन्हींके कुलमें उत्पन्न हुए मेरे साथ भी अपनेपनका व्यवहार किया है ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा न होती तो आप-सरीखे एकान्त वनवासी अव्यक्तगति परम सिद्ध पुरुष स्वयं पधारकर इस मृत्युके समय हम-जैसे प्राकृत मनुष्योंको क्यों दर्शन देते ॥ ३६ ॥ आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसलिये

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७

मैं आपसे परम सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, उसको क्या करना चाहिये ? ॥ ३७ ॥

यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो।
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८

भगवन्! साथ ही यह भी बतलाइये कि मनुष्यमात्रको क्या करना चाहिये। वे किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण और किसका भजन करें तथा किसका त्याग करें ? ॥ ३८ ॥

नूनं भगवतो ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनाम्।
न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९

भगवत्स्वरूप मुनिवर! आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि जितनी देर एक गाय दुही जाती है, गृहस्थोंके घरपर उतनी देर भी तो आप नहीं ठहरते ॥ ३९ ॥

सूत उवाच

सूतजी कहते हैं—जब राजाने बड़ी ही मधुर वाणीमें इस प्रकार सम्भाषण एवं प्रश्न किये, तब समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी उनका उत्तर देने लगे ॥ ४० ॥

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ॥ ४०

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति प्रथमः स्कन्धः समाप्तः।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ध्यान-विधि और भगवान्‌के विराट्स्वरूपका वर्णन

ॐ नमो[1] भगवते वासुदेवाय

श्रीशुक उवाच

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं[2] नृप ।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ॥ ३

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि[3] ।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्[4] ॥ ५

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥ ६

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम्हारा लोकहितके लिये किया हुआ यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। मनुष्योंके लिये जितनी भी बातें सुनने, स्मरण करने या कीर्तन करनेकी हैं, उन सबमें यह श्रेष्ठ है। आत्मज्ञानी महापुरुष ऐसे प्रश्नका बड़ा आदर करते हैं॥ १॥ राजेन्द्र! जो गृहस्थ घरके काम-धंधोंमें उलझे हुए हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, उनके लिये हजारों बातें कहने-सुनने एवं सोचने, करनेकी रहती हैं॥ २॥ उनकी सारी उम्र यों ही बीत जाती है। उनकी रात नींद या स्त्री-प्रसङ्गसे कटती है और दिन धनकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके भरण-पोषणमें समाप्त हो जाता है॥ ३॥ संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं; परन्तु जीव उनके मोहमें ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं॥ ४॥ इसलिये परीक्षित्! जो अभय पदको प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये॥ ५॥ मनुष्य-जन्मका यही—इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो— ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य बनी रहे॥ ६॥ परीक्षित्! जो निर्गुण स्वरूपमें स्थित हैं एवं विधि-निषेधकी मर्यादाको लाँघ चुके हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी प्रायः भगवान्‌के अनन्त कल्याणमय गुणगणोंके वर्णनमें रमे रहते हैं॥ ७॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इतना अंश नहीं है। २. प्रा० पा०—लोकहितो। ३. प्रा० पा०—सौख्येष्व०। ४. प्रा० पा०—व्यः स्वेच्छया विभुः।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्॥ ८

द्वापरके अन्तमें इस भगवद्रूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामके महापुराणका अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे मैंने अध्ययन किया था॥ ८॥

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥ ९

राजर्षे! मेरी निर्गुणस्वरूप परमात्मामें पूर्ण निष्ठा है। फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया॥ ९॥

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान्।
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती॥ १०

तुम भगवान्के परमभक्त हो, इसलिये तुम्हें मैं इसे सुनाऊँगा। जो इसके प्रति श्रद्धा रखते हैं, उनकी शुद्ध चित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमके साथ बहुत शीघ्र लग जाती है॥ १०॥

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप[1] निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥ ११

जो लोग लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी इच्छा रखते हैं, या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्के नामोंका प्रेमसे सङ्कीर्तन करें॥ ११॥

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह।
वरं मुहूर्तं विदितं घटेत[2] श्रेयसे यतः॥ १२

अपने कल्याण-साधनकी ओरसे असावधान रहनेवाले पुरुषकी वर्षों लम्बी आयु भी अनजानमें ही व्यर्थ बीत जाती है। उससे क्या लाभ! सावधानीसे ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी, दो घड़ी भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याणकी चेष्टा तो की जा सकती है॥ १२॥

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः।
मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम्॥ १३

राजर्षि खट्वाङ्ग अपनी आयुकी समाप्तिका समय जानकर दो घड़ीमें ही सब कुछ त्यागकर भगवान्के अभयपदको प्राप्त हो गये॥ १३॥

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः।
उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्साम्परायिकम्॥ १४

परीक्षित्! अभी तो तुम्हारे जीवनकी अवधि सात दिनकी है। इस बीचमें ही तुम अपने परम कल्याणके लिये जो कुछ करना चाहिये, सब कर लो॥ १४॥

अन्तकाले तु[3] पुरुष आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु[4] ये च तम्॥ १५

मृत्युका समय आनेपर मनुष्य घबराये नहीं। उसे चाहिये कि वह वैराग्यके शस्त्रसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंके प्रति ममताको काट डाले॥ १५॥

गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः[5]।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने॥ १६

धैर्यके साथ घरसे निकलकर पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करे और पवित्र तथा एकान्त स्थानमें विधिपूर्वक आसन लगाकर बैठ जाय॥ १६॥

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्[6]॥ १७

तत्पश्चात् परम पवित्र 'अ उ म्' इन तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवका मन-ही-मन जप करे। प्राणवायुको वशमें करके मनका दमन करे और एक क्षणके लिये भी प्रणवको न भूले॥ १७॥

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः।
मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया॥ १८

बुद्धिकी सहायतासे मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटा ले और कर्मकी वासनाओंसे चञ्चल हुए मनको विचारके द्वारा रोककर भगवान्के मङ्गलमय रूपमें लगाये॥ १८॥

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत्।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥ १९

स्थिर चित्तसे भगवान्के श्रीविग्रहमेंसे किसी एक अङ्गका ध्यान करे। इस प्रकार एक-एक अङ्गका ध्यान करते-करते विषय-वासनासे रहित मनको पूर्णरूपसे भगवान्में ऐसा तल्लीन कर दे कि फिर और किसी विषयका चिन्तन ही न हो। वही भगवान् विष्णुका परमपद है, जिसे प्राप्त करके मन भगवत्प्रेमरूप आनन्दसे भर जाता है॥ १९॥

रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ।
यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥ २०

यस्यां सन्धार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ।
आशु सम्पद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २१

राजोवाच

यथा सन्धार्यते ब्रह्मन् धारणा यत्र सम्मता ।
यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२

श्रीशुक उवाच

जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ।
स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्धिया ॥ २३

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥ २४

आण्डकोशे[1] शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते[2] ।
वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥ २५

पातालमेतस्य हि पादमूलं
पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ
तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥ २६

द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्ते-
रूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं[3] महीपते
नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥ २७

उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपो ररार्टी[4] विदुरादिपुंसः
सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८

इन्द्रादयो बाहव आहुरस्राः
कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।

यदि भगवान्‌का ध्यान करते समय मन रजोगुणसे विक्षिप्त या तमोगुणसे मूढ़ हो जाय तो घबराये नहीं। धैर्यके साथ योगधारणाके द्वारा उसे वशमें करना चाहिये; क्योंकि धारणा उक्त दोनों गुणोंके दोषोंको मिटा देती है ॥ २० ॥ धारणा स्थिर हो जानेपर ध्यानमें जब योगी अपने परम मङ्गलमय आश्रय (भगवान्) को देखता है, तब उसे तुरंत ही भक्तियोगकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २१ ॥

परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! धारणा किस साधनसे किस वस्तुमें किस प्रकार की जाती है और उसका क्या स्वरूप माना गया है, जो शीघ्र ही मनुष्यके मनका मैल मिटा देती है? ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके फिर बुद्धिके द्वारा मनको भगवान्‌के स्थूल रूपमें लगाना चाहिये ॥ २३ ॥ यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब-का-सब जिसमें दीख पड़ता है, वही भगवान्‌का स्थूल-से-स्थूल और विराट् शरीर है ॥ २४ ॥ जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणोंसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड-शरीरमें जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वे ही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है ॥ २५ ॥ तत्त्वज्ञ पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं—पाताल विराट् पुरुषके तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ— एड़ीके ऊपरकी गाँठें महातल हैं, उनके पैरके पिंडे तलातल हैं, ॥ २६ ॥ विश्व मूर्ति भगवान्‌के दोनों घुटने सुतल हैं, जाँघें वितल और अतल हैं, पेड़ू भूतल है, और परीक्षित्! उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते हैं ॥ २७ ॥ आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्गलोक, गलेको महर्लोक, मुखको जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का मस्तकसमूह ही सत्यलोक है ॥ २८ ॥ इन्द्रादि देवता उनकी भुजाएँ हैं। दिशाएँ कान और शब्द श्रवणेन्द्रिय हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनकी नासिकाके

१. प्रा० पा०—अण्डकोशे। २. प्रा० पा०—संयुतः। ३. प्रा० पा०—तज्जघने। ४. प्रा० पा०—ललाटं।

नासत्यदस्रौ परमस्य नासे[1]
घ्राणोऽस्य[2] गन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः
पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।
तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्य-
मापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥ ३०
छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति
दंष्ट्रा यमः स्नेहकला[3] द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च[4] माया
दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥ ३१
व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो
धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य[5] पृष्ठम् ।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ[6]
कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घाः ॥ ३२
नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि
महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा
गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥ ३३
ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्
वासस्तु सन्ध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च
स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४
विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति
सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि
सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥ ३५
वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं
मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।
गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः
स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः[7] ॥ ३६

छिद्र हैं; गन्ध घ्राणेन्द्रिय है और धधकती हुई आग उनका मुख है ॥ २९ ॥ भगवान् विष्णुके नेत्र अन्तरिक्ष हैं, उनमें देखनेकी शक्ति सूर्य है, दोनों पलकें रात और दिन हैं, उनका भ्रूविलास ब्रह्मलोक है। तालु जल है और जिह्वा रस ॥ ३० ॥ वेदोंको भगवान्‌का ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं और यमको दाढ़ें। सब प्रकारके स्नेह दाँत हैं और उनकी जगन्मोहिनी मायाको ही उनकी मुसकान कहते हैं। यह अनन्त सृष्टि उसी मायाका कटाक्ष-विक्षेप है ॥ ३१ ॥ लज्जा ऊपरका होठ और लोभ नीचेका होठ है। धर्म स्तन और अधर्म पीठ है। प्रजापति उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण अण्डकोश हैं, समुद्र कोख हैं और बड़े-बड़े पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं ॥ ३२ ॥ राजन्! विश्वमूर्ति विराट् पुरुषकी नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष रोम हैं। परम प्रबल वायु श्वास है। काल उनकी चाल है और गुणोंका चक्कर चलते रहना ही उनका कर्म है ॥ ३३ ॥ परीक्षित्! बादलोंको उनके केश मानते हैं। सन्ध्या उन अनन्तका वस्त्र है। महात्माओंने अव्यक्त (मूलप्रकृति) को ही उनका हृदय बतलाया है और सब विकारोंका खजाना उनका मन चन्द्रमा कहा गया है ॥ ३४ ॥ महत्तत्त्वको सर्वात्मा भगवान्‌का चित्त कहते हैं और रुद्र उनके अहङ्कार कहे गये हैं। घोड़े, खच्चर, ऊँट और हाथी उनके नख हैं। वनमें रहनेवाले सारे मृग और पशु उनके कटिप्रदेशमें स्थित हैं ॥ ३५ ॥ तरह-तरहके पक्षी उनके अद्भुत रचना-कौशल हैं। स्वायम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं और मनुकी सन्तान मनुष्य उनके निवासस्थान हैं। गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके षड्ज आदि स्वरोंकी स्मृति हैं। दैत्य उनके वीर्य हैं ॥ ३६ ॥

---

१. प्रा० पा०—नासा । २. प्रा० पा०—घ्राणं च । ३. प्रा० पा०—स्नेहकला द्विजाल्यः । ४. प्रा० पा०—हि । ५. प्रा० पा०—धर्मपथः स्वपृष्ठः । ६. प्रा० पा०—मित्रः । ७. प्रा० पा०—स्वरः स्मृतिर्वै भासुरानीकवीर्यः ।

ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा
विड्ऊरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः ।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो
द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥ ३७

इयानसावीश्वरविग्रहस्य
यः सन्निवेशः कथितो मया ते ।
सन्धार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे
मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥ ३८

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व
आत्मा यथा स्वप्रजनेक्षितैकः ।
तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत
नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥ ३९

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जङ्घाएँ और शूद्र उन विराट् पुरुषके चरण हैं। विविध देवताओंके नामसे जो बड़े-बड़े द्रव्यमय यज्ञ किये जाते हैं, वे उनके कर्म हैं ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! विराट्भगवान्‌के स्थूलशरीरका यही स्वरूप है, सो मैंने तुम्हें सुना दिया। इसीमें मुमुक्षु पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर करते हैं; क्योंकि इससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है ॥ ३८ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला स्वप्नावस्थामें अपने-आपको ही विविध पदार्थोंके रूपमें देखता है, वैसे ही सबकी बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा सब कुछ अनुभव करनेवाला सर्वान्तर्यामी परमात्मा भी एक ही है। उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये, अन्य किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यह आसक्ति जीवके अधःपतनका हेतु है ॥ ३९ ॥

★

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्थानुवर्णने[1] प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

★

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म रूपोंकी धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन

श्रीशुक उवाच

एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनि-
र्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ।
तथा ससर्जेदममोघदृष्टि-
र्यथाप्ययात्[2] प्राग् व्यवसायबुद्धिः ॥ १

शाब्दस्य[3] हि ब्रह्मण एष पन्था
यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्
मायामये वासनया शयानः ॥ २

अतः कविर्नामसु यावदर्थः
स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ।
सिद्ध्येऽन्यथार्थे न यतेत तत्र
परिश्रमं तत्र[4] समीक्षमाणः ॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने इसी धारणाके द्वारा प्रसन्न हुए भगवान्‌से वह सृष्टिविषयक स्मृति प्राप्त की थी, जो पहले प्रलयकालमें विलुप्त हो गयी थी। इससे उनकी दृष्टि अमोघ और बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी तब उन्होंने इस जगत्‌को वैसे ही रचा जैसा कि यह प्रलयके पहले था ॥ १ ॥

वेदोंकी वर्णन-शैली ही इस प्रकारकी है कि लोगोंकी बुद्धि स्वर्ग आदि निरर्थक नामोंके फेरमें फँस जाती है, जीव वहाँ सुखकी वासनासे स्वप्न-सा देखता हुआ भटकने लगता है; किंतु उन मायामय लोकोंमें कहीं भी उसे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह विविध नामवाले पदार्थोंसे उतना ही व्यवहार करे, जितना प्रयोजनीय हो। अपनी बुद्धिको उनकी निस्सारताके निश्चयसे परिपूर्ण रखे और एक क्षणके लिये भी असावधान न हो। यदि संसारके पदार्थ प्रारब्ध-वश बिना परिश्रमके यों ही मिल जायँ, तब उनके उपार्जनका परिश्रम व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न न करे ॥ ३ ॥

---

१. प्राचीन प्रतिमें 'महा' पाठ नहीं है। २. प्रा० पा०—यथाश्रयान्प्राग । ३. प्रा० पा०—शाब्दस्य । ४. प्रा० पा०—त्वत्र ।

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-
बाहौ स्वसिद्धे[1] ह्युपबर्हणैः किम्।
सत्यञ्जलौ किं पुरुधान्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः[2] सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥ ५

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध
आत्मा प्रियोऽर्थो[3] भगवाननन्तः।
तं[4] निर्वृतो नियतार्थो भजेत
संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्ता-
मृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात्।
पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां
स्वकर्मजान् परितापाञ्जुषाणम् ॥ ७

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे[5]
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ ८

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं
कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम्।
लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं[6]
स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ ९

उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये[7]
योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम्।
श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धर-
मम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥ १०

जब जमीनपर सोनेसे काम चल सकता है, तब पलँगके लिये प्रयत्न करनेसे क्या प्रयोजन। जब भुजाएँ अपनेको भगवान्‌की कृपासे स्वयं ही मिली हुई हैं, तब तकियोंकी क्या आवश्यकता। जब अञ्जलिसे काम चल सकता है, तब बहुत-से बर्तन क्यों बटोरें। वृक्षकी छाल पहनकर या वस्त्रहीन रहकर भी यदि जीवन धारण किया जा सकता है तो वस्त्रोंकी क्या आवश्यकता ॥ ४ ॥ पहननेको क्या रास्तोंमें चिथड़े नहीं हैं? भूख लगनेपर दूसरोंके लिये ही शरीर धारण करनेवाले वृक्ष क्या फल-फूलकी भिक्षा नहीं देते? जल चाहनेवालोंके लिये नदियाँ क्या बिलकुल सूख गयी हैं? रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ बंद कर दी गयी हैं? अरे भाई! सब न सही, क्या भगवान् भी अपने शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते? ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान् लोग भी धनके नशेमें चूर घमंडी धनियोंकी चापलूसी क्यों करते हैं? ॥ ५ ॥ इस प्रकार विरक्त हो जानेपर अपने हृदयमें नित्य विराजमान, स्वतःसिद्ध, आत्मस्वरूप, परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् हैं, बड़े प्रेम और आनन्दसे दृढ़ निश्चय करके उन्हींका भजन करे; क्योंकि उनके भजनसे जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले अज्ञानका नाश हो जाता है ॥ ६ ॥ पशुओंकी बात तो अलग है; परन्तु मनुष्योंमें भला ऐसा कौन है, जो लोगोंको इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरकर अपने कर्मजन्य दुःखोंको भोगते हुए देखकर भी भगवान्‌का मङ्गलमय चिन्तन नहीं करेगा, इन असत् विषय-भोगोंमें ही अपने चित्तको भटकने देगा? ॥ ७ ॥

कोई-कोई साधक अपने शरीरके भीतर हृदयाकाशमें विराजमान भगवान्‌के प्रादेशमात्र स्वरूपकी धारणा करते हैं। वे ऐसा ध्यान करते हैं कि भगवान्‌की चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं ॥ ८ ॥ उनके मुखपर प्रसन्नता झलक रही है। कमलके समान विशाल और कोमल नेत्र हैं। कदम्बके पुष्पकी केसरके समान पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओंमें श्रेष्ठ रत्नोंसे जड़े हुए सोनेके बाजूबंद शोभायमान हैं। सिरपर बड़ा ही सुन्दर मुकुट और कानोंमें कुण्डल हैं, जिनमें जड़े हुए बहुमूल्य रत्न जगमगा रहे हैं ॥ ९ ॥ उनके चरण-कमल योगेश्वरोंके खिले हुए हृदयकमलकी कर्णिकापर विराजित हैं। उनके हृदयपर श्रीवत्सका चिह्न—एक सुनहरी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि लटक रही है। वक्षःस्थल कभी न कुम्हलानेवाली वनमालासे घिरा हुआ है ॥ १० ॥

---

१. प्रा० पा०—बाहौ च सिद्धे। २. प्रा० पा०—फलभृतः। ३. प्रा० पा०—प्रियार्थो। ४. प्रा० पा०—सुनिर्वृतो। ५. प्रा० पा०—केचित्स्वदेहेऽन्तर्हृदोऽवकाशे। ६. प्रा० पा०—महाहारहिरण्मया०। ७. प्रा० पा०—कर्णिकालयम्।

विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकै-
र्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।
स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलै-[1]
र्विरोचमाननहासपेशलम् ॥ ११

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्-
भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ।
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं[2]
यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ॥ १२

एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्[3]
पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्
परं परं शुद्ध्यति[4] धीर्यथा यथा ॥ १३

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्
विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।
तावत् स्थवीयः पुरुषस्य रूपं
क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४

स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यति-
र्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ।
काले च देशे च मनो न सज्जयेत्
प्राणान् नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥ १५

मनः[5] स्वबुद्ध्यामलया नियम्य
क्षेत्रज्ञ[6] एतां निनयेत् तमात्मनि ।
आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो
लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६

न यत्र कालोऽनिमिषां परः[7] प्रभुः
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च
न वै विकारो[8] न महान् प्रधानम् ॥ १७

वे कमरमें करधनी, अँगुलियोंमें बहुमूल्य अँगूठी, चरणोंमें नूपुर और हाथोंमें कंगन आदि आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके बालोंकी लटें बहुत चिकनी, निर्मल, घुँघराली और नीली हैं। उनका मुख-कमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिल रहा है ॥ ११ ॥ लीलापूर्ण उन्मुक्त हास्य और चितवनसे शोभायमान भौंहोंके द्वारा वे भक्तजनोंपर अनन्त अनुग्रहकी वर्षा कर रहे हैं। जबतक मन इस धारणाके द्वारा स्थिर न हो जाय, तबतक बार-बार इन चिन्तनस्वरूप भगवान्‌को देखते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ भगवान्‌के चरण-कमलोंसे लेकर उनके मुसकानयुक्त मुख-कमलपर्यन्त समस्त अङ्गोंकी एक-एक करके बुद्धिके द्वारा धारणा करनी चाहिये। जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जायगी, वैसे-वैसे चित्त स्थिर होता जायगा। जब एक अङ्गका ध्यान ठीक-ठीक होने लगे, तब उसे छोड़कर दूसरे अङ्गका ध्यान करना चाहिये ॥ १३ ॥ ये विश्वेश्वर भगवान् दृश्य नहीं, द्रष्टा हैं। सगुण, निर्गुण—सब कुछ इन्हींका स्वरूप है। जबतक इनमें अनन्य प्रेममय भक्तियोग न हो जाय, तबतक साधकको नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके बाद एकाग्रतासे भगवान्‌के उपर्युक्त स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये ॥ १४ ॥

परीक्षित्! जब योगी पुरुष इस मनुष्य-लोकको छोड़ना चाहे, तब देश और कालमें मनको न लगाये। सुखपूर्वक स्थिर आसनसे बैठकर प्राणोंको जीतकर मनसे इन्द्रियोंका संयम करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित करके मनके साथ बुद्धिको क्षेत्रज्ञमें और क्षेत्रज्ञको अन्तरात्मामें लीन कर दे। फिर अन्तरात्माको परमात्मामें लीन करके धीर पुरुष उस परम शान्तिमय अवस्थामें स्थित हो जाय। फिर उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता ॥ १६ ॥ इस अवस्थामें सत्त्वगुण भी नहीं है, फिर रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या है। अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृतिका भी वहाँ अस्तित्व नहीं है। उस स्थितिमें जब देवताओंके नियामक कालकी भी दाल नहीं गलती, तब देवता और उनके अधीन रहनेवाले प्राणी तो रह ही कैसे सकते हैं? ॥ १७ ॥ योगीलोग 'यह नहीं, यह

१. प्रा० पा०—स्निधामलैः । २. प्रा० पा०—मयमेतमीश्व० । ३. प्रा० पा०—भावयन् । ४. प्रा० पा०—चात्मनि । ५. प्रा० पा०—नः बुद्ध्या । ६. प्रा० पा०—क्षेत्रज्ञमेतं निनयेद् य आत्मनि । ७. प्रा० पा०—प्रभुः । ८. प्रा० पा०—विकाराः ।

परं[1] पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥ १८

इत्थं मुनिस्तूपरमेद् व्यवस्थितो
विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ।
स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट् सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९

नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मा-
दुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ।
ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी
स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २०

तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत
निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ।
स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टि-
र्निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत्परं गतः ॥ २१

यदि प्रयास्यन् नृप[2] पारमेष्ठ्यं
वैहायसानामुत यद् विहारम्[3] ।
अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये
सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥ २२

योगेश्वराणां गतिमाहुरन्त-
र्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ।
न[4] कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति
विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३

वैश्वानरं याति विहायसा गतः
सुषुम्णया ब्रह्मपथेन[5] शोचिषा[6] ।
विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्
प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४

नहीं'—इस प्रकार परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका त्याग करना चाहते हैं और शरीर तथा उसके सम्बन्धी पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका त्याग करके हृदयके द्वारा पद-पदपर भगवान्‌के जिस परम पूज्य स्वरूपका आलिङ्गन करते हुए अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण रहते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है—इस विषयमें समस्त शास्त्रोंकी सम्मति है ॥ १८ ॥

ज्ञानदृष्टिके बलसे जिसके चित्तकी वासना नष्ट हो गयी है, उस ब्रह्मनिष्ठ योगीको इस प्रकार अपने शरीरका त्याग करना चाहिये। पहले एड़ीसे अपनी गुदाको दबाकर स्थिर हो जाय और तब बिना घबड़ाहटके प्राणवायुको षट्चक्रभेदनकी रीतिसे ऊपर ले जाय ॥ १९ ॥ मनस्वी योगीको चाहिये कि नाभिचक्र मणिपूरकमें स्थित वायुको हृदयचक्र अनाहतमें, वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्षःस्थलके ऊपर विशुद्ध चक्रमें, फिर उस वायुको धीरे-धीरे तालुमूलमें (विशुद्ध चक्रके अग्रभागमें) चढ़ा दे ॥ २० ॥ तदनन्तर दो आँख, दो कान, दो नासाछिद्र और मुख—इन सातों छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको भौंहोंके बीच आज्ञाचक्रमें ले जाय। यदि किसी लोकमें जानेकी इच्छा न हो तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहीं रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर परमात्मामें स्थित हो जाय। इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके शरीर-इन्द्रियादिको छोड़ दे ॥ २१ ॥

परीक्षित्! यदि योगीकी इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँ, आठों सिद्धियाँ प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धोंके साथ विहार करूँ अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्डके किसी भी प्रदेशमें विचरण करूँ, तो उसे मन और इन्द्रियोंको साथ ही लेकर शरीरसे निकलना चाहिये ॥ २२ ॥ योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है। उपासना, तपस्या, योग और ज्ञानका सेवन करनेवाले योगियोंको त्रिलोकीके बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेका अधिकार होता है। केवल कर्मोंके द्वारा इस प्रकार बेरोक-टोक विचरना नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ परीक्षित्! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णाके द्वारा जब ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करता है, तब पहले वह आकाशमार्गसे अग्निलोकमें जाता है; वहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं। इसके बाद वह वहाँसे ऊपर भगवान् श्रीहरिके शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है ॥ २४ ॥

---

१. प्रा० पा०—पदं परं। २. प्रा० पा०—प्रयास्यन्नथ। ३. प्रा० पा०—विहारान्। ४. प्रा० पा०—तत्कर्म०। ५. प्रा० पा०—ब्रह्मपदेन। ६. प्रा० पा०—योऽर्चिषा।

तद् विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णो-
रणीयसा विरजेनात्मनैकः ।
नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति
कल्पायुषो यद्[1] विबुधा रमन्ते ॥ २५
अथो अनन्तस्य मुखानलेन
दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।
निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं[2]
यद् द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥ २६
न यत्र शोको न जरा न मृत्यु-
र्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ।
यच्चित्ततोऽदः कृपयानिदंविदां
दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७
ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भय-
स्तेनात्मनापोऽनलमूर्तिरत्वरन् ।
ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले
वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥ २८
घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं
रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ।
श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं
प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९
स[3] भूतसूक्ष्मेन्द्रियसंनिकर्षं
मनोमयं देवमयं विकार्यम् ।
संसाद्य गत्या सह तेन याति
विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधम् ॥ ३०
तेनात्मनाऽऽत्मानमुपैति शान्त-
मानन्दमानन्दमयोऽवसाने ।
एतां गतिं भागवतीं गतो यः
स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥ ३१

भगवान् विष्णुका यह शिशुमार चक्र विश्वब्रह्माण्डके भ्रमणका केन्द्र है। उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्ष्म एवं निर्मल शरीरसे वह अकेला ही महर्लोकमें जाता है। वह लोक ब्रह्मवेत्ताओंके द्वारा भी वन्दित है और उसमें कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले देवता विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ फिर जब प्रलयका समय आता है, तब नीचेके लोकोंको शेषके मुखसे निकली हुई आगके द्वारा भस्म होते देख वह ब्रह्मलोकमें चला जाता है, जिस ब्रह्मलोकमें बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानोंपर निवास करते हैं। उस ब्रह्मलोककी आयु ब्रह्माकी आयुके समान ही दो परार्द्धकी है ॥ २६ ॥ वहाँ न शोक है न दुःख, न बुढ़ापा है न मृत्यु। फिर वहाँ किसी प्रकारका उद्वेग या भय तो हो ही कैसे सकता है। वहाँ यदि दुःख है तो केवल एक बातका। वह यही कि इस परमपदको न जाननेवाले लोगोंके जन्ममृत्युमय अत्यन्त घोर सङ्कटोंको देखकर दयावश वहाँके लोगोंके मनमें बड़ी व्यथा होती है ॥ २७ ॥ सत्यलोकमें पहुँचनेके पश्चात् वह योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीरको पृथ्वीसे मिला देता है और फिर उतावली न करते हुए सात आवरणोंका भेदन करता है। पृथ्वीरूपसे जलको और जलरूपसे अग्निमय आवरणोंको प्राप्त होकर वह ज्योतिरूपसे वायुरूप आवरणमें आ जाता है और वहाँसे समयपर ब्रह्मकी अनन्तताका बोध करानेवाले आकाशरूप आवरणको प्राप्त करता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार स्थूल आवरणोंको पार करते समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठानमें लीन होती जाती हैं। घ्राणेन्द्रिय गन्धतन्मात्रामें, रसना रसतन्मात्रामें, नेत्र रूपतन्मात्रामें, त्वचा स्पर्शतन्मात्रामें, श्रोत्र शब्दतन्मात्रामें और कर्मेन्द्रियाँ अपनी-अपनी क्रिया-शक्तिमें मिलकर अपने-अपने सूक्ष्मस्वरूपको प्राप्त हो जाती हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार योगी पञ्चभूतोंके स्थूल-सूक्ष्म आवरणोंको पार करके अहङ्कारमें प्रवेश करता है। वहाँ सूक्ष्म भूतोंको तामस अहङ्कारमें, इन्द्रियोंको राजस अहङ्कारमें तथा मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको सात्त्विक अहङ्कारमें लीन कर देता है। इसके बाद अहङ्कारके सहित लयरूप गतिके द्वारा महत्तत्त्वमें प्रवेश करके अन्तमें समस्त गुणोंके लयस्थान प्रकृतिरूप आवरणमें जा मिलता है ॥ ३० ॥ परीक्षित्! महाप्रलयके समय प्रकृतिरूप आवरणका भी लय हो जानेपर वह योगी स्वयं आनन्दस्वरूप होकर अपने उस निरावरण रूपसे

---

१. प्रा० पा०—विबुधा यद्रमन्ते। २. प्रा० पा०—विश्वेश्वर०। ३. प्राचीन प्रतिमें 'स भूतसूक्ष्मे०.....' से लेकर '....ऽवसाने' तक डेढ़ श्लोककी जगह कुछ परिवर्तनके साथ दो चरण और बढ़ाकर पूरे दो श्लोक मिलते हैं, यथा—

'स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षात् सनातनोऽसौ भगवाननादिः ।
अनामयं देवमयं विकार्यं संसाद्य गत्या सह तेन याति ॥ १
विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधं तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तम् ।
आनन्दमानन्दमयोऽवसाने सर्वात्मके ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ २

इसके आगे मूलके ही अनुसार है।

एते सृती ते नृप वेदगीते
त्वयाभिपृष्टे ह[1] सनातने च।
ये[2] वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट
आराधितो भगवान् वासुदेवः ॥ ३२

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥ ३३

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्येंन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत् ॥ ३४

भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः।
दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु[3] सम्भृतम्।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥ ३७

आनन्दस्वरूप शान्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जिसे इस भगवन्मयी गतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता ॥ ३१ ॥ परीक्षित्! तुमने जो पूछा था, उसके उत्तरमें मैंने वेदोक्त द्विविध सनातन मार्ग सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका तुमसे वर्णन किया। पहले ब्रह्माजीने भगवान् वासुदेवकी आराधना करके उनसे जब प्रश्न किया था, तब उन्होंने उत्तरमें इन्हीं दोनों मार्गोंकी बात ब्रह्माजीसे कही थी ॥ ३२ ॥

संसार-चक्रमें पड़े हुए मनुष्यके लिये, जिस साधनके द्वारा उसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्माने एकाग्र चित्तसे सारे वेदोंका तीन बार अनुशीलन करके अपनी बुद्धिसे यही निश्चय किया कि जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥ ३४ ॥ समस्त चर-अचर प्राणियोंमें उनके आत्मारूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही लक्षित होते हैं; क्योंकि ये बुद्धि आदि दृश्य पदार्थ उनका अनुमान करानेवाले लक्षण हैं, वे इन सबके साक्षी एकमात्र द्रष्टा हैं ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि सब समय और सभी स्थितियोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भगवान् श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें ॥ ३६ ॥ राजन्! संत पुरुष आत्मस्वरूप भगवान्‌की कथाका मधुर अमृत बाँटते ही रहते हैं; जो अपने कानके दोनोंमें भर-भरकर उनका पान करते हैं, उनके हृदयसे विषयोंका विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं[4] नाम[5] द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

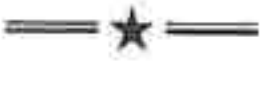

१. प्रा० पा०—च। २. प्रा० पा०—यद्वै। ३. प्रा० पा०—पुटेन। ४. प्रा० पा०—महापुरुष०। ५. प्राचीन प्रतिमें 'नाम' नहीं है।

अथ तृतीयोऽध्यायः

कामनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण

श्रीशुक उवाच

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान् यद्भवान् मम ।
नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ।
इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु[1] प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ।
वसुकामो वसून् रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३

अन्नाद्यकामस्त्वदितिं[2] स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।
विश्वान्देवान् राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ।
प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् ।
आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६

यज्ञं यजेद् यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ।
विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ[3] उमां सतीम् ॥ ७

धर्मार्थ[4] उत्तमश्लोकं तन्तुं[5] तन्वन् पितॄन् यजेत् ।
रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८

राज्यकामो मनून् देवान् निर्ऋतिं त्वभिचरन् यजेत्[6] ।
कामकामो यजेत् सोममकामः पुरुषं परम्[7] ॥ ९

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १०

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ।
भगवत्यचलो भावो यद् भागवतसंगतः ॥ ११

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि मरते समय बुद्धिमान् मनुष्यको क्या करना चाहिये, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया ॥ १ ॥ जो ब्रह्मतेजका इच्छुक हो, वह बृहस्पतिकी; जिसे इन्द्रियोंकी विशेष शक्तिकी कामना हो, वह इन्द्रकी और जिसे सन्तानकी लालसा हो, वह प्रजापतियोंकी उपासना करे ॥ २ ॥ जिसे लक्ष्मी चाहिये वह मायादेवीकी, जिसे तेज चाहिये वह अग्निकी, जिसे धन चाहिये वह वसुओंकी और जिस प्रभावशाली पुरुषको वीरताकी चाह हो उसे रुद्रोंकी उपासना करनी चाहिये ॥ ३ ॥ जिसे बहुत अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा हो वह अदितिका; जिसे स्वर्गकी कामना हो वह अदितिके पुत्र देवताओंका, जिसे राज्यकी अभिलाषा हो वह विश्वेदेवोंका और जो प्रजाको अपने अनुकूल बनानेकी इच्छा रखता हो उसे साध्य देवताओंका आराधन करना चाहिये ॥ ४ ॥ आयुकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका, पुष्टिकी इच्छासे पृथ्वीका और प्रतिष्ठाकी चाह हो तो लोकमाता पृथ्वी और द्यौ (आकाश) का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥ सौन्दर्यकी चाहसे गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी और सबका स्वामी बननेके लिये ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये ॥ ६ ॥ जिसे यशकी इच्छा हो वह यज्ञपुरुषकी, जिसे खजानेकी लालसा हो वह वरुणकी; विद्या प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा हो तो भगवान् शङ्करकी और पति-पत्नीमें परस्पर प्रेम बनाये रखनेके लिये पार्वतीजीकी उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ धर्म-उपार्जन करनेके लिये विष्णुभगवान्की, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी और बलवान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिये ॥ ८ ॥ राज्यके लिये मन्वन्तरोंके अधिपति देवोंको, अभिचारके लिये निर्ऋतिको, भोगोंके लिये चन्द्रमाको और निष्कामता प्राप्त करनेके लिये परम पुरुष नारायणको भजना चाहिये ॥ ९ ॥ और जो बुद्धिमान् पुरुष है—वह चाहे निष्काम हो, समस्त कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्ष चाहता हो—उसे तो तीव्र भक्तियोगके द्वारा केवल पुरुषोत्तम भगवान्की ही आराधना करनी चाहिये ॥१०॥ जितने भी उपासक हैं, उनका सबसे बड़ा हित इसीमें है कि वे भगवान्के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करके भगवान्में अविचल प्रेम प्राप्त कर लें ॥११॥

---

१. प्रा० पा०—कामाय । २. प्रा० पा०—'''त्वतिथिं । ३. प्रा० पा०—त्यार्थमुमां । ४. प्रा० पा०—धर्मार्थमुत्तम० । ५. प्रा० पा०—तन्तुकामः पितॄन् । ६. प्रा० पा०—नरः । ७. प्रा० पा०—पुमान्

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्र-
मात्मप्रसाद [१]उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।
कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः
को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२

शौनक उवाच

इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ।
किमन्यत्पृष्टवान् भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३

एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ।
कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ।
बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५

वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायणः ।
उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २०

भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥ २१

ऐसे पुरुषोंके सत्सङ्गमें जो भगवान्‌की लीला-कथाएँ होती हैं, उनसे उस दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे संसार-सागरकी त्रिगुणमयी तरङ्गमालाओंके थपेड़े शान्त हो जाते हैं, हृदय शुद्ध होकर आनन्दका अनुभव होने लगता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती, कैवल्यमोक्षका सर्वसम्मत मार्ग भक्तियोग प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌की ऐसी रसमयी कथाओंका चस्का लग जानेपर भला कौन ऐसा है, जो उनमें प्रेम न करे ॥ १२ ॥

शौनकजीने कहा—सूतजी ! राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीकी यह बात सुनकर उनसे और क्या पूछा ? वे तो सर्वज्ञ होनेके साथ-ही-साथ मधुर वर्णन करनेमें भी बड़े निपुण थे ॥ १३ ॥ सूतजी ! आप तो सब कुछ जानते हैं, हमलोग उनकी वह बातचीत बड़े प्रेमसे सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके अवश्य सुनाइये। क्योंकि संतोंकी सभामें ऐसी ही बातें होती हैं, जिनका पर्यवसान भगवान्‌की रसमयी लीला-कथामें ही होता है ॥ १४ ॥ पाण्डुनन्दन महारथी राजा परीक्षित् बड़े भगवद्भक्त थे। बाल्यावस्थामें खिलौनोंसे खेलते समय भी वे श्रीकृष्णलीलाका ही रस लेते थे ॥ १५ ॥ भगवन्मय श्रीशुकदेवजी भी जन्मसे ही भगवत्परायण हैं। ऐसे संतोंके सत्सङ्गमें भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंकी दिव्य चर्चा अवश्य ही हुई होगी ॥ १६ ॥ जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गान अथवा श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, उसके अतिरिक्त सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ जा रही है। ये भगवान् सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं ॥ १७ ॥ क्या वृक्ष नहीं जीते ? क्या लुहारकी धौंकनी साँस नहीं लेती ? गाँवके अन्य पालतू पशु क्या मनुष्य-पशुकी ही तरह खाते-पीते या मैथुन नहीं करते ? ॥ १८ ॥ जिसके कानमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथा कभी नहीं पड़ी, वह नर पशु, कुत्ते, ग्रामसूकर, ऊँट और गधेसे भी गया बीता है ॥ १९ ॥

सूतजी ! जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कभी नहीं सुनता, उसके कान बिलके समान हैं। जो जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है; उसका तो न रहना ही अच्छा है ॥ २० ॥ जो सिर कभी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होनेपर भी बोझामात्र ही है। जो हाथ भगवान्‌की सेवा-पूजा नहीं करते, वे सोनेके कंगनसे भूषित होनेपर भी मुर्देके हाथ हैं ॥ २१ ॥

---

१. प्रा० पा०—उभयत्र। यह पाठान्तर श्रीधरस्वामीने भी माना है।

बर्हायिते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो[1] हरेर्यौ ॥ २२

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या[2] मनुजस्तुलस्याः
श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४

अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं
प्रभाषसे भागवतप्रधानः[3] ।
यदाह वैयासकिरात्मविद्या-
विशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥ २५

जो आँखें भगवान्‌की याद दिलानेवाली मूर्ति, तीर्थ, नदी आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पाँखमें बने हुए आँखोंके चिह्नके समान निरर्थक हैं। मनुष्योंके वे पैर चलनेकी शक्ति रखनेपर भी न चलनेवाले पेड़ों-जैसे ही हैं, जो भगवान्‌की लीला-स्थलियोंकी यात्रा नहीं करते ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यने भगवत्प्रेमी संतोंके चरणोंकी धूल कभी सिरपर नहीं चढ़ायी, वह जीता हुआ भी मुर्दा है। जिस मनुष्यने भगवान्‌के चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध लेकर उसकी सराहना नहीं की, वह श्वास लेता हुआ भी श्वासरहित शव है ॥ २३ ॥ सूतजी ! वह हृदय नहीं, लोहा है, जो भगवान्‌के मंगलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेपर भी पिघलकर उन्हींकी ओर बह नहीं जाता। जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस समय नेत्रोंमें आँसू छलकने लगते हैं और शरीरका रोम-रोम खिल उठता है ॥ २४ ॥ प्रिय सूतजी ! आपकी वाणी हमारे हृदयको मधुरतासे भर देती है। इसलिये भगवान्‌के परम भक्त, आत्मविद्या-विशारद श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्‌के सुन्दर प्रश्न करनेपर जो कुछ कहा, वह संवाद आप कृपा करके हमलोगोंको सुनाइये ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे[4] तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१. प्रा० पा०—व्रजता । २. प्रा० पा०—यो विष्णु० । ३. प्रा० पा०—···तः प्र० । ४. प्राचीन प्रतिमें यहाँ 'महापुरुषवर्णनं' इतना पाठ अधिक है ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

राजाका सृष्टिविषयक प्रश्न और शुकदेवजीका कथारम्भ

सूत उवाच

वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ।
उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥ २

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ।
कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः[1] ॥ ३

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य[2] कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ।
वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीके वचन भगवत्तत्त्वका निश्चय करानेवाले थे। उत्तरानन्दन राजा परीक्षित्‌ने उन्हें सुनकर अपनी शुद्ध बुद्धि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्यभावसे समर्पित कर दी ॥ १ ॥ शरीर, पत्नी, पुत्र, महल, पशु, धन, भाई-बन्धु और निष्कण्टक राज्यमें नित्यके अभ्यासके कारण उनकी दृढ़ ममता हो गयी थी। एक क्षणमें ही उन्होंने उस ममताका त्याग कर दिया ॥ २ ॥ शौनकादि ऋषियो ! महामनस्वी परीक्षित्‌ने अपनी मृत्युका निश्चित समय जान लिया था। इसलिये उन्होंने धर्म, अर्थ और कामसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी कर्म थे, उनका संन्यास कर दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णमें सुदृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर बड़ी श्रद्धासे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा सुननेके लिये उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे यही प्रश्न किया, जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥ ३-४ ॥

राजोवाच

समीचीनं वचो ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तवानघ ।
तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५

भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ।
यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६

यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः ।
यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ।
आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥ ७

नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्भुतकर्मणः ।
दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८

यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत् क्रमशोऽपि वा ।
बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन् कर्माणि जन्मभिः ॥ ९

विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान् यथा ।
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥ १०

परीक्षित्‌ने पूछा—भगवत्स्वरूप मुनिवर ! आप परम पवित्र और सर्वज्ञ हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य एवं उचित है। आप ज्यों-ज्यों भगवान्‌की कथा कहते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरे अज्ञानका परदा फटता जा रहा है ॥ ५ ॥ मैं आपसे फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् अपनी मायासे इस संसारकी सृष्टि कैसे करते हैं। इस संसारकी रचना तो इतनी रहस्यमयी है कि ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल भी इसके समझनेमें भूल कर बैठते हैं ॥ ६ ॥ भगवान् कैसे इस विश्वकी रक्षा और फिर संहार करते हैं ? अनन्तशक्ति परमात्मा किन-किन शक्तियोंका आश्रय लेकर अपने-आपको ही खिलौने बनाकर खेलते हैं ? वे बच्चोंके बनाये हुए घरौंदोंकी तरह ब्रह्माण्डोंको कैसे बनाते हैं और फिर किस प्रकार बात-की-बातमें मिटा देते हैं ? ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीहरिकी लीलाएँ बड़ी ही अद्‌भुत—अचिन्त्य हैं। इसमें संदेह नहीं कि बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी उनकी लीलाका रहस्य समझना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ भगवान् तो अकेले ही हैं। वे बहुत-से कर्म करनेके लिये पुरुषरूपसे प्रकृतिके विभिन्न गुणोंको एक साथ ही धारण करते हैं अथवा अनेकों अवतार ग्रहण करके उन्हें क्रमशः धारण करते हैं ॥ ९ ॥ मुनिवर ! आप वेद और ब्रह्मतत्त्व दोनोंके पूर्ण मर्मज्ञ हैं, इसलिये मेरे इस सन्देहका निवारण कीजिये ॥ १० ॥

सूत उवाच

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः[1] ।
हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११

श्रीशुक उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे
सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना-
मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसता-
मसम्भवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे
व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्
सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमा-
स्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्कायवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८

सूतजी कहते हैं—जब राजा परीक्षित्‌ने भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करके अपना प्रवचन प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं; जो समस्त चर-अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिके विषय नहीं हैं; जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है ॥ १२ ॥ हम पुनः बार-बार उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, जो सत्पुरुषोंका दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेमका दान करते हैं, दुष्टोंकी सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं तथा जो लोग परमहंस आश्रममें स्थित हैं, उन्हें उनकी भी अभीष्ट वस्तुका दान करते हैं। क्योंकि चर-अचर समस्त प्राणी उन्हींकी मूर्ति हैं, इसलिये किसीसे भी उनका पक्षपात नहीं है ॥ १३ ॥ जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करनेवाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते; जिनके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्यसे युक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है ॥ १५ ॥ विवेकी पुरुष जिनके चरणकमलोंकी शरण लेकर अपने हृदयसे इस लोक और परलोककी आसक्ति निकाल डालते हैं और बिना किसी परिश्रमके ही ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय कीर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णको अनेक बार नमस्कार है ॥ १६ ॥ बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है ॥ १८ ॥

---

१. प्रा० पा०—विभोः ।

स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वर-
स्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि-
र्वितर्क्यलिङ्गो[1] भगवान् प्रसीदताम् ॥ १९

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति-
र्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां
प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥ २०

यदङ्घ्र्यभिध्यानसमाधिधौतया
धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं
स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥ २१

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य[2] सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा[3] प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभु-
र्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ।
भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः
सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे ॥ २३

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४

एतदेवात्मभू राजन् नारदाय विपृच्छते ।
वेदगर्भोऽभ्यधात् साक्षाद्[4] यदाह हरिरात्मनः ॥ २५

वे ही भगवान् ज्ञानियोंके आत्मा हैं, भक्तोंके स्वामी हैं, कर्मकाण्डियोंके लिये वेदमूर्ति हैं, धार्मिकोंके लिये धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियोंके लिये तपःस्वरूप हैं। ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदयसे उनके स्वरूपका चिन्तन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं। वे मुझपर अपने अनुग्रहकी— प्रसादकी वर्षा करें ॥ १९ ॥ जो समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी लक्ष्मीदेवीके पति हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता एवं फलदाता हैं, प्रजाके रक्षक हैं, सबके अन्तर्यामी और समस्त लोकोंके पालनकर्ता हैं तथा पृथ्वीदेवीके स्वामी हैं, जिन्होंने यदुवंशमें प्रकट होकर अन्धक, वृष्णि एवं यदुवंशके लोगोंकी रक्षा की है, तथा जो उन लोगोंके एकमात्र आश्रय रहे हैं—वे भक्तवत्सल, संतजनोंके सर्वस्व श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ विद्वान् पुरुष जिनके चरणकमलोंके चिन्तनरूप समाधिसे शुद्ध हुई बुद्धिके द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं तथा उनके दर्शनके अनन्तर अपनी-अपनी मति और रुचिके अनुसार जिनके स्वरूपका वर्णन करते रहते हैं, वे प्रेम और मुक्तिके लुटानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ जिन्होंने सृष्टिके समय ब्रह्माके हृदयमें पूर्वकल्पकी स्मृति जागरित करनेके लिये ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीको प्रेरित किया और वे अपने अङ्गोंके सहित वेदके रूपमें उनके मुखसे प्रकट हुईं, वे ज्ञानके मूलकारण भगवान् मुझपर कृपा करें, मेरे हृदयमें प्रकट हों ॥ २२ ॥ भगवान् ही पञ्चमहाभूतोंसे इन शरीरोंका निर्माण करके इनमें जीवरूपसे शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण और एक मन—इन सोलह कलाओंसे युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयोंका भोग करते हैं। वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणीको अपने गुणोंसे अलङ्कृत कर दें ॥ २३ ॥ संत पुरुष जिनके मुखकमलसे मकरन्दके समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं उन वासुदेवावतार सर्वज्ञ भगवान् व्यासके चरणोंमें मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! वेदगर्भ स्वयम्भू ब्रह्माने नारदके प्रश्न करनेपर यही बात कही थी, जिसका स्वयं भगवान् नारायणने उन्हें उपदेश किया था (और वही मैं तुमसे कह रहा हूँ) ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीय-
स्कन्धे[5] चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

१. प्रा० पा०—व्यतर्क्य २. प्रा० पा०—वितन्वतोऽजस्य । ३. प्रा० पा०—विलक्षणा । ४. प्रा० पा०—सर्वं यदाह हरिरीश्वरः । ५. प्राचीन प्रतिमें 'पुरुषसंस्थानुवर्णनं' इतना पाठ अधिक है ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सृष्टि-वर्णन

नारद उवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ।
तद् विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १

यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ।
यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २

सर्वं ह्येतद् भवान् वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
करामलकवद् विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३

यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ।
एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४

आत्मन् भावयसे तानि न पराभावयन् स्वयम् ।
आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः[1] ॥ ५

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं[2] न समं विभो ।
नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत् किञ्चिदन्यतः ॥ ६

स भवानचरद् घोरं यत् तपः सुसमाहितः ।
तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ॥ ७

एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ।
विजानीहि यथैवेदमहं बुद्ध्येऽनुशासितः ॥ ८

नारदजीने पूछा—पिताजी ! आप केवल मेरे ही नहीं, सबके पिता, समस्त देवताओंसे श्रेष्ठ एवं सृष्टिकर्ता हैं। आपको मेरा प्रणाम है। आप मुझे वह ज्ञान दीजिये, जिससे आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है ॥ १ ॥ पिताजी ! इस संसारका क्या लक्षण है ? इसका आधार क्या है ? इसका निर्माण किसने किया है ? इसका प्रलय किसमें होता है ? यह किसके अधीन है ? और वास्तवमें यह है क्या वस्तु ? आप इसका तत्त्व बतलाइये ॥ २ ॥ आप तो यह सब कुछ जानते हैं; क्योंकि जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होगा, उसके स्वामी आप ही हैं। यह सारा संसार हथेलीपर रखे हुए आँवलेके समान आपकी ज्ञान-दृष्टिके अन्तर्गत ही है ॥ ३ ॥ पिताजी ! आपको यह ज्ञान कहाँसे मिला ? आप किसके आधारपर ठहरे हुए हैं ? आपका स्वामी कौन है ? और आपका स्वरूप क्या है ? आप अकेले ही अपनी मायासे पञ्चभूतोंके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं, कितना अद्भुत है ! ॥ ४ ॥ जैसे मकड़ी अनायास ही अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें खेलने लगती है, वैसे ही आप अपनी शक्तिके आश्रयसे जीवोंको अपनेमें ही उत्पन्न करते हैं और फिर भी आपमें कोई विकार नहीं होता ॥ ५ ॥ जगत्में नाम, रूप और गुणोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसमें मैं ऐसी कोई सत्, असत्, उत्तम, मध्यम या अधम वस्तु नहीं देखता, जो आपके सिवा और किसीसे उत्पन्न हुई हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार सबके ईश्वर होकर भी आपने एकाग्र चित्तसे घोर तपस्या की, इस बातसे मुझे मोहके साथ-साथ बहुत बड़ी शङ्का भी हो रही है कि आपसे बड़ा भी कोई है क्या ॥ ७ ॥ पिताजी ! आप सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझे इस प्रकार समझाइये कि जिससे मैं आपके उपदेशको ठीक-ठीक समझ सकूँ ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक् कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ।
यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्यदर्शने ॥ ९

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ।
अविज्ञाय परं मत्त[3] एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १०

ब्रह्माजीने कहा—बेटा नारद ! तुमने जीवोंके प्रति करुणाके भावसे भरकर यह बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि इससे भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेकी प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ तुमने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, तुम्हारा वह कथन भी असत्य नहीं है। क्योंकि जबतक मुझसे परेका तत्त्व—जो स्वयं भगवान् ही हैं—जान नहीं लिया जाता, तबतक मेरा ऐसा ही प्रभाव प्रतीत होता है ॥ १० ॥

---

१. प्रा० पा०—सूत्रनाभि० । २. प्रा० पा०—तस्मि० । ३. प्रा० पा०—तत्त्वमेतावत्त्वं ।

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ।
यथार्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया[1] मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ।
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६

तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ।
सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ।
बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९

स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ।
स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥ २०

कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ।
आत्मन् यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१

कालाद् गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ।
कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२

जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होकर जगत्में प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही मैं भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान्‌के चिन्मय प्रकाशसे प्रकाशित होकर संसारको प्रकाशित कर रहा हूँ ॥ ११ ॥ उन भगवान् वासुदेवकी मैं वन्दना करता हूँ और ध्यान भी, जिनकी दुर्जय मायासे मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ यह माया तो उनकी आँखोंके सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूरसे ही भाग जाती है। परन्तु संसारके अज्ञानी जन उसीसे मोहित होकर 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार बकते रहते हैं ॥ १३ ॥ भगवत्स्वरूप नारद ! द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव—वास्तवमें भगवान्‌से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है ॥ १४ ॥ वेद नारायणके परायण हैं। देवता भी नारायणके ही अङ्गोंमें कल्पित हुए हैं और समस्त यज्ञ भी नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही हैं तथा उनसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, वे भी नारायणमें ही कल्पित हैं ॥ १५ ॥ सब प्रकारके योग भी नारायणकी प्राप्तिके ही हेतु हैं। सारी तपस्याएँ नारायणकी ओर ही ले जानेवाली हैं, ज्ञानके द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनोंका पर्यवसान भगवान् नारायणमें ही है ॥ १६ ॥ वे द्रष्टा होनेपर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही मुझे बनाया है और उनकी दृष्टिसे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ ॥ १७ ॥ भगवान् मायाके गुणोंसे रहित एवं अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण— ये तीन गुण मायाके द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं ॥ १८ ॥ ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुषको ही मायामें स्थित होनेपर कार्य, कारण और कर्तापनके अभिमानसे बाँध लेते हैं ॥ १९ ॥ नारद! इन्द्रियातीत भगवान् गुणोंके इन तीन आवरणोंसे अपने स्वरूपको भलीभाँति ढक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र स्वामी वे ही हैं ॥ २० ॥

मायापति भगवान्‌ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ भगवान्‌की शक्तिसे ही कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्तत्त्वको जन्म दिया ॥ २२ ॥

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजः सत्त्वोपबृंहितात्।
तमः प्रधानस्त्वभवद् द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३

सोऽहङ्कार इति प्रोक्तो विकुर्वन् समभूत्त्रिधा[1]।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा।
द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥ २४

तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः।
तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद् द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५

नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत् स्पर्शगुणोऽनिलः।
परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६

वायोरपि विकुर्वाणात् कालकर्मस्वभावतः।
उदपद्यत तेजो वै रूपवत् स्पर्शशब्दवत् ॥ २७

तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम्।
रूपवत् स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥ २८

विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत्।
परान्वयाद् रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥ २९

वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३०

तैजसात् तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन्।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणश्च तैजसौ।
श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्राङ्घ्रिपायवः ॥ ३१

यदैतेऽसङ्गता[2] भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः।
यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२

तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः।
सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम्।
कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥ ३४

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः।
सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५

रजोगुण और सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर महत्तत्त्वका जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमःप्रधान विकार हुआ ॥ २३ ॥ वह अहंकार कहलाया और विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो गया। उसके भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस। नारदजी! वे क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिप्रधान हैं ॥ २४ ॥ जब पञ्चमहाभूतोंके कारणरूप तामस अहंकारमें विकार हुआ, तब उससे आकाशकी उत्पत्ति हुई। आकाशकी तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्दके द्वारा ही द्रष्टा और दृश्यका बोध होता है ॥ २५ ॥ जब आकाशमें विकार हुआ, तब उससे वायुकी उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। अपने कारणका गुण आ जानेसे यह शब्दवाला भी है। इन्द्रियोंमें स्फूर्ति, शरीरमें जीवनीशक्ति, ओज और बल इसीके रूप हैं ॥ २६ ॥ काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें भी विकार हुआ। उससे तेजकी उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायुके गुण शब्द एवं स्पर्श भी इसमें हैं ॥ २७ ॥ तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसका गुण है रस; कारण-तत्त्वोंके गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी इसमें हैं ॥ २८ ॥ जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारणके गुण कार्यमें आते हैं—इस न्यायसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं ॥ २९ ॥ वैकारिक अहङ्कारसे मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठातृ देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति ॥ ३० ॥ तैजस अहङ्कारके विकारसे श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाक्, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहङ्कारसे ही उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मवित्! जिस समय ये पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं थे, तब अपने रहनेके लिये भोगोंके साधनरूप शरीरकी रचना नहीं कर सके ॥ ३२ ॥ जब भगवान्‌ने इन्हें अपनी शक्तिसे प्रेरित किया, तब वे तत्त्व परस्पर एक-दूसरेके साथ मिल गये और उन्होंने आपसमें कार्य-कारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंकी रचना की ॥ ३३ ॥ वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक सहस्र वर्षतक निर्जीवरूपसे जलमें पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान्‌ने उसे जीवित कर दिया ॥ ३४ ॥ उस अंडेको फोड़कर उसमेंसे वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जङ्घा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रोंकी संख्यामें हैं ॥ ३५ ॥

यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८

ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ।
मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९

तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४०

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१

भूर्लोकः[1] कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२

विद्वान् पुरुष (उपासनाके लिये) उसीके अङ्गोंमें समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी कल्पना करते हैं। उसकी कमरसे नीचेके अङ्गोंमें सातों पातालकी और उसके पेड़ूसे ऊपरके अङ्गोंमें सातों स्वर्गकी कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण इस विराट् पुरुषका मुख है, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ पैरोंसे लेकर कटिपर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोककी कल्पना की गयी है; नाभिमें भुवर्लोककी, हृदयमें स्वर्लोककी और परमात्माके वक्षःस्थलमें महर्लोककी कल्पना की गयी है ॥ ३८ ॥ उसके गलेमें जनलोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्माका नित्य निवासस्थान सत्यलोक है ॥ ३९ ॥ उस विराट् पुरुषकी कमरमें अतल, जाँघोंमें वितल, घुटनोंमें पवित्र सुतललोक और जङ्घाओंमें तलातलकी कल्पना की गयी है ॥ ४० ॥ एड़ीके ऊपरकी गाँठोंमें महातल, पंजे और एड़ियोंमें रसातल और तलुओंमें पाताल समझना चाहिये। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है ॥ ४१ ॥ विराट् भगवान्‌के अङ्गोंमें इस प्रकार भी लोकोंकी कल्पना की जाती है कि उनके चरणोंमें पृथ्वी है, नाभिमें भुवर्लोक है और सिरमें स्वर्लोक है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः[2] ॥ ५ ॥

१. प्राचीन प्रतिमें यह श्लोक नहीं है। २. प्रा० पा०—इसके पहले 'पुरुष संस्थानुवर्णनं' इतना अधिक पाठ है।

अथ षष्ठोऽध्यायः

विराट्स्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन

ब्रह्मोवाच

वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ।
हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १

सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ।
अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २

रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ।
कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ।
तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ ३

त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ।
रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृतः ॥ ४

केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ।
बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ ५

विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ।
सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ ६

अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ।
पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥ ७

पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ।
हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ ८

पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ।
नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ ९

अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च ।
उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ १०

धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ।
विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ ११

अहं भवान् भवश्चैव त[1] इमे मुनयोऽग्रजाः ।
सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ १२

ब्रह्माजी कहते हैं—उन्हीं विराट् पुरुषके मुखसे वाणी और उसके अधिष्ठातृदेवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। सातों छन्द * उनकी सात धातुओंसे निकले हैं। मनुष्यों, पितरों और देवताओंके भोजन करनेयोग्य अमृतमय अन्न, सब प्रकारके रस, रसनेन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृदेवता वरुण विराट् पुरुषकी जिह्वासे उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ उनके नासाछिद्रोंसे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँचों प्राण और वायु तथा घ्राणेन्द्रियसे अश्विनीकुमार, समस्त ओषधियाँ एवं साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेजकी तथा नेत्र-गोलक स्वर्ग और सूर्यकी जन्मभूमि हैं। समस्त दिशाएँ और पवित्र करनेवाले तीर्थ कानोंसे तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे निकले हैं। उनका शरीर संसारकी सभी वस्तुओंके सारभाग तथा सौन्दर्यका खजाना है ॥ ३ ॥ सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले हैं; उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थोंके जन्मस्थान हैं, अथवा केवल उन्हींके, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ उनके केश, दाढ़ी-मूँछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएँ तथा भुजाओंसे प्रायः संसारकी रक्षा करनेवाले लोकपाल प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥ उनका चलना-फिरना भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंका आश्रय है। उनके चरणकमल शरणकी रक्षा करते हैं और भयोंको भगा देते हैं तथा समस्त कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है ॥ ६ ॥ विराट् पुरुषका लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापतिका आधार है तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्दका उद्गम है ॥ ७ ॥ नारदजी ! विराट् पुरुषकी पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्यागका तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थान है ॥ ८ ॥ उनकी पीठसे पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियोंसे नद-नदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है ॥ ९ ॥ उनके उदरमें मूल प्रकृति, रस नामकी धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है। उनका हृदय ही मनकी जन्मभूमि है ॥ १० ॥ नारद ! हम, तुम, धर्म, सनकादि, शङ्कर, विज्ञान और अन्तःकरण—सब-के-सब उनके चित्तके आश्रित हैं ॥ ११ ॥ (कहाँतक गिनायें—) मैं, तुम, तुम्हारे बड़े भाई सनकादि, शङ्कर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष,

---

* गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पङ्क्ति और जगती—ये सात छन्द हैं।

१. ग्रा० पा०—य इमे।

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ।
पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ १३

अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ।
ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ १४

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ १५

स्वधिष्ण्यं प्रतपन्[1] प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ।
एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥ १६

सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ।
महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ १७

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि[2] मूर्धसु ॥ १८

पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां[3] य आश्रमाः ।
अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः[4] ॥ १९

सृती विचक्रमे विष्वङ्[5] साशनानशने उभे ।
यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ २०

यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः[6] ।
तद् द्रव्यमत्यगाद् विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन्[7] ॥ २१

यदास्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः ।
नाविदं यज्ञसम्भारान् पुरुषावयवादृते ॥ २२

तेषु यज्ञस्य[8] पशवः सवनस्पतयः कुशाः ।
इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३

राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और नाना प्रकारके जीव—जो आकाश, जल या स्थलमें रहते हैं—ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे) तारे, बिजली और बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं। यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ कभी था, है या होगा—सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुलके * परिमाणमें ही स्थित है ॥ १२—१५ ॥ जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराणपुरुष परमात्मा भी सम्पूर्ण विराट् विग्रहको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर—सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है॥ १६ ॥ मुनिवर ! जो कुछ मनुष्यकी क्रिया और सङ्कल्पसे बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है। यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण लोक भगवान्‌के एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकोंमें समस्त प्राणी निवास करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके ऊपर महर्लोक है। उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकोंमें क्रमशः अमृत, क्षेम एवं अभयका नित्य निवास है ॥ १८ ॥

जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकोंमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी निवास करते हैं। दीर्घकालीन ब्रह्मचर्यसे रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके भीतर ही निवास करते हैं॥ १९ ॥ शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्ममार्ग, जो सकाम पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है। मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करानेवाले दक्षिणमार्गसे अथवा मोक्ष प्राप्त करानेवाले उत्तरमार्गसे यात्रा करता है; किन्तु पुरुषोत्तमभगवान् दोनोंके आधारभूत हैं ॥ २० ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग हैं, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अण्डकी और पञ्चभूत, एकादश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट्‌की उत्पत्ति हुई है—वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओंके अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं॥ २१ ॥

जिस समय इस विराट् पुरुषके नाभि-कमलसे मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुषके अङ्गोंके अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञकी सामग्री नहीं मिली ॥ २२ ॥ तब मैंने उनके अङ्गोंमें ही यज्ञके पशु, यूप (स्तम्भ), कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य

---

१. प्रा० पा०—प्रातन्प्राणो । २. प्रा० पा०—धापि । ३. प्रा० पा०—बहिस्त्वासन् प्रजानां त्रय आश्रमाः । ४. प्रा० पा०—महद्व्रतम् । ५. प्रा० पा०—विष्वङ् । ६. प्रा० पा०—गुणाश्रयः । ७. प्रा० पा०—इवातपत् । ८. प्रा० पा०—यज्ञेषु ।

* ब्रह्माण्डके सात आवरणोंका वर्णन करते हुए वेदान्त प्रक्रियामें ऐसा माना है कि—पृथ्वीसे दसगुना जल है, जलसे दसगुना अग्नि, अग्निसे दसगुना वायु, वायुसे दसगुना आकाश, आकाशसे दसगुना अहंकार, अहंकारसे दसगुना महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे दसगुनी मूल प्रकृति है। वह प्रकृति भगवान्‌के केवल एक पादमें है। इस प्रकार भगवान्‌की महत्ता प्रकट की गयी है। यह दशोत्तर-न्याय कहलाता है।

वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम्।
ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २४

नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च।
देवतानुक्रमः कल्पः सङ्कल्पस्तन्त्रमेव च ॥ २५

गतयो मतयः श्रद्धा प्रायश्चित्तं समर्पणम्।
पुरुषावयवैरेते[1] सम्भाराः सम्भृता मया ॥ २६

इति सम्भृतसम्भारः पुरुषावयवैरहम्।
तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २७

ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव।
अयजन् व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २८

ततश्च मनवः काले[2] ईजिरे ऋषयोऽपरे।
पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २९

नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम्।
गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३०

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३१

इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि।
नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३२

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते
न[3] वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे
यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३३

सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः
प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः।
आस्थाय योगं निपुणं समाहित-
स्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसम्भवः ॥ ३४

उत्तम कालकी कल्पना की ॥ २३ ॥ ऋषिश्रेष्ठ ! यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ, जौ, चावल, आदि ओषधियाँ, घृत आदि स्नेहपदार्थ, छः रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुः, साम, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिग्रन्थ, सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठानकी रीति), गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त और समर्पण—यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही इकट्ठी की ॥ २४—२६ ॥ इस प्रकार विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही सारी सामग्रीका संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर तुम्हारे बड़े भाई इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तको पूर्ण समाहित करके विराट् एवं अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस पुरुषकी आराधना की ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् समय-समयपर मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना की ॥ २९ ॥ नारद ! यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है, जो स्वयं तो प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, परन्तु सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण ग्रहण कर लेते हैं ॥ ३० ॥ उन्हींकी प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ। उन्हींके अधीन होकर रुद्र इसका संहार करते हैं और वे स्वयं ही विष्णुके रूपसे इसका पालन करते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियाँ स्वीकार कर रखी हैं ॥ ३१ ॥ बेटा ! जो कुछ तुमने पूछा था, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया; भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्‌से भिन्न हो ॥ ३२ ॥

प्यारे नारद ! मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्‌के स्मरणमें मग्न रहता हूँ, इसीसे मेरी वाणी कभी असत्य होती नहीं दीखती, मेरा मन कभी असत्य सङ्कल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी मर्यादाका उल्लङ्घन करके कुमार्गमें नहीं जातीं ॥ ३३ ॥ मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। पहले मैंने बड़ी निष्ठासे योगका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया था, परन्तु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका ॥ ३४ ॥

---

१. प्रा० पा०—रेतैः। २. प्रा० पा०—कालमीजिरे। ३. प्रा० पा०—न कर्हिचिन्मे।

नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां
भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ।
यो[1] ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्
यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥३५

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदु-
र्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं
विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥३६

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः ।
न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७

स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः[2] ।
आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति[3] च पाति च ॥३८

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥४१

अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा
दक्षादयो ये भवदादयश्च ।
स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला
नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२

गन्धर्वविद्याधरचारणेशा
ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ।
ये वा ऋषीणामृषभाः[4] पितॄणां
दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ।
अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूत-
कूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥४३

(क्योंकि वे तो एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं।) मैं तो परम मङ्गलमय एवं शरण आये हुए भक्तोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले परम कल्याणस्वरूप भगवान्‌के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ। उनकी मायाकी शक्ति अपार है; जैसे आकाश अपने अन्तको नहीं जानता, वैसे ही वे भी अपनी महिमाका विस्तार नहीं जानते। ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं? ॥ ३५ ॥ मैं, मेरे पुत्र तुमलोग और शङ्करजी भी उनके सत्यस्वरूपको नहीं जानते; तब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं। हम सब इस प्रकार मोहित हो रहे हैं कि उनकी मायाके द्वारा रचे हुए जगत्‌को भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं ॥ ३६ ॥

हमलोग केवल जिनके अवतारकी लीलाओंका गान ही करते रहते हैं, उनके तत्त्वको नहीं जानते—उन भगवान्‌के श्रीचरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥ वे अजन्मा एवं पुरुषोत्तम हैं। प्रत्येक कल्पमें वे स्वयं अपने-आपमें अपने-आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार कर लेते हैं ॥ ३८ ॥ वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं। वे तीनों कालमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं; न उनका आदि है न अन्त। वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एवं अद्वितीय हैं ॥ ३९ ॥ नारद! महात्मालोग जिस समय अपने अन्तःकरण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, उस समय उनका साक्षात्कार करते हैं। परन्तु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनको ढक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते ॥ ४० ॥

परमात्माका पहला अवतार विराट् पुरुष है; उसके सिवा काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव—सब-के-सब उन अनन्त भगवान्‌के ही रूप हैं ॥ ४१ ॥ मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि ये प्रजापति, तुम और तुम्हारे-जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा, मनुष्यलोकके राजा, नीचेके लोकोंके राजा; गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके अधिनायक; यक्ष, राक्षस, साँप और नागोंके स्वामी; महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज; और भी प्रेत-पिशाच, भूत-कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी; एवं संसारमें और भी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमासे युक्त हैं; अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं; एवं

---

१. प्रा० पा०—यस्त्वात्ममायाविभवं स्वयं गतो यथा। २. प्रा० पा०—त्वात्म०। ३. प्रा० पा०—ऽसृजत्प्रजाः। ४. प्रा० पा०—समं गच्छति पाति। ५. प्रा० पा०—मृपवः।

यत्किं च लोके भगवन्महस्व-
दोजःसहस्वद् बलवत् क्षमावत्।
श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं
तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम्॥ ४४

प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति
लीलावतारान् पुरुषस्य भूम्नः।
आपीयतां कर्णकषायशोषा-
ननुक्रमिष्ये त इमान् सुपेशान्॥ ४५

जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली, रूपवान् या अरूप हैं—वे सब-के-सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं॥ ४२—४४॥ नारद! इनके सिवा परम पुरुष परमात्माके परम पवित्र एवं प्रधान-प्रधान लीलावतार भी शास्त्रोंमें वर्णित हैं। उनका मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ। उनके चरित्र सुननेमें बड़े मधुर एवं श्रवणेन्द्रियके दोषोंको दूर करनेवाले हैं। तुम सावधान होकर उनका रस लो॥ ४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
षष्ठोऽध्यायः[1] ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा

ब्रह्मोवाच

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्
क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार॥ १

ब्रह्माजी कहते हैं—अनन्त भगवान्‌ने प्रलयके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये समस्त यज्ञमय वराह-शरीर ग्रहण किया था। आदिदैत्य हिरण्याक्ष जलके अंदर ही लड़नेके लिये उनके सामने आया। जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पंख काट डाले थे, वैसे ही वराहभगवान्‌ने अपनी दाढ़ोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥ १॥

जातो रुचेरजनयत् सुयमान् सुयज्ञ
आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम्।
लोकत्रयस्य महतीमहरद् यदाऽऽर्तिं
स्वायम्भुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः॥ २

फिर उन्हीं प्रभुने रुचि नामक प्रजापतिकी पत्नी आकूतिके गर्भसे सुयज्ञके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उस अवतारमें उन्होंने दक्षिणा नामकी पत्नीसे सुयम नामके देवताओंको उत्पन्न किया और तीनों लोकोंके बड़े-बड़े सङ्कट हर लिये। इसीसे स्वायम्भुव मनुने उन्हें 'हरि'के नामसे पुकारा॥ २॥

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां
स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे।
ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसङ्गपङ्क-
मस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे॥ ३

नारद! कर्दम प्रजापतिके घर देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ भगवान्‌ने कपिलके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माताको उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने हृदयके सम्पूर्ण मल—तीनों गुणोंकी आसक्तिका सारा कीचड़ धोकर कपिलभगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं॥ ३॥

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः।
यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा
योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः॥ ४

महर्षि अत्रि भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहते थे। उनपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनसे एक दिन कहा कि 'मैंने अपने-आपको तुम्हें दे दिया।' इसीसे अवतार लेनेपर भगवान्‌का नाम 'दत्त' (दत्तात्रेय) पड़ा। उनके चरणकमलोंके परागसे अपने शरीरको पवित्र करके राजा यदु और सहस्रार्जुन

---

१. प्राचीन प्रतिमें इसके पहले 'पुरुषसंस्थानुवर्णनं' इतना पाठ अधिक है।

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे[1]
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ।
प्राक्कल्पसम्प्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं
सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट[2] मूर्त्यां
नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः[3] ।
दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं
देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या
रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ।
सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन् बिभेति
कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७

विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो
बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ।
तस्मा अदाद् ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो
दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्र-
विप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ।

त्रात्वार्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे
दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु-
र्यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम् ।

यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥ १०

सत्रे ममास भगवान् हयशीरषाथो[4]
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।

आदिने योगकी, भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं ॥ ४ ॥

नारद ! सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की । मेरे उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण किया । इस अवतारमें उन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके भूले हुए आत्मज्ञानका ऋषियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया, जिससे उन लोगोंने तत्काल परम तत्त्वका अपने हृदयमें साक्षात्कार कर लिया ॥ ५ ॥

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे वे नर-नारायणके रूपमें प्रकट हुए । उनकी तपस्याका प्रभाव उन्हींके जैसा है । इन्द्रकी भेजी हुई कामकी सेना अप्सराएँ उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठीं । वे अपने हाव-भावसे उन आत्मस्वरूप भगवान्‌की तपस्यामें विघ्न नहीं डाल सकीं ॥ ६ ॥ नारद ! शङ्कर आदि महानुभाव अपनी रोषभरी दृष्टिसे कामदेवको जला देते हैं, परंतु अपने-आपको जलानेवाले असह्य क्रोधको वे नहीं जला पाते । वही क्रोध नर-नारायणके निर्मल हृदयमें प्रवेश करनेके पहले ही डरके मारे काँप जाता है । फिर भला, उनके हृदयमें कामका प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है ॥ ७ ॥

अपने पिता राजा उत्तानपादके पास बैठे हुए पाँच वर्षके बालक ध्रुवको उनकी सौतेली माता सुरुचिने अपने वचन-बाणोंसे बेध दिया था । इतनी छोटी अवस्था होनेपर भी वे उस ग्लानिसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये । उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने ध्रुवको ध्रुवपदका वरदान दिया । आज भी ध्रुवके ऊपर-नीचे प्रदक्षिणा करते हुए दिव्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥ ८ ॥

कुमार्गगामी वेनका ऐश्वर्य और पौरुष ब्राह्मणोंके हुङ्काररूपी वज्रसे जलकर भस्म हो गया । वह नरकमें गिरने लगा । ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उसके शरीरमन्थनसे पृथुके रूपमें अवतार धारण कर उसे नरकोंसे उबारा और इस प्रकार 'पुत्र' * शब्दको चरितार्थ किया । उसी अवतारमें पृथ्वीको गाय बनाकर उन्होंने उससे जगत्‌के लिये समस्त ओषधियोंका दोहन किया ॥ ९ ॥

राजा नाभिकी पत्नी सुदेवीके गर्भसे भगवान्‌ने ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया । इस अवतारमें समस्त आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनको अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूपमें स्थित होकर समदर्शीके रूपमें उन्होंने जड़ोंकी भाँति योगचर्याका आचरण किया । इस स्थितिको महर्षिलोग परमहंसपद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं ॥ १० ॥

इसके बाद स्वयं उन्हीं यज्ञपुरुषने मेरे यज्ञमें स्वर्णके समान

छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः
क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।

विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे[1]
आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२

क्षीरोदधावमरदानवयूथपाना-
मुन्मथ्नतामममृतलब्धय आदिदेवः ।

पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं
निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः[2] ॥ १३

त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं
कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ।

दैत्येन्द्रमाशु गदयाभिपतन्तमारा-
दूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥ १४

अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो
ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः ।

आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ १५

श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेय[3]-
श्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ।

चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्मा-
द्धस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार ॥ १६

ज्यायान् गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां
लोकान् विचक्रम इमान् यदथाधियज्ञः ।

क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन
याच्ञामृते पथि चरन् प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७

कान्तिवाले हयग्रीवके रूपमें अवतार ग्रहण किया। भगवान्‌का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है। उन्हींकी नासिकासे श्वासके रूपमें वेदवाणी प्रकट हुई ॥ ११ ॥

चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें भावी मनु सत्यव्रतने मत्स्यरूपमें भगवान्‌को प्राप्त किया था। उस समय पृथ्वीरूप नौकाके आश्रय होनेके कारण वे ही समस्त जीवोंके आश्रय बने। प्रलयके उस भयंकर जलमें मेरे मुखसे गिरे हुए वेदोंको लेकर वे उसीमें विहार करते रहे ॥ १२ ॥

जब मुख्य-मुख्य देवता और दानव अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरको मथ रहे थे, तब भगवान्‌ने कच्छपके रूपमें अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया। उस समय पर्वतके घूमनेके कारण उसकी रगड़से उनकी पीठकी खुजलाहट थोड़ी मिट गयी, जिससे वे कुछ क्षणोंतक सुखकी नींद सो सके ॥ १३ ॥

देवताओंका महान् भय मिटानेके लिये उन्होंने नृसिंहका रूप धारण किया। फड़कती हुई भौंहों और तीखी दाढ़ोंसे उनका मुख बड़ा भयावना लगता था। हिरण्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथमें गदा लेकर उनपर टूट पड़ा। इसपर भगवान् नृसिंहने दूरसे ही उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर डाल लिया और उसके छटपटाते रहनेपर भी अपने नखोंसे उसका पेट फाड़ डाला ॥ १४ ॥

बड़े भारी सरोवरमें महाबली ग्राहने गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। जब बहुत थककर वह घबरा गया, तब उसने अपनी सूँड़में कमल लेकर भगवान्‌को पुकारा—'हे आदिपुरुष! हे समस्त लोकोंके स्वामी! हे श्रवणमात्रसे कल्याण करनेवाले!' ॥ १५ ॥ उसकी पुकार सुनकर अनन्तशक्ति भगवान् चक्रपाणि गरुडकी पीठपर चढ़कर वहाँ आये और अपने चक्रसे उन्होंने ग्राहका मस्तक उखाड़ डाला। इस प्रकार कृपापरवश भगवान्‌ने अपने शरणागत गजेन्द्रकी सूँड़ पकड़कर उस विपत्तिसे उसका उद्धार किया ॥ १६ ॥

भगवान् वामन अदितिके पुत्रोंमें सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंकी दृष्टिसे वे सबसे बड़े थे। क्योंकि यज्ञपुरुष भगवान्‌ने इस अवतारमें बलिके संकल्प छोड़ते ही सम्पूर्ण लोकोंको अपने चरणोंसे ही नाप लिया था। वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वीके बहाने बलिसे सारी पृथ्वी ले तो ली, परन्तु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको याचनाके सिवा और किसी उपायसे समर्थ पुरुष भी अपने स्थानसे नहीं हटा सकते, ऐश्वर्यसे च्युत नहीं कर सकते ॥ १७ ॥

---

१. प्रा० पा०—मखात्मा २. प्रा० पा०—निद्रे०। ३. प्रा० पा०—हरिः स्वम०।

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौच-
मापः शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।
यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्य-
दात्मानमङ्ग शिरसा[1] हरयेऽभिमेने ॥ १८

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम् ।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ १९

चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो
मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ।
दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात् स्वकीर्तिं
सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २०

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध[2]
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा
ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ।
उ[3]द्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्य-
स्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥ २३

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो
मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद् दिधक्षोः ।
दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४

दैत्यराज बलिने अपने सिरपर स्वयं वामनभगवान्‌का चरणामृत धारण किया था। ऐसी स्थितिमें उन्हें जो देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवी मिली, इसमें कोई बलिका पुरुषार्थ नहीं था। अपने गुरु शुक्राचार्यके मना करनेपर भी वे अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत कुछ भी करनेको तैयार नहीं हुए। और तो क्या, भगवान्‌का तीसरा पग पूरा करनेके लिये उनके चरणोंमें सिर रखकर उन्होंने अपने-आपको भी समर्पित कर दिया ॥ १८ ॥

नारद ! तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभावसे परम प्रसन्न होकर हंसके रूपमें भगवान्‌ने तुम्हें योग, ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले भागवतधर्मका उपदेश किया। वह केवल भगवान्‌के शरणागत भक्तोंको ही सुगमतासे प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंमें मनुके रूपमें अवतार लेकर मनुवंशकी रक्षा करते हुए दसों दिशाओंमें अपने सुदर्शनचक्रके समान तेजसे बेरोक-टोक—निष्कण्टक राज्य करते हैं। तीनों लोकोंके ऊपर सत्यलोकतक उनके चरित्रोंकी कमनीय कीर्ति फैल जाती है और उसी रूपमें वे समय-समयपर पृथ्वीके भारभूत दुष्ट राजाओंका दमन भी करते रहते हैं ॥ २० ॥

स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरि अपने नामसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग तत्काल नष्ट कर देते हैं। उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओंको अमर कर दिया और दैत्योंके द्वारा हरण किये हुए उनके यज्ञ-भाग उन्हें फिरसे दिला दिये। उन्होंने ही अवतार लेकर संसारमें आयुर्वेदका प्रवर्तन किया ॥ २१ ॥

जब संसारमें ब्राह्मणद्रोही आर्यमर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाशके लिये ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वीके काँटे बन जाते हैं, तब भगवान् महापराक्रमी परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धारवाले फरसेसे इक्कीस बार उनका संहार करते हैं ॥ २२ ॥

मायापति भगवान् हमपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी कलाओं—भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ श्रीरामके रूपसे इक्ष्वाकुके वंशमें अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी पत्नी और भाईके साथ वे वनमें निवास करते हैं। उसी समय उनसे विरोध करके रावण उनके हाथों मरता है ॥ २३ ॥ त्रिपुर विमानको जलानेके लिये उद्यत शङ्करके समान, जिस समय भगवान् राम शत्रुकी नगरी लङ्काको भस्म करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचते हैं, उस समय सीताके वियोगके कारण बढ़ी हुई क्रोधाग्निसे उनकी आँखें इतनी लाल हो जाती हैं कि उनकी दृष्टिसे ही समुद्रके

१. प्रा० पा०—मनसा। २. प्रा० पा०—रवाप दुःखमायुश्च। ३. प्रा० पा०—उद्यन्नसाव०।

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-[१]
दन्तैर्विड[२]म्बितककुब्जुष[३] ऊढहासम्।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-
र्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये[४] ॥ २५

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः
क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः।
जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः
कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६

तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकाया-
स्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः।
यद् रिङ्गतान्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा
उन्मूलनं त्वितरथार्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७

यद् वै व्रजे व्रजपशून् विषतोयपीथान्
पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ।
तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्व-
मुद्याटयिष्यदुरगं विहरन् ह्रदिन्याम् ॥ २८

तत् कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं
दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने।
उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं[५]
नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९

गृह्णीत यद् यदुपबन्धममुष्य माता
शुल्बं सुतस्य न तु तत् तदमुष्य ग्नाति।
यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी
संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ ३०

नन्दं च मोक्ष्यति भयाद् वरुणस्य पाशाद्
गोपान् बिलेषु पिहितान् मयसूनुना च।
अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण
लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति[६] गोकुलं स्म ॥ ३१

मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जलने लगते हैं और भयसे थर-थर काँपता हुआ समुद्र झटपट उन्हें मार्ग दे देता है ॥ २४ ॥ जब रावणकी कठोर छातीसे टकराकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण घमंडसे फूलकर हँसने लगा था। वही रावण जब श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको चुराकर ले जाता है और लड़ाईके मैदानमें उनसे लड़नेके लिये गर्वपूर्वक आता है, तब भगवान् श्रीरामके धनुषकी टङ्कारसे ही उसका वह घमंड प्राणोंके साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है ॥ २५ ॥

जिस समय झुंड-के-झुंड दैत्य पृथ्वीको रौंद डालेंगे उस समय उसका भार उतारनेके लिये भगवान् अपने सफेद और काले केशसे बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें कलावतार ग्रहण करेंगे।* वे अपनी महिमाको प्रकट करनेवाले इतने अद्भुत चरित्र करेंगे कि संसारके मनुष्य उनकी लीलाओंका रहस्य बिलकुल नहीं समझ सकेंगे ॥ २६ ॥ बचपनमें ही पूतनाके प्राण हर लेना, तीन महीनेकी अवस्थामें पैर उछालकर बड़ा भारी छकड़ा उलट देना और घुटनोंके बल चलते-चलते आकाशको छूनेवाले यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें जाकर उन्हें उखाड़ डालना—ये सब ऐसे कर्म हैं, जिन्हें भगवान्‌के सिवा और कोई नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ जब कालियनागके विषसे दूषित हुआ यमुना-जल पीकर बछड़े और गोपबालक मर जायँगे, तब वे अपनी सुधामयी कृपा-दृष्टिकी वर्षासे ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना-जलको शुद्ध करनेके लिये वे उसमें विहार करेंगे तथा विषकी शक्तिसे जीभ लपलपाते हुए कालियनागको वहाँसे निकाल देंगे ॥ २८ ॥ उसी दिन रातको जब सब लोग वहीं यमुना-तटपर सो जायँगे और दावाग्निसे आस-पासका मूँजका वन चारों ओरसे जलने लगेगा, तब बलरामजीके साथ वे प्राणसङ्कटमें पड़े हुए व्रजवासियोंको उनकी आँखें बंद कराकर उस अग्निसे बचा लेंगे। उनकी यह लीला भी अलौकिक ही होगी। उनकी शक्ति वास्तवमें अचिन्त्य है ॥ २९ ॥ उनकी माता उन्हें बाँधनेके लिये जो-जो रस्सी लायेंगी वही उनके उदरमें पूरी नहीं पड़ेगी, दो अंगुल छोटी ही रह जायगी। तथा जँभाई लेते समय श्रीकृष्णके मुखमें चौदहों भुवन देखकर पहले तो यशोदा भयभीत हो जायँगी, परन्तु फिर वे सँभल जायँगी ॥ ३० ॥ वे नन्दबाबाको अजगरके भयसे और वरुणके पाशसे छुड़ायेंगे। मय दानवका पुत्र व्योमासुर जब गोपबालोंको पहाड़की

---

१. प्रा० पा०—भग्नमहे०। २. प्रा० पा०—विलम्बित। ३. प्रा० पा०—जयरूढ। ४. प्रा० प्रा०—तोऽरि०। ५. प्रा० पा०—काले। ६. प्रा० पा०—उपधास्यति

* केशोंके अवतार कहनेका अभिप्राय यह है कि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान्‌का एक केश ही काफी है इसके अतिरिक्त श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णके वर्णोंकी सूचना देनेके लिये भी उन्हें क्रमशः सफेद और काले केशोंका अवतार कहा गया है। वस्तुतः श्रीकृष्ण तो पूर्णपुरुष स्वयं भगवान् हैं—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय
देवेऽभिवर्षति पशून् कृपया रिरक्षुः ।
धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि सप्त-
वर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२

क्रीडन् वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां
रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां
हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्ट-
मल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ।
अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्त्र-
सप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४

ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः
काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः[१] ।
यास्यन्त्यदर्शनमलं बलपार्थभीम-[२]
व्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥ ३६

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां
पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः[३] ।
लोकान् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७

यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः[४]कथाः स्युः
पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ।
स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र
शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान् युगान्ते ॥ ३८

गुफाओंमें बन्द कर देगा, तब वे उन्हें भी वहाँसे बचा लायेंगे। गोकुलके लोगोंको, जो दिनभर तो काम-धंधोंमें व्याकुल रहते हैं और रातको अत्यन्त थककर सो जाते हैं, साधनाहीन होनेपर भी, वे अपने परमधाममें ले जायँगे ॥ ३१ ॥ निष्पाप नारद ! जब श्रीकृष्णकी सलाहसे गोपलोग इन्द्रका यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र व्रजभूमिका नाश करनेके लिये चारों ओरसे मूसलधार वर्षा करने लगेंगे। उससे उनकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् कृपापरवश हो सात वर्षकी अवस्थामें ही सात दिनोंतक गोवर्द्धन पर्वतको एक ही हाथसे छत्रकपुष्प (कुकुरमुत्ते) की तरह खेल-खेलमें ही धारण किये रहेंगे ॥ ३२ ॥ वृन्दावनमें विहार करते हुए रास करनेकी इच्छासे वे रातके समय, जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनी चारों ओर छिटक रही होगी, अपनी बाँसुरीपर मधुर सङ्गीतकी लम्बी तान छेड़ेंगे। उससे प्रेमविवश होकर आयी हुई गोपियोंको जब कुबेरका सेवक शङ्खचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका सिर उतार लेंगे ॥ ३३ ॥ और भी बहुत-से प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, मिथ्यावासुदेव, शाल्व, द्विविद वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित्के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ और रुक्मी आदि तथा काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजालोग एवं जो भी योद्धा धनुष धारण करके युद्धके मैदानमें सामने आयेंगे, वे सब बलराम, भीमसेन और अर्जुन आदि नामोंकी आड़में स्वयं भगवान्के द्वारा मारे जाकर उन्हींके धाममें चले जायँगे ॥ ३४-३५ ॥

समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं ॥ ३६ ॥

देवताओंके शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्गका सहारा लेकर मयदानवके बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरोंमें रहकर लोगोंका सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान् लोगोंकी बुद्धिमें मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करनेवाला वेष धारण करके बुद्धके रूपमें बहुत-से उपधर्मोंका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्की कथा होनेमें बाधा पड़ने लगेगी; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी और शूद्र राजा हो जायँगे, यहाँतक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और

१. प्रा० पा०—कुरुसृञ्जयकैकयाद्याः । २. प्रा० पा०—युधि पार्थभीमव्या० । ३. रदृश्यमूर्तिः । ४. प्रा० पा०—कथा हरेः ।

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः
स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ।
अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या
मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं
यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरु कम्पयानम् ॥ ४०

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते
मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः
शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः[1]
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां
यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।
पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च
प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥ ४३

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधि-
रघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ।
मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा
देवव्रतो बलिरमूर्त्तरयो दिलीपः ॥ ४४

सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलाद-[2]
सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।
येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त-[3]
पार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः[4] ॥ ४५

'वषट्कार'की ध्वनि—देवता-पितरोंके यज्ञश्राद्धकी वाततक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥

जब संसारकी रचनाका समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें; जब सृष्टिकी रक्षाका समय होता है, तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें तथा जब सृष्टिके प्रलयका समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोधवश नामके सर्प एवं दैत्य आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्की माया-विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं ॥ ३९ ॥ अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक-एक धूलि-कणको गिन चुकनेपर भी जगत्में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्की शक्तियोंकी गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अदम्य वेगसे प्रकृतिरूप अन्तिम आवरणसे लेकर सत्यलोकतक सारा ब्रह्माण्ड काँपने लगा था। तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उसे स्थिर किया था ॥ ४० ॥ समस्त सृष्टिकी रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियोंके आश्रय उनके स्वरूपको न मैं जानता हूँ और न वे तुम्हारे बड़े भाई सनकादि ही; फिर दूसरोंका तो कहना ही क्या है। आदिदेव भगवान् शेष सहस्र मुखसे उनके गुणोंका गायन करते आ रहे हैं; परन्तु वे अब भी उसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सके ॥ ४१ ॥ जो निष्कपटभावसे अपना सर्वस्व और अपने-आपको भी उनके चरणकमलोंमें निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं ही अपनी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी दुस्तर मायाका स्वरूप जानते हैं और उसके पार जा पाते हैं। वास्तवमें ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारोंके कलेवारूप अपने और पुत्रादिके शरीरमें 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' ऐसा भाव नहीं करते ॥ ४२ ॥ प्यारे नारद ! परम पुरुषकी उस योगमायाको मैं जानता हूँ तथा तुमलोग, भगवान् शङ्कर, दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं ॥ ४३ ॥ इनके सिवा इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि तथा मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि अमूर्त्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तङ्क, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण एवं विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा भी जानते हैं ॥ ४४-४५ ॥

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ ४६

शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं
शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ।
शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो
माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७

तद् वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो
ब्रह्मेति यद् विदुरजस्रसुखं विशोकम् ।
सध्र्यङ्[1] नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं
जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान् यतोऽस्य
भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ।
देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे
व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः[2] ॥ ४९

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान् विश्वभावनः ।
समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात् सदसच्च यत् ॥ ५०
इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्व[3]मेतद् विपुलीकुरु ॥ ५१

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य [4]वर्णय ॥ ५२

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ।
शृण्वतः श्रद्धया नित्यं मायया ऽऽत्मा न मुह्यति ॥ ५३

जिन्हें भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका-सा स्वभाव बनानेकी शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी भगवान्‌की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस संसार-सागरसे सदाके लिये पार हो जाते हैं; फिर जो लोग वैदिक सदाचारका पालन करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ४६ ॥

परमात्माका वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है। न उसमें मायाका मल है और न तो उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनोंसे परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्दकी वहाँतक पहुँच नहीं है। अनेक प्रकारके साधनोंसे सम्पन्न होनेवाले कर्मोंका फल भी वहाँतक नहीं पहुँच सकता। और तो क्या, स्वयं माया भी उसके सामने नहीं जा पाती, लजाकर भाग खड़ी होती है ॥ ४७ ॥ परमपुरुष भगवान्‌का वही परमपद है। महात्मालोग उसीका शोकरहित अनन्त आनन्दस्वरूप ब्रह्मके रूपमें साक्षात्कार करते हैं। संयमशील पुरुष उसीमें अपने मनको समाहित करके स्थित हो जाते हैं। जैसे इन्द्र स्वयं मेघरूपसे विद्यमान होनेके कारण जलके लिये कुआँ खोदनेकी कुदाल नहीं रखते वैसे ही वे भेद दूर करनेवाले ज्ञान-साधनोंको भी छोड़ देते हैं ॥ ४८ ॥ समस्त कर्मोंके फल भी भगवान् ही देते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार जो शुभकर्म करता है, वह सब उन्हींकी प्रेरणासे होता है। इस शरीरमें रहनेवाले पञ्चभूतोंके अलग-अलग हो जानेपर जब—यह शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाशके समान नष्ट नहीं होता ॥ ४९ ॥

बेटा नारद ! सङ्कल्पसे विश्वकी रचना करनेवाले षडैश्वर्यसम्पन्न श्रीहरिका मैंने तुम्हारे सामने संक्षेपसे वर्णन किया। जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभाव है, वह सब भगवान्‌से भिन्न नहीं है। फिर भी भगवान् तो इससे पृथक् भी हैं ही ॥ ५० ॥ भगवान्‌ने मुझे जो उपदेश किया था, वह यही 'भागवत' है। इसमें भगवान्‌की विभूतियोंका संक्षिप्त वर्णन है। तुम इसका विस्तार करो ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें लोगोंकी प्रेममयी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो ॥ ५२ ॥ जो पुरुष भगवान्‌की अचिन्त्य शक्ति मायाका वर्णन या दूसरेके द्वारा किये हुए वर्णनका अनुमोदन करते हैं अथवा श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण करते हैं, उनका चित्त मायासे कभी मोहित नहीं होता ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

राजा परीक्षित्‌के विविध प्रश्न

राजोवाच

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ।
यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १

एतद् वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ।
हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः[1] ॥ २

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि ।
कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥ ४

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ।
मुक्त[2]सर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥ ६

यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः ।
यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ॥ ७

आसीद् यदुदरात् पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ।
यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ।
तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८

अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ।
ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९

स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ।
मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥ १०

पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ।
लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जब ब्रह्माजीने निर्गुण भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेके लिये नारदजीको आदेश दिया, तब उन्होंने किन-किनको किस रूपमें उपदेश किया? एक तो अचिन्त्य शक्तियोंके आश्रय भगवान्‌की कथाएँ ही लोगोंका परम मङ्गल करनेवाली हैं, दूसरे देवर्षि नारदका सबको भगवद्दर्शन करानेका स्वभाव है। अवश्य ही आप उनकी बातें मुझे सुनाइये ॥ १-२ ॥ महाभाग्यवान् शुकदेवजी! आप मुझे ऐसा उपदेश कीजिये कि मैं अपने आसक्तिरहित मनको सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके अपना शरीर छोड़ सकूँ ॥ ३ ॥ जो लोग उनकी लीलाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण कानके छिद्रोंके द्वारा अपने भक्तोंके भावमय हृदयकमलपर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद् ऋतु जलका गँदलापन मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तोंके मनोमलका नाश कर देते हैं ॥ ५ ॥ जिसका हृदय शुद्ध हो जाता है, वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंको एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ता—जैसे मार्गके समस्त क्लेशोंसे छूटकर घर आया हुआ पथिक अपने घरको नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

भगवन्! जीवका पञ्चभूतोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी इसका शरीर पञ्चभूतोंसे ही बनता है। तो क्या स्वभावसे ही ऐसा होता है, अथवा किसी कारणवश—आप इस बातका मर्म पूर्णरीतिसे जानते हैं ॥ ७ ॥ (आपने बतलाया कि) भगवान्‌की नाभिसे वह कमल प्रकट हुआ, जिसमें लोकोंकी रचना हुई। यह जीव अपने सीमित अवयवोंसे जैसे परिच्छिन्न है, वैसे ही आपने परमात्माको भी सीमित अवयवोंसे परिच्छिन्न-सा वर्णन किया (यह क्या बात है?) ॥ ८ ॥ जिनकी कृपासे सर्वभूतमय ब्रह्माजी प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, जिनके नाभिकमलसे पैदा होनेपर भी जिनकी कृपासे ही ये उनके रूपका दर्शन कर सके थे, वे संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके हेतु, सर्वान्तर्यामी और मायाके स्वामी परमपुरुष परमात्मा अपनी मायाका त्याग करके किसमें किस रूपसे शयन करते हैं? ॥ ९-१० ॥ पहले आपने बतलाया था कि

यावान्[1] कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ।
भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत् सतः ॥ १२

कालस्यानुगतिर्या[2] तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ।
यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १३

यस्मिन् कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ।
गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४

भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ।
सरित्समुद्रद्वीपानां सम्भवश्चैतदोकसाम् ॥ १५

प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः[3] ।
महतां चानुचरितं[4] वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥ १६

युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ।
अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं[5] हरेः ॥ १७

नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ।
श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ।
पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥ १९

योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ।
वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २०

सम्प्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ।
इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २१

यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च सम्भवः ।
आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२

यथाऽऽत्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया ।
विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद् विभुः ॥ २३

सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ।
तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने[6] ॥ २४

विराट् पुरुषके अङ्गोंसे लोक और लोकपालोंकी रचना हुई और फिर यह भी बतलाया कि लोक और लोकपालोंके रूपमें उसके अङ्गोंकी कल्पना हुई। इन दोनों बातोंका तात्पर्य क्या है ? ॥ ११ ॥

महाकल्प और उनके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं ? भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालका अनुमान किस प्रकार किया जाता है ? क्या स्थूल देहाभिमानी जीवोंकी आयु भी बँधी हुई है ॥ १२ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कालकी सूक्ष्म गति त्रुटि आदि और स्थूल गति वर्ष आदि किस प्रकारसे जानी जाती है ? विविध कर्मोंसे जीवोंकी कितनी और कैसी गतियाँ होती हैं ॥ १३ ॥ देव, मनुष्य आदि योनियाँ सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके फलस्वरूप ही प्राप्त होती हैं। उनको चाहनेवाले जीवोंमेंसे कौन-कौन किस-किस योनिको प्राप्त करनेके लिये किस-किस प्रकारसे कौन-कौन कर्म स्वीकार करते हैं ? ॥ १४ ॥ पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप और उनमें रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ? ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डका परिमाण भीतर और बाहर—दोनों प्रकारसे बतलाइये। साथ ही महापुरुषोंके चरित्र, वर्णाश्रमके भेद और उनके धर्मका निरूपण कीजिये ॥ १६ ॥ युगोंके भेद, उनके परिमाण और उनके अलग-अलग धर्म तथा भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके परम आश्चर्यमय चरित्र भी बतलाइये ॥ १७ ॥ मनुष्योंके साधारण और विशेष धर्म कौन-कौन-से हैं ? विभिन्न व्यवसायवाले लोगोंके, राजर्षियोंके और विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके धर्मका भी उपदेश कीजिये ॥ १८ ॥ तत्त्वोंकी संख्या कितनी है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं ? भगवान्‌की आराधनाकी और अध्यात्मयोगकी विधि क्या है ? ॥ १९ ॥ योगेश्वरोंको क्या-क्या ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं तथा अन्तमें उन्हें कौन-सी गति मिलती है ? योगियोंका लिङ्गशरीर किस प्रकार भङ्ग होता है ? वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप एवं तात्पर्य क्या है ? ॥ २० ॥ समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे होता है ? बावली, कुआँ खुदवाना आदि स्मार्त, यज्ञ-यागादि वैदिक, एवं काम्य कर्मोंकी तथा अर्थ-धर्म-कामके साधनोंकी विधि क्या है ? ॥ २१ ॥ प्रलयके समय जो जीव प्रकृतिमें लीन रहते हैं, उनकी उत्पत्ति कैसे होती है ? पाखण्डकी उत्पत्ति कैसे होती है ? आत्माके बन्ध-मोक्षका स्वरूप क्या है ? और वह अपने स्वरूपमें किस प्रकार स्थित होता है ? ॥ २२ ॥ भगवान् तो परम स्वतन्त्र हैं। वे अपनी मायासे किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं और उसे छोड़कर साक्षीके समान उदासीन कैसे हो जाते हैं ? ॥ २३ ॥ भगवन् ! मैं यह सब आपसे पूछ रहा हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। महामुने ! आप कृपा करके क्रमशः इनका तात्त्विक निरूपण कीजिये ॥ २४ ॥

अत्र प्रमाणं हि[1] भवान् परमेष्ठी यथाऽऽत्मभूः ।
परे[2] चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २५

न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ।
पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद् द्विजात् ॥ २६

सूत उवाच

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ।
ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २७

प्राह[3] भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं[4] ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८

यद् यत् परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ।
आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९

इस विषयमें आप स्वयम्भू ब्रह्माके समान परम प्रमाण हैं। दूसरे लोग तो अपनी पूर्वपरम्परासे सुनी-सुनायी बातोंका ही अनुष्ठान करते हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मन्! आप मेरी भूख-प्यासकी चिन्ता न करें। मेरे प्राण कुपित ब्राह्मणके शापके अतिरिक्त और किसी कारणसे निकल नहीं सकते; क्योंकि मैं आपके मुखारविन्दसे निकलनेवाली भगवान्‌की अमृतमयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ २६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा परीक्षित्‌ने संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीला-कथा सुनानेके लिये इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २७ ॥ उन्होंने उन्हें वही वेदतुल्य श्रीमद्भागवत-महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मकल्पके आरम्भमें स्वयं भगवान्‌ने ब्रह्माजीको सुनाया था ॥ २८ ॥

पाण्डुवंशशिरोमणि परीक्षित्‌ने उनसे जो-जो प्रश्न किये थे, वे उन सबका उत्तर क्रमशः देने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः[5] ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवद्धामदर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश

श्रीशुक उवाच

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः ।
न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १

बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ।
रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २

यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन् कालमाययोः ।
रमेत गतसम्मोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३

आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ।
ब्रह्मणे दर्शयन् रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जैसे स्वप्नमें देखे जानेवाले पदार्थोंके साथ उसे देखनेवालेका कोई सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही देहादिसे अतीत अनुभवस्वरूप आत्माका मायाके बिना दृश्य पदार्थोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता ॥ १ ॥ विविध रूपवाली मायाके कारण वह विविध रूपवाला प्रतीत होता है और जब उसके गुणोंमें रम जाता है तब 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार मानने लगता है ॥ २ ॥ किन्तु जब यह गुणोंको क्षुब्ध करनेवाले काल और मोह उत्पन्न करनेवाली माया—इन दोनोंसे परे अपने अनन्त स्वरूपमें मोहरहित होकर रमण करने लगता है—आत्माराम हो जाता है; तब यह 'मैं, मेरा' का भाव छोड़कर पूर्ण उदासीन—गुणातीत हो जाता है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीकी निष्कपट तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपने रूपका दर्शन कराया और आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिये उन्हें परम सत्य परमार्थ वस्तुका उपदेश किया (वही बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ) ॥ ४ ॥

स आदिदेवो जगतां[1] परो गुरुः
स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत।
तां नाध्यगच्छद् दृशमत्र सम्मतां
प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत्॥ ५

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भ-
स्युपाशृणोद् द्विर्गदितं वचो विभुः।
स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं
निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः॥ ६

निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो
विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः।
स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं
तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः॥ ७

दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो
जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः।
अतप्यत स्माखिललोकतापनं
तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः॥ ८

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
सन्दर्शयामास परं न यत्परम्।
व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं
स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम्॥ ९

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः
सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः[2]।
न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥१०

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः
पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः।
सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणि-
प्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः।
प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः
परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः॥११

तीनों लोकोंके परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्मस्थान कमलपर बैठकर सृष्टि करनेकी इच्छासे विचार करने लगे। परन्तु जिस ज्ञानदृष्टिसे सृष्टिका निर्माण हो सकता था और जो सृष्टि-व्यापारके लिये वाञ्छनीय है, वह दृष्टि उन्हें प्राप्त नहीं हुई॥ ५॥ एक दिन वे यही चिन्ता कर रहे थे कि प्रलयके समुद्रमें उन्होंने व्यञ्जनोंके सोलहवें एवं इक्कीसवें अक्षर 'त' तथा 'प' को—'तप-तप' ('तप करो') इस प्रकार दो बार सुना। परीक्षित्! महात्मालोग इस तपको ही त्यागियोंका धन मानते हैं॥ ६॥ यह सुनकर ब्रह्माजीने वक्ताको देखनेकी इच्छासे चारों ओर देखा, परन्तु वहाँ दूसरा कोई दिखायी न पड़ा। वे अपने कमलपर बैठ गये और 'मुझे तप करनेकी प्रत्यक्ष आज्ञा मिली है' ऐसा निश्चयकर और उसीमें अपना हित समझकर उन्होंने अपने मनको तपस्यामें लगा दिया॥ ७॥ ब्रह्माजी तपस्वियोंमें सबसे बड़े तपस्वी हैं। उनका ज्ञान अमोघ है। उन्होंने उस समय एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्र चित्तसे अपने प्राण, मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करके ऐसी तपस्या की, जिससे वे समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो सके॥ ८॥

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपना वह लोक दिखाया, जो सबसे श्रेष्ठ है और जिससे परे कोई दूसरा लोक नहीं है। उस लोकमें किसी भी प्रकारके क्लेश, मोह और भय नहीं हैं। जिन्हें कभी एक बार भी उसके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे देवता बार-बार उसकी स्तुति करते रहते हैं॥ ९॥ वहाँ रजोगुण, तमोगुण और इनसे मिला हुआ सत्त्वगुण भी नहीं है। वहाँ न कालकी दाल गलती है और न माया ही कदम रख सकती है; फिर मायाके बाल-बच्चे तो जा ही कैसे सकते हैं। वहाँ भगवान्‌के वे पार्षद निवास करते हैं, जिनका पूजन देवता और दैत्य दोनों ही करते हैं॥ १०॥ उनका उज्ज्वल आभासे युक्त श्याम शरीर शतदल कमलके समान कोमल नेत्र और पीले रंगके वस्त्रसे शोभायमान है। अङ्ग-अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है। वे कोमलताकी मूर्ति हैं। सभीके चार-चार भुजाएँ हैं। वे स्वयं तो अत्यन्त तेजस्वी हैं ही, मणिजटित सुवर्णके प्रभामय आभूषण भी धारण किये रहते हैं। उनकी छबि मूँगे, वैदूर्यमणि और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान है। उनके कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कण्ठमें मालाएँ शोभायमान हैं॥ ११॥

भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते
लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम् ।
विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः
सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १२

श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः
करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ।
प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगै-
र्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १३

ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं
श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ।
सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः[1]
स्वपार्षदमुख्यैः[2] परिसेवितं विभुम् ॥ १४

भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं
प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं
पीताम्बरं[3] वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं
वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ।
युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः
स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥ १६

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो
हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ।
ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्
यत् पारमहंस्येन पथाधिगम्यते ॥ १७

त प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा
प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ।
बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा
प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १८

श्रीभगवानुवाच

त्वयाहं तोषितः सम्यग् वेदगर्भ सिसृक्षया ।
चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९
वरं वरय भद्रं ते वरेशं माभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २०

जिस प्रकार आकाश बिजलीसहित बादलोंसे शोभायमान होता है, वैसे ही वह लोक मनोहर कामिनियोंकी कान्तिसे युक्त महात्माओंके दिव्य तेजोमय विमानोंसे स्थान-स्थानपर सुशोभित होता रहता है ॥ १२ ॥ उस वैकुण्ठलोकमें लक्ष्मीजी सुन्दर रूप धारण करके अपनी विविध विभूतियोंके द्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंकी अनेकों प्रकारसे सेवा करती रहती हैं। कभी-कभी जब वे झूलेपर बैठकर अपने प्रियतम भगवान्‌की लीलाओंका गायन करने लगती हैं, तब उनके सौन्दर्य और सुरभिसे उन्मत्त होकर भौंरे स्वयं उन लक्ष्मीजीका गुण-गान करने लगते हैं ॥ १३ ॥

ब्रह्माजीने देखा कि उस दिव्य लोकमें समस्त भक्तोंके रक्षक, लक्ष्मीपति, यज्ञपति एवं विश्वपति भगवान् विराजमान हैं। सुनन्द, नन्द, प्रबल और अर्हण आदि मुख्य-मुख्य पार्षदगण उन प्रभुकी सेवा कर रहे हैं ॥ १४ ॥ उनका मुख-कमल प्रसाद-मधुर मुसकानसे युक्त है। आँखोंमें लाल-लाल डोरियाँ हैं। बड़ी मोहक और मधुर चितवन है। ऐसा जान पड़ता है कि अभी-अभी अपने प्रेमी भक्तको अपना सर्वस्व दे देंगे। सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कंधेपर पीताम्बर जगमगा रहे हैं। वक्षःस्थलपर एक सुनहरी रेखाके रूपमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं और सुन्दर चार भुजाएँ हैं ॥ १५ ॥ वे एक सर्वोत्तम और बहुमूल्य आसनपर विराजमान हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, दस इन्द्रिय, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ और पञ्चभूत—ये पचीस शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनके चारों ओर खड़ी हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः नित्यसिद्ध स्वरूपभूत शक्तियोंसे वे सर्वदा युक्त रहते हैं। उनके अतिरिक्त और कहीं भी ये नित्यरूपसे निवास नहीं करतीं। वे सर्वेश्वर प्रभु अपने नित्य आनन्दमय स्वरूपमें ही नित्य-निरन्तर निमग्न रहते हैं ॥ १६ ॥ उनका दर्शन करते ही ब्रह्माजीका हृदय आनन्दके उद्रेकसे लबालब भर गया। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। ब्रह्माजीने भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें, जो परमहंसोंके निवृत्तिमार्गसे प्राप्त हो सकते हैं, सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीके प्यारे भगवान् अपने प्रिय ब्रह्माको प्रेम और दर्शनके आनन्दमें निमग्न, शरणागत तथा प्रजा-सृष्टिके लिये आदेश देनेके योग्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्रह्माजीसे हाथ मिलाया तथा मन्द मुसकानसे अलंकृत वाणीमें कहा— ॥ १८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी ! तुम्हारे हृदयमें तो समस्त वेदोंका ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टिरचनाकी इच्छासे चिरकालतक तपस्या करके मुझे भलीभाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मनमें कपट रखकर योगसाधन करनेवाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वही वर मुझसे माँग लो। क्योंकि मैं मुँहमाँगी वस्तु देनेमें समर्थ